कादम्बिनी

मासिक प्रकाशन

मई, १९६९



कादम्बिनी ज्ञानदा : नियम एवं शर्तें

१. पूर्तियाँ 'कादम्बिनी' में प्रकाशित वर्ग में ही भेजें।

२. केवल स्याही से (बालपेन से भी नहीं) स्पष्ट अक्षरों में पूर्ति भरें। अपना नाम, पता, पोस्टल आर्डर नम्बर तथा शुल्क-राशि साफ-साफ लिखें।

३. प्रत्येक पूर्ति के साथ ५० पैसे का प्रवेश-शुल्क 'क्रास्ड इंडियन पोस्टल आर्डर' द्वारा भेजा जाना चाहिए। पोस्टल-आर्डर "संपादक 'कादम्बिनी', हिन्दुस्तान टाइम्स नयी दिल्ली" के पते पर भेजें। अलग से भेजा गया पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर स्वीकार नहीं किया जायेगा।

४. वर्ग के अंदर काट कर लिखा गया अक्षर या अक्षर के ऊपर लिखा गया दूसरा अक्षर या चिपकाया गया अक्षर अशुद्ध माना जायेगा।

५. 'ज्ञानदा' का केवल एक हल है। जो पूर्ति उस हल के अनुसार बिलकुल ठीक होगी उसे आठ सौ रुपये का प्रथम पुरस्कार दिया जायेगा। अन्यथा जो भी पूर्ति निकटतम सही होगी उसे पहला पुरस्कार मिलेगा। यदि एक से अधिक व्यक्तियों की पूर्तियाँ सही होंगी तो प्रथम पुरस्कार उन में बराबर बाँट दिया जायेगा। संपादक के निर्णय के अनुसार पुरस्कार की शेष राशि दो सौ रुपये अन्य प्रतियोगियों में उन की गलतियों के अनुपात से बाँट दी जायेगी। एक व्यक्ति को एक बार में एक से अधिक पुरस्कार नहीं दिया जायेगा।

६. सभी पुरस्कार केवल भारत में एवं भारतीय मुद्रा में दिये जायेंगे।

७. 'कादम्बिनी' या 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से संबंधित प्रकाशनों के कर्मचारी अथवा उन के आश्रित 'ज्ञानदा' में भाग नहीं ले सकेंगे।

८. पूर्तियों के साथ यदि शुल्क-राशि कम भेजी गयी तो केवल उतनी पूर्तियाँ स्वीकार की जायेंगी जितनी के लिए राशि पर्याप्त होगी। संपादक का निर्णय अंतिम और वैधानिक रूप से मान्य होगा।

९. पूर्ति भेजने वाले और संपादक 'कादम्बिनी' के बीच इस तरह का समझौता समझा जायेगा कि यदि किसी प्रकार का विवाद हो तो उसे आपस में ही निबटाया जाये। यदि किसी स्थिति में मामला न्यायालय तक जाये तो उस की सीमा दिल्ली और नयी दिल्ली (सिविल कोर्ट अथवा कोर्ट आफ स्माल काजेज) तक ही होगी।

१०. किसी भी तरह का कानूनी दावा करने के पहले विजेताओं की सूची छपने के १५ दिन के भीतर संपादक 'कादम्बिनी' के नाम रजिस्टर्ड नोटिस देना होगा, जिस में दावे के स्पष्ट कारण बताने होंगे।

११. पुरस्कार-विजेताओं की सूची छपने (अंक के बाजार में पहली बार जाने) के दिन से ले कर ३० दिन के भीतर ही किसी तरह का कानूनी दावा दायर किया जा सकता है। इस अवधि के बाद कोई भी कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकेगी।

१२. पूर्तियाँ डाक द्वारा भेजी जा सकती हैं या 'हिन्दुस्तान टाइम्स लोकल पोस्ट बाक्स' में भी डाली जा सकती हैं। डाक की अव्यवस्था के कारण खोयी गयी अथवा निर्धारित समय के बाद मिली पूर्तियों की जिम्मेदारी संपादक 'कादम्बिनी' पर नहीं होगी।

—संपादक।


LUX
'अब रूप का राज-शृंगार
एक साबुन है लक्स'
चित्र-तारिका
बबिता कहती हैं
नए लक्स में
एक नई अनमोल
खुशबू है और
अन्तरराष्ट्रीय नई शान!
अपने लिए
पसन्द कीजिए...
LUX
रूप का राज-शृंगार एक साबुन है लक्स


दिखने में सुन्दर
कार्यक्षम रचना
सुदृढ़ बनावट
कम बिजली खर्च और
अधिक हवा प्रसारण
MEMBER
FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION
कैसल्स पंखे
जीवनभर सुख शांति और सुविधा के लिए
Kassels
heros'-BE-40-A
एकमात्र विक्रेता:
बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
४५-४७ वीर नरीमान रोड, बम्बई-१
भारतभर में शाखाएं

ज्ञानदा-४ का परिणाम

ज्ञानदा–४ का सर्वशुद्ध अथवा तीन से कम गलतियों वाला कोई हल प्राप्त नहीं हुआ। अतः तीन गलतियों वाले एकमात्र हल पर ८०० रु. का प्रथम पुरस्कार **सुश्री अरुणा दत्ता**, सी. डी–२, सेक्टर–३, धुरवा, राँची को मिला है।

दो सौ रुपये का प्रोत्साहन-पुरस्कार ११ प्रतियोगियों में बँटा है। इन की चार-चार गलतियाँ रहीं। प्रत्येक को १८.१८ रु. मिलेंगे। विजेताओं के नाम ये हैं—**डा. राजेन्द्र-प्रसाद शर्मा**, प्रवक्ता, के. ई. राजकीय विद्यालय, देवरिया (उ. प्र.); **पीयूष शर्मा**, द्वारा श्री सर्व आनन्द शर्मा, प्रदेशीय आबकारी विभाग, १२९ सिविल लाइन्स, बरेली; **राकेश द्विवेदी**, द्वारा श्री छोटेलाल द्विवेदी, भदरी हाउस, प्रतापगढ़ (उ. प्र.); **धीरेन्द्रकुमार सिंह**, ए ३।१६ बेली रोड, पटना–१; **सत्यस्वरूप दत्त**, सी. डी.–२, सेक्टर–३, धुरवा, राँची; **भारती गुप्ता**, ३७८।१६३ मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद–२; **राजेन्द्रसिंह**, ८०।१४ बी, मालवीयनगर, नयी दिल्ली–१७; **सुरक्षा सहगल**, ६४० तीमारपुर, दिल्ली–७; **राधेश्याम अग्रवाल**, बिक्री-कर कार्यालय, रुड़की (उ. प्र.); **श्रीमती उर्मिला देवी राय**, कान्हीवाड़ा, सिवनी (म. प्र.); **श्रीमती उषा**, द्वारा श्री रविप्रकाश, ९१ रामापुरी., कालकाजी, नयी दिल्ली।

उद्धरण 'मानव और धर्म' से

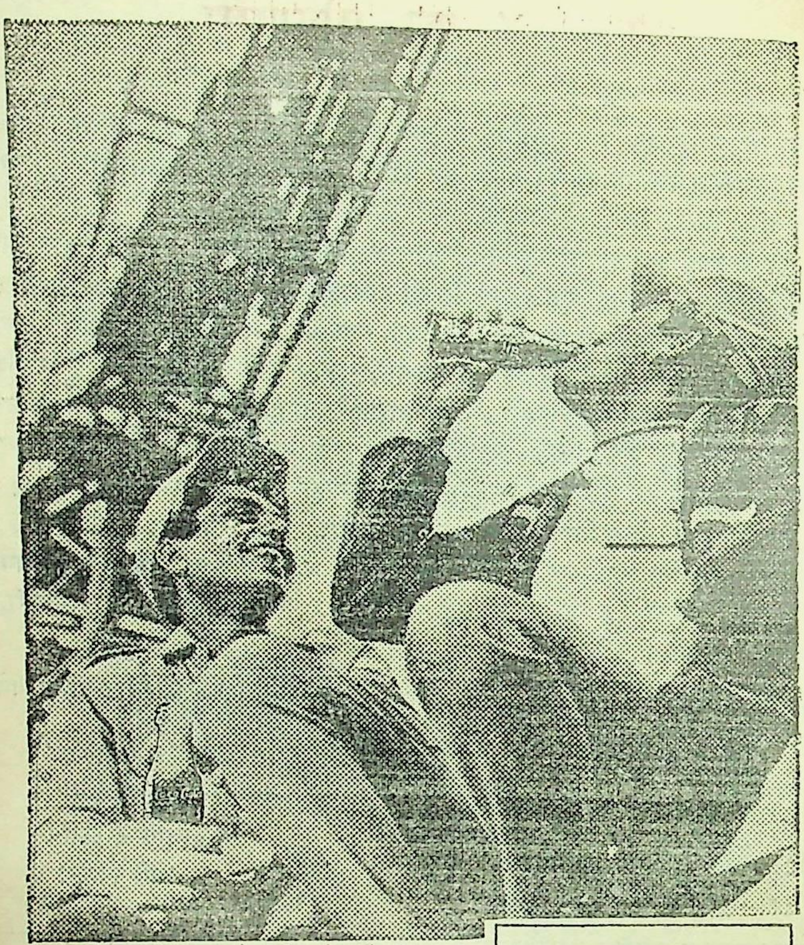
इसे काट कर लिफाफे पर चिपकायें

ज्ञानदा–६
सम्पादक 'कादम्बिनी'
हिन्दुस्तान टाइम्स
नयी दिल्ली



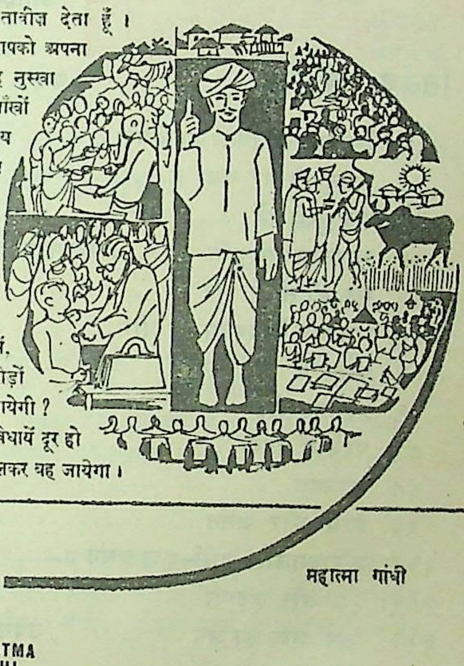
ज्ञानदा-५
इन्हें भर कर अपने पास रखिये





एक अचूक तावीज़

मैं आपको एक तावीज़ देता हूँ। जब कभी आप दुविधा में हों या आपको अपना स्वार्थ प्रबल होता दिखाई दे तो यह नुस्खा आज़मा कर देखिये। अपने मन की आँखों के सामने किसी ऐसे गरीब और असहाय व्यक्ति का चेहरा लाइये, जिसे आप जानते हों और अपने आप से पूछिये कि क्या आपकी करनी उसके किसी काम आयेगी? क्या उसे कुछ लाभ होगा? क्या उस काम से उसे अपना जीवन और भविष्य को बनाने में कुछ मदद मिलेगी? दूसरे मानों में, क्या आपकी करनी हमारे देश के लाखों-करोड़ों भूखे-नंगे लोगों को स्वराज्य की राह दिखायेगी? बस, इतना सोचते ही आपकी सारी दुविधायें दूर हो जायेंगी और स्वार्थ मोम की तरह पिघलकर बह जायेगा।



महात्मा गांधी



MAHATMA GANDHI
BIRTH CENTENARY
OCT 2 1968 TO FEB 22 1970

महात्मा गांधी
जन्म शताब्दी
अक्तूबर 2.1968 से फरवरी 22.1970

सम्पादक : रामानन्द 'दोषी'

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

कादम्बिनी

मासिक प्रकाशन

वर्ष ९ : अंक ७ मई, १९६९

निबंध एवं लेख

कविताएँ

कथा-साहित्य

हास्य-व्यंग्य एवं शिकार

स्तंभ

चित्र-परिचय

पनिया भरन को (मुखपृष्ठ)--एम. डी. शर्मा; खंडहर के साये में जिंदगी का जुलूस--एस. एस. शर्मा; यों सूँघते हैं फूल--विद्याव्रत; अभिनेत्री बबिता -- नरेश बेदी; नेहरू-पार्क, उदयपुर-- हरचरन पाबले

एक वर्ष : १३ रु०   दो वर्ष २४ रु०   तीन वर्ष ३५ रु०

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन पो० बा० ४०

आप की दृष्टि

[illegible] के सौजन्य से [illegible] १९६९ का अंक [illegible] मिला। [illegible] मन को मुग्ध कर देती है।

हिंदी में दैनिक एवं साप्ताहिक [illegible] पत्रिकाएं तो बहुत हैं, किंतु मासिक [illegible] सूनापन [illegible] संपादकों को [illegible]

[illegible] का हिंदी-जगत कादम्बिनी की सफलता की कामना करता है।

—[illegible], मंत्री, हिंदी-प्रचारिणी [illegible]

वह कौन है

[illegible]

अप्रैल अंक में सार-संक्षेप और 'अयोध्या का इक्ष्वाकु-वंश' लेख बहुत पसंद आया। 'एक बम चार सौ फुट लंबा', 'लाओस,' ईरान और भारत' आदि लेख भी रुचिकर लगे। 'स्वप्न जो अधूरे रह गये' में लेखक ने आम फिल्मी लेखन से हट कर स्वस्थ एवं रोचक सामग्री प्रस्तुत की है।

पर्लबक की कहानी में चीनी साम्यवाद के अत्याचारों और नारी की ममता का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण है। हास्य-व्यंग्य और शिकार इस बार अच्छे रहे। कार्टूनों ने खूब हँसाया।

—शिवनारायण शिवहरे, सोहागपुर

अप्रैल अंक में 'एक पौधा गुलाब का' कहानी भावना-प्रधान है और यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है।

—निर्मला पंत, नयी दिल्ली

'चाँदी की तितली' में चीन के नृशंस साम्यवाद की नंगी तसवीर खींची गयी है।

ईश्वरसिंह वर्मा, मुजफ्फरनगर

'कादम्बिनी' का नियमित पाठक होते हुए भी पहली बार पत्र लिख रहा हूँ। जनवरी, ६९ अंक में पृष्ठ ३३ पर गालिब की गजल की जो 'पंक्तियाँ छपी हैं, उन में दूसरी गलत है। 'किस के घर जायेगा तूफाने-बला मेरे बाद' के स्थान पर 'सैलाबे-बला' होना चाहिये।

—पी० एल० सूदन, (दिल्ली

(संशोधन के लिए धन्यवाद—सं०)

वचन-वीथी

संस्थाओं का लोप हमें छोड़ना ही होगा। शरीर से बढ़ कर सुंदर संस्था हो ही नहीं सकती और वह भी हमें छोड़नी ही पड़ती है। —विनोबा

मानव के सारे दुखों और दुर्भाग्यों का सब से बड़ा इलाज है काम। —टामस कार्लाइल

नहीं, जब संघर्ष आदमी के अपने अंदर होना आरंभ होता है, तभी आदमी की कुछ कीमत है। —राबर्ट ब्राउनिंग

वर्षा भलों पर भी पड़ती है और बुरों पर भी, परंतु मुख्यतः वह भलों पर ही पड़ती है, क्योंकि उन की छतरियाँ बुरों ने चुरायी हुई होती हैं।

—लार्ड बोवेन

आप जिसे भी प्रतिनिधि चुनेंगे उस का परिश्रम ही नहीं उस के निर्णय भी आप की धरोहर होंगे, परंतु यदि वह अपने निर्णय आप की रुचियों के अनुकूल करेगा तो वह न केवल आप की सेवा से विमुख होगा अपितु आप के प्रति गद्दारी भी करेगा। —एडमंड बर्क

(ब्रिस्टल के मतदाताओं से)

आप की दृष्टि

भारतीय दूतावास के सौजन्य से 'कादम्बिनी' का जनवरी, १९६९ का अंक देखने को मिला। एक दशक पश्चात एक उच्च-स्तरीय हिंदी मासिक को देख हृदय प्रफुल्लित हो उठा। लेख-चयन में सामयिकता तथा संपादन में अनोखी सूझ-बूझ है। सारी सामग्री स्वस्थ है। कविताएँ मन को मुग्ध कर देती हैं।

हिंदी में दैनिक एवं साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ तो बहुत हैं, किंतु मासिक क्षेत्र एक तरह से सूना लगता था। निस्संदेह 'कादम्बिनी' सूनेपन को दूर कर देगी। प्रकाशकों एवं संपादकों को हार्दिक बधाई।

मारीशस का हिंदी-जगत 'कादम्बिनी' की सफलता की कामना करता है।

--एस. एम. भगत, मंत्री, हिंदी-प्रचारिणी सभा, हिंदी-भवन, मोतांई लोंग, मारीशस

('कादम्बिनी'-परिवार की ओर से मारीशस के हिंदी-प्रेमी भाइयों का अभिनंदन है।--सं०)

वह कौन है
कर रहा हूँ प्रेम जिस से ?
क्या गगन है ?
या अवनि है ?
क्या कोई शैवालिनी ?
या किसी की बीन का है
राग कोई ?
या किसी अभिसारिका का फाग ?
किसी श्वेतांबरी का कमलमुख ?
या किसी का प्रेममय अनुराग है ?
ऐसा कुछ नहीं--वह है
हियबंदिनी, अभिनंदिनी,
हिंद की प्रिय नंदिनी--'कादम्बिनी'

--रविशंकर 'व्याकुल', प्रतापगढ़

सभ्य एवं सुसंस्कृत परिवार के लिए 'कादम्बिनी' से अधिक उपयुक्त पत्रिका हिंदी में और नहीं है। बीच में चलचित्र-जगत का समावेश देख कर मुझे कुछ चिंता अवश्य हुई थी, पर फिल्म-संबंधी लेख पढ़ कर मुझे संतोष हुआ।

--अमरपाल सिंह, प्राध्यापक, अँगरेजी विभाग, पट्टी कालिज, प्रतापगढ़

अप्रैल अंक में सार-संक्षेप और 'अयोध्या का इक्ष्वाकु-वंश' लेख बहुत पसंद आया। 'एक बम चार सौ फुट लंबा', 'लाओस,' ईरान और भारत' आदि लेख भी रुचिकर लगे। 'स्वप्न जो अधूरे रह गये' में लेखक ने आम फिल्मी लेखन से हट कर स्वस्थ एवं रोचक सामग्री प्रस्तुत की है।

पर्लवक की कहानी में चीनी साम्य-वाद के अत्याचारों और नारी की ममता का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण है। हास्य-व्यंग्य और शिकार इस बार अच्छे रहे। कार्टूनों ने खूब हँसाया।

–शिवनारायण शिवहरे, सोहागपुर

अप्रैल अंक में 'एक पौधा गुलाब का' कहानी भावना-प्रधान है और यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है।

–निर्मला पंत, नयी दिल्ली

'चाँदी की तितली' में चीन के नृशंस साम्यवाद की नंगी तसवीर खींची गयी है।

ईश्वरसिंह वर्मा, मुजफ्फरनगर

'कादम्बिनी' का नियमित पाठक होते हुए भी पहली बार पत्र लिख रहा। हूँ। जनवरी, ६९ अंक में पृष्ठ ३३ पर गालिब की गजल की जो 'पंक्तियाँ छपी हैं, उन में दूसरी गलत है। 'किस के घर जायेगा तूफाने-बला मेरे बाद' के स्थान पर 'सैलाबे-बला' होना चाहिये।

–पी० एल० सूदन, (दिल्ली

(संशोधन के लिए धन्यवाद–सं०)

वचन-वीथी

संस्थाओं का लोप हमें छोड़ना ही होगा। शरीर से बढ़ कर सुंदर संस्था हो ही नहीं सकती और वह भी हमें छोड़नी ही पड़ती है। —विनोबा

मानव के सारे दुखों और दुर्भाग्यों का सब से बड़ा इलाज है काम। —टामस कार्लाइल

नहीं, जब संघर्ष आदमी के अपने अंदर होना आरंभ होता है, तभी आदमी की कुछ कीमत है। —राबर्ट ब्राउनिंग

वर्षा भलों पर भी पड़ती है और बुरों पर भी, परंतु मुख्यतः वह भलों पर ही पड़ती है, क्योंकि उन की छतरियाँ बुरों ने चुरायी हुई होती हैं।

—लार्ड बोवेन

आप जिसे भी प्रतिनिधि चुनेंगे उस का परिश्रम ही नहीं उस के निर्णय भी आप की धरोहर होंगे, परंतु यदि वह अपने निर्णय आप की रुचियों के अनुकूल करेगा तो वह न केवल आप की सेवा से विमुख होगा अपितु आप के प्रति गद्दारी भी करेगा। —एडमंड बर्क

(ब्रिस्टल के मतदाताओं से)

फरवरी अंक में 'पुस्तकें' स्तंभ के अंतर्गत डा० भगतसिंह के शोध-प्रबंध 'हिंदी साहित्य को कूर्मांचल की देन' की समीक्षा पढ़ी। इधर हिंदी में शोध-प्रबंधों के प्रकाशन की बाढ़-सी आ गयी है, किंतु शोध के नाम पर पुनरावृत्ति या पुनर्लेखन ही अधिक हो रहा है। इस प्रबंध में गुमानी पंत के परिचय के अतिरिक्त कुछ भी नवीन नहीं। मूल्य आकर्षक है, यानी ४२४ पृष्ठ की पुस्तक ३० रुपये में ! अब हिंदी-साहित्य सस्ता नहीं रहा !

कुछ खोजें मुझे बहुत विचित्र लगीं, जैसे डा० देवराज और देवराज उपाध्याय एक ही हैं (पृष्ठ ४२०); 'छायावाद का पतन' और 'साहित्य और संस्कृति' देवराज उपाध्याय की पुस्तकें हैं; नन्ददुलारे वाजपेयी की कोई पुस्तक 'बीसवीं शती का इतिहास' भी है; 'छायावाद और प्रगतिवाद' पुस्तक के लेखक सेठ देवेन्द्र शर्मा हैं (डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा इस से प्रसन्न ही होंगे !); विश्वंभर मानव की कोई पुस्तक 'साहित्य-दर्शन' भी है (शचीरानी गुर्टू को कोई एतराज तो नहीं !) 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष' पुस्तक के लेखक इन्द्रनाथ मदान हैं (शिवदानसिंह चौहान क्या कहते हैं !) आदि, आदि।

अनेक स्थलों पर संदर्भ-ग्रंथों के नाम हैं तो लेखकों के नाम गायब हैं और लेखकों के हैं तो ग्रंथों के नदारद !

—सुरेशचन्द्र त्यागी, अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
महाराजसिंह कालिज, सहारनपुर

शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये

१. **आवृत्ति**--क. ढक्कन, ख. उतावली, ग. घूमना, घ. संस्करण ।

२. **अन्वित**--क. खोज, ख. सहित, ग. परिणाम, घ. आश्रय ।

३. **पर्णक**--क. पत्ता, ख. भोज, ग. पान, घ. इश्तहार ।

४. **पर्यवेक्षण**--क. जाँच, ख. कसौटी, ग. निगरानी, घ. दूर फेंकना ।

५. **आस्वाद**--क. भोजन, ख. रस, ग. मनोरंजन, घ. बुरा जायका ।

६. **प्रकृत**--क. कुदरत, ख. शांत, ग. यथार्थ, घ. सुंदर ।

७. **मार्दव**--क. घमंड, ख. सम्मान, ग. कठोरता, घ. मृदुता ।

८. **निशीथ**--क. सान पर चढ़ा हुआ, ख. आधी रात, ग. चंद्रमा, घ. संज्ञाहीन ।

९. **वस्तुवाद**--क. वस्तुओं का विनिमय, ख. स्वाभाविकता, ग. भूतवाद, घ. तर्क-प्रणाली ।

१०. **संत्रास**--क. भय, ख. कुंठा, ग. रक्षा, घ. निडरता ।

११. **वैदुष्य**--क. हँसी-मजाक, ख. विशिष्टता, ग. विद्वत्ता, घ. विरोध ।

१२. **निष्पन्न**--क. खिन्न, ख. अधरा, ग. जो पूरा किया जा चुका हो, घ. निर्धन ।

१३. **परिच्छिन्न**--क. ढका हुआ, ख. स्पष्ट, ग. जिस की सीमा निर्धारित हो, घ. उदास ।

१४. **अनुप्राणित**--क. जीवित, ख. प्रेरित, ग. प्रसन्न, घ. गतिशील ।

१५. **नाद**--क. पशुओं के चारे-पानी के लिए मिट्टी का बड़ा बरतन, ख. शिव का वाहन, ग. ध्वनि, घ. बाजा ।

१६. **नामांतर**--क. नाममात्र का, ख. भारी अंतर, ग. दूसरा नाम, घ. नामों की सूची ।

१७. **आप्तकाम**--क. सफल, ख. निश्चेष्ट, ग. प्रसन्न, घ. सांसारिक कामनाओं से मुक्त ।

१८. **बेलौस**--क. आनंदरहित, ख. निष्पक्ष, ग. निःस्वार्थ, घ. दबंग ।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. **आवृत्ति**—ग. घूमना या चक्कर लगाना तथा घ. संस्करण। पृथ्वी की अपनी धुरी पर **आवृत्ति** से ही रात-दिन होते हैं। पुस्तक की चौथी **आवृत्ति** है।

२. **अन्वित**—ख. सहित, युक्त, ग्रस्त। **शोकान्वित** = शोकग्रस्त।

३. **पर्णक**—घ. इश्तहार (अँग-लीफ-लेट)। उन्होंने अपने मत-प्रचार के लिए **पर्णक** वितरित किये हैं।

४. **पर्यवेक्षण**—ग. निगरानी या देख भाल (अँग-सुपरविजन)। सड़क की मरम्मत सार्वजनिक निर्माण विभाग के **पर्यवेक्षण** में हो रही है।

५. **आस्वाद**—ख. रस, रसानुभव। काव्य का **आस्वाद** मूलतः भाव में है।

६. **प्रकृत**—ग. यथार्थ, सच्चा, अविकृत। मनुष्य अब अपने **प्रकृत** रूप में नहीं रहा है। (**प्रकृतस्थ** = क्षोभ, विकार से रहित)

७. **मार्दव**—घ. मृदुता, कोमलता। उस के व्यक्तित्व में यथोचित **मार्दव** है।

८. **निशीथ**—ख. आधी रात, शयन-काल। तारों भरा **निशीथ** जागता मेरी अलकों में-प्रभात।

९. **वस्तुवाद**—ग. भूतवाद, एक दार्शनिक सिद्धांत जिस में दृश्य जगत को यथारूप सत्य मानते हैं। आधुनिक दृष्टिकोण प्रायः **वस्तुवादी** है।

१०. **संत्रास**—क. भय, आतंक। आज साहित्य के एक क्षेत्र में **संत्रास** विद्यमान है।

११. **वैदुष्य**—ग. विद्वत्ता। संस्कृत के **वैदुष्य** की रक्षा आवश्यक है।

१२. **निष्पन्न**—ग. जो पूरा किया जा चुका हो। उन्होंने कुशलता से अपना कार्य **निष्पन्न** किया।

१३. **परिच्छिन्न**—ग. जिस की सीमा निर्धारित हो, परिमित। भारतीय मूल-धर्म **परिच्छिन्न** नहीं है।

१४. **अनुप्राणित**—ख. प्रेरित। हमारे शास्त्र महान उद्देश्य से **अनुप्राणित** हैं।

१५. **नाद**—ग. ध्वनि, शब्द, संगीत। **नाद** से ही सृष्टि होती है।

१६. **नामांतर**—ग. दूसरा नाम, उपनाम। रस ब्रह्मतत्त्व का ही **नामांतर** है।

१७. **आप्तकाम**—घ. सांसारिक कामनाओं तथा आसक्तियों से मुक्त। मनुष्य **आप्तकाम** हो कर ही धन्य होता है।

१८. **बेलौस**—ग. निःस्वार्थ, निर्लिप्त। **बेलौस** इनसान ही बड़े काम कर सकता है।



परंपरा

हम जिस संपदा के उत्तराधिकारी हैं वह कितनी समृद्ध है, यह अधिकतर लोगों को पता नहीं है। आध्यात्मिक लोगों के जीवन से हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य की उच्चाकांक्षाओं से संबंधित ज्ञान के विपुल भंडार से कट कर यदि हम अपने ही अतीत तक सीमित रहते हैं अथवा यदि अपनी ही अपर्याप्त परंपरा से संतुष्ट हो जाते हैं और अन्य परंपराओं के वरदान से लाभ नहीं उठाते, तो मानना होगा कि धर्म-तत्त्व के बारे में हम में गंभीर मिथ्या धारणा है।

अपनी विशिष्ट परंपरा में निष्ठा का अर्थ अतीत के साथ केवल तालमेल ही नहीं, बल्कि अतीत से मुक्ति भी है। जीवंत अतीत भविष्य के लिए प्रेरणा और अवलंबन बन जाना चाहिए। परंपरा आत्मिक जीवन को पंगु कर देने वाला और हम से गये-गुजरे युग में लौटने की अपेक्षा करने वाला कड़ा और कठोर साँचा नहीं है। वह अतीत की स्मृति नहीं है, बल्कि जीवंत आत्मा का सतत आवास है। वह आत्मिक जीवन की जीवंत धारा है।

—राधाकृष्णन

बिन्दु-बिन्दु विचार

* आओ भाई, आत्महत्या करें
* चौंको मत। बुरा भी न मानो। मेरी ओर इस प्रकार आश्चर्य से भी न देखो
* तुम्हें बुरा लगता है तो मैं अपने शब्द वापस लिये लेता हूँ
* परंतु, मैं न कहूँ––तो भी आमंत्रित तो तुम हो ही और आत्महत्या तो तुम कर ही रहे हो
* अंतर केवल शब्द और उस की शैली का है, न कि क्रिया और उस के संपादन का
* मैं अपनी स्पष्टवादिता के लिए क्षमा माँगे लेता हूँ
* परंतु तुम उन आमंत्रणों की उपस्थिति कैसे नकारोगे, जो तुम्हें उत्तेजित करते हैं कि तुम सड़कों पर बसों को जलाओ, पटरियों पर ट्रेनों को क्षति पहुँचाओ, कारखानों के चक्कों को गतिहीन कर दो, निर्माण-रत हाथों को सुन्न और अवश कर डालो, उद्योग और व्यापार के पाँवों को जंजीरों से जकड़ दो
* कलकत्ता (रवींद्र सरोवर स्टेडियम) में किस ने बिजली बंद की थी? सुबह को साड़ियों, ब्लाउजों और चोलियों की जो चिंदियाँ पड़ी मिली थीं, वे किस की माँ, बहिन, बहू, बटी के लाजापहरण की कहानी कह रही थीं ?
* भाई मेरे, घोरतम निर्लज्जों की भाँति यह कौन है जो कुरसी पाने के लिए कुछ भी खोने को तैयार है ? फटे और निकम्मे जूते से भी कम मोह का परिचय देता हुआ यह कौन रोज-रोज दल एवं आस्थाएँ बदलता है ?

* यह किस का आमंत्रण है ?
* यह कौन आमंत्रित है ?
* 'आत्महत्या' तो मेरा शब्द है— तुम इस आमंत्रण को क्या कहोगे ?
* और क्या संज्ञा दोगे उन कार्यों को जो इस आमंत्रण के प्रोत्साहन पर तुम कर रहे हो ?
* ये बसें, ट्रेनें, ट्रामें, कल-कारखाने, उद्योग-व्यापार, बहिन-बेटी, आस्था, व्यवस्था—किस के हैं ये सब ?
* इन्हें चोट पहुँचाते हुए क्या तुम्हें कहीं भी प्रतीति नहीं होती कि तुम आत्महत्या कर रहे हो ?
* यदि नहीं होती, तो मानना होगा कि तुम आत्महत्या कर नहीं रहे, बल्कि कर चुके हो
* परंतु, निराश नहीं हूँ मैं
* क्योंकि यह चित्र पूरा नहीं है। चित्र को पूरा करने के लिए
* उन सभी रेखाओं और रंगों की भी गणना करनी होगी जो एक सही आस्था और विश्वास का वातावरण देते हैं
* इतिहास चूँकि दुर्घटनाओं के विवरणों का ही संकलन करता है, अतः आस्था एवं विश्वास के स्वरों को उस में स्थान दिलाने का वायदा तो कोई नहीं कर सकता; परंतु उन स्वरों के प्रति कृतज्ञ हो कर यह प्रार्थना तो की ही जा सकती है कि आत्म-हत्यारों की यह जमात शीघ्र ही क्षीण होते-होते समाप्त हो जायेगी

हिंदू धर्म स्वतंत्रता का पोषक

आज विज्ञान का माहात्म्य सर्वातिशायी है । यह विज्ञान की ही महिमा है कि मानव ने चंद्रमा के पृष्ठभाग को देखने की क्षमता प्राप्त कर ली है-- उस भाग को, जिसे मानवीय नेत्रों ने कभी देखा ही न था । इस युग में देश तथा काल दोनों ही सिमट गये हैं । परंतु महान प्रश्न है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों का चरम अवसान कहाँ ? इन उपलब्धियों का उपयोग ही क्या ? उपयोग दुधारी तलवार की तरह है । वह मानव के कल्याण में समर्थ है तथा विनाश में भी उसे उचित दिशा की ओर ले जाना ही मानव की बुद्धि की कसौटी है । प्राचीन काल में मिस्र में नील नदी की बाढ़ से जन-जीवन संकटाकीर्ण था । यंत्र के द्वारा बाढ़ पर नियंत्रण किया गया, अन्न का उत्पादन खूब हुआ तथा देश भर में सुख-संपत्ति विराजने लगी । परंतु उस समृद्धि का उपयोग विशालकाय पिरामिडों के बनाने में किया गया, जिस से जनता को कोई भी लाभ नहीं पहुँचा । फलतः वही सुख-समृद्धि मिस्र के विनाश का कारण बन गयी । विज्ञान अध्यात्म के साथ मंजुल समन्वय चाहता है । अध्यात्म बतलाता है कि इस समृद्धि का सदुपयोग किस प्रकार किया जाये, जिस से मानव का परम कल्याण हो । टोयनबी - जैसे इतिहासकार का कथन है कि अतिप्राकृत पराशक्ति में विश्वास ही इस वैज्ञानिक युग में कल्याण का एकमात्र उपाय है और इस पराशक्ति में विश्वास उत्पन्न करना धर्म द्वारा ही साध्य है ।

तथ्य यह है कि विज्ञान नीति-निरपेक्ष शक्ति है । वह शक्ति तो प्रदान कर देता है, परंतु उस के उपयोग करने की

धर्म का यथार्थ स्वरूप एवं उस का उद्देश्य क्या है? मानव-समाज के लिए वह किस रूप में उपादेय है? परंपरागत हिंदू-धर्म की विशेषताएँ क्या हैं? वर्तमान युग के संदर्भ में इन प्रश्नों का सुगम विवेचन डा. बलदेव उपाध्याय के शब्दों में

दिशा को संकेतित करने में वह एकदम अकर्मण्य है। इस दिशा का निर्देशन अध्यात्मवाद के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? विज्ञान की प्रणाली से अग्नि का उत्पादन शक्य है, परंतु उस का उपयोग भोजन पकाने में भी हो सकता है तथा घर जलाने में भी। विज्ञान यह निर्णय स्वयं नहीं कर सकता। यह निर्णय तो धर्म ही कर सकता है। संस्कृत के एक पुराने श्लोक में इस दुरुपयोग-सदुपयोग की बात बड़े ही अच्छे ढंग से कही गयी है--

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

(खल के हाथ में पड़ने पर विद्या झगड़े के लिए होती है, धन गर्व का कारण बनता है तथा शारीरिक शक्ति दूसरे को पीड़ित करने में ही चरितार्थ रहती है। साधु के हाथ में ये तीनों ही शुभ फल देते हैं। विद्या ज्ञान का संपादन करार्ती है, धन दान का साधन होता है तथा शक्ति रक्षण के काम में आती है।)

इस प्रकार विज्ञानजन्य शक्ति का दिशा-निर्देशन कौन कर सकता है? इस प्रश्न का निःसंदिग्ध उत्तर एक ही है-- धर्म और धर्म ही।

अँगरेजी शब्द 'रिलिजन' के लिए हम ने 'धर्म' को पर्याय मान कर बड़ी गलती की है। दोनों में महान अंतर है। 'रिलिजन' का यथार्थ पर्याय 'मजहब' है, न कि धर्म। किसी देशविशेष में किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा सामयिक उपयोगिता की दृष्टि से एक-दूसरे को विशिष्ट समाज के रूप में बाँधने के लिए जो आचार-प्रधान नियम बनाये जाते हैं वे ही 'रिलिजन' के अंतर्गत आते हैं। यह शब्द लातीनी भाषा के 'रिलिजिओ' शब्द से निष्पन्न है, जो मूलतः 'रेलिगारे' (बाँधना) धातु से संबद्ध है। फलतः 'रिलिजन' एक समाज में विभिन्न मानवों को बाँधने वाली अनुष्ठान-विधियों का द्योतक है। धर्म उस से नितांत भिन्न है। धृ (धारण करना) धातु से निष्पन्न 'धर्म' शब्द उन ईश्वर-निर्मित सिद्धांतों का द्योतक है जो समस्त विश्व को प्रतिष्ठा देने वाले, स्थिर तथा धारण करने वाले होते हैं। 'रिलिजन' या मजहब अथवा मत (संप्रदाय) देश तथा काल की परिधि से सीमित होता है। उस का उदय किसी विशिष्ट

देश तथा काल में, व्यक्तिविशेष के प्रयत्नों का परिणत फल होता है। उधर 'धर्म' होता है ईश्वरनिर्मित, नित्य, सर्वदा स्थायी, देशकाल की सीमा का अतिक्रमण करने वाला वस्तुतत्त्व--

धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।

इसीलिए धर्म निरपेक्ष तत्त्व है, संप्रदाय सापेक्ष। संप्रदाय की स्पष्ट जानकारी के लिए उस से पूर्व विशेषण लगाने की आवश्यकता होती है--इसलाम मजहब, ईसाई मजहब, जैन मत या बौद्ध मत। धर्म के स्वरूप-ज्ञान के लिए किसी विशेषण या किसी नियामक शब्द की आवश्यकता नहीं होती। धर्म तो धर्म ही है, अखंड सत्तात्मक नित्य पदार्थ। उस के काल से अपरिच्छेद्य रूप को सूचित करने के लिए 'सनातन' (सर्वदा स्थायी) विशेषण कभी-कभी जोड़ा जाता है। फलतः धर्म अथवा संनातन धर्म एक ही वस्तु है। **'एष धर्मः सनातनः'** महाभारत के शांतिपर्व में इस के लिए बहुशः प्रयुक्त हुआ है।

धर्म की नित्य सत्ता के रूप से अवगत होने पर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि धर्म जीवित है क्या? धर्म नित्य है; वह सर्वदा जीवित है; धर्म की मृत्यु ब्रह्मांड की मृत्यु है। ब्रह्मांड को अपनी धुरी पर रखने वाला तत्त्व ही तो धर्म है।

यह जगत व्यवस्था-नर्तकी की मनोरम रंगशाला है। उस की छोटी-से -छोटी वस्तु भी यदृच्छा से प्रवृत नहीं होती; प्रत्युत एक व्यापक नियम के वशीभूत हो अपने जीवन का विस्तार करती है। दिन के अनंतर रात्रि का आगमन, नित्य प्रातः सुवर्णमय रश्मियों को छिटकाते हुए भगवान सविता का पूर्व क्षितिज पर मंगलमय उदय, रात्रि के समय रजत-रश्मियों को बिखेरने वाले सुधाकर का आविर्भाव तथा इन्हीं दृश्यों की यथाविधि पुनरावृत्ति इस तथ्य का प्रतिपादन करती है कि इस विश्व में मूलतः व्यवस्था है। वैदिक मनीषियों ने इस अपरिवर्तनीय नैतिक व्यवस्था को 'ऋत' की संज्ञा दी है, इसी 'ऋत' को मीमांसकों ने 'अपूर्व' के रूप में स्वीकार किया है। न्याय में 'अदृष्ट' की कल्पना का मूल आधार 'ऋत' की ही वैदिक कल्पना है। यह 'ऋत' ही 'धर्म' के स्वरूप का एक मंगलमय निदर्शन है।

वेदों के द्वारा प्रतिपादित यह धर्म वैदिक धर्म के नाम से विख्यात है। यह धर्म ईश्वर, आत्मा, सृष्टि एवं मानव-जीवन के ध्येय के संबंध में किसी वाद-विशेष को स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत इन विषयों पर सोचने तथा अपना ध्येय-निर्णय करने के लिए वह मानवीय बुद्धि तथा हृदय दोनों को स्वतंत्रता प्रदान करता है। उस का कभी यह आग्रह नहीं रहा कि मानवीय विचार, भावना तथा इच्छा-शक्ति पर अनुचित रोक लगायी जाये। वह डंके की चोट कहता है कि **मनुष्य सभी बन्धनों से मुक्त है और अपने स्वतंत्र पुरुषार्थ के बल पर पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त करना ही उस के जीवन का सर्वोच्च आदर्श है।** हिंदू धर्म की मान्यता है कि मनुष्य का स्वतंत्रता पर जन्मसिद्ध अधिकार है,

परंतु परिस्थितियाँ--शारीरिक और मानसिक--इस स्वतंत्रता को नियंत्रित करती हैं। अतः मनुष्य का ध्येय यह होना चाहिए कि वह जितनी स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए है, उसी से पूर्ण स्वातंत्र्य पाने का अक्लांत परिश्रम करे। हिंदू धर्म की सर्वाधिक उदार दृष्टि है। अतएव वह किसी को भी किन्हीं विशिष्ट मतवादों, उपासना के प्रकारों अथवा बाह्य आचारों को ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं करता। इसीलिए उस के भीतर असंख्य मत वाले लोगों को आश्रय प्राप्त है। फलतः **हिंदू धर्म स्वतंत्रता का पोषक धर्म है**--दैहिक, मानसिक तथा आत्मिक त्रिविध बंधनों से मुक्ति पा कर **अखंड स्वतंत्रता की उपासना हिंदू धर्म का चरम लक्ष्य है।**

भारतीय धर्म मानवों को कर्तव्य की शिक्षा चार स्तरों पर देता है--(१) राष्ट्र के प्रति, (२) समाज के प्रति, (३) परिवार के प्रति तथा (४) स्वयं अपने प्रति कर्तव्य। ये चारों परस्पर अनुस्यूत हैं, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है।

राष्ट्र भौगोलिक ऐक्य तथा प्रशासनिक ऐक्य के समन्वय का सूचक है। किसी भौगोलिक इकाई के निवासी, जो एक ही अभिन्न प्रशासन के द्वारा शासित होते हैं, राष्ट्र को प्रस्तुत करते हैं। हिंदू धर्म इन निवासियों के हृदय में राष्ट्र की एकता का तथा उस के प्रति अखंड निष्ठा की भावना का पुरस्कर्ता है। अथर्ववेद का 'पृथिवी सूक्त' वैदिककालीन राष्ट्र-भावना का उज्ज्वल निदर्शन है। यह मातृभूमि का सजीव चित्र सामने रखता है--

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

"भूमि मेरी माता है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ"--उदात्त भावना का प्रेरक यह मंत्र कितना सहनीय है। 'यह भूमि मुझे उसी प्रकार दूध दे, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को स्वतः अनुराग से दूध देती है'--

सा नो भूमिर्विसृजतां
माता पुत्राय मे पयः

इस मंत्र में कितनी ममता भरी हुई है। उचित ही है कि जिस राष्ट्र में निवास करते हुए हम अपना मंगल संपादन करते हैं, उस के प्रति हमारा निश्छल प्रेम हो, गहरी भक्ति हो। देशभक्ति की भावना हिंदू धर्म की पैतृक संपत्ति है। जो लोग इसे विदेशियों की देन बतलाने का आग्रह करते हैं, वे तथ्य से कोसों दूर हैं। **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'**--जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानने का उपदेश हिंदू धर्म हमें देता है। अपने देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति करने वाले वीर की आत्मा सूर्यमंडल को वेध कर स्वर्ग पहुँचती है जहाँ उस का दिव्य सत्कार किया जाता है--

द्वावेव पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योग युक्तश्च यश्च युद्धमुखे हतः ।।

वेद का यह राष्ट्रीय गायन हमारे सामने एक विशिष्ट आदर्श प्रस्तुत करता है। इस गायन में प्रार्थना है कि राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस से युक्त हो,

क्षत्रिय शूर-वीर तथा महारथी हो, धेनु दूध देने वाली हो, वृषभ भार ढोने वाला हो, घोड़ा तेजी से दौड़ने वाला हो, योधा सर्वगुणों से संपन्न हो, रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाला विजयी हो तथा युवक सभा में बैठने की योग्यता रखे (शिष्ट तथा सभ्य हो), उचित समय पर मेघ वृष्टि बरसाये तथा ओषधियाँ फलवती बनें। राष्ट्र का योगक्षेम संपन्न हो। कितनी भव्य है राष्ट्र की मंगलकामना !

राष्ट्र एकता का प्रतीक है। उस की भक्ति करना प्राणी का परम कर्तव्य है। यही निष्ठा हमें विभाजन से दूर हटा भावनात्मक एकता में प्रतिष्ठित कर सकती है।

परिवार के प्रति भी हमारा कर्तव्य है। स्त्री तथा पुरुष से परिवार बनता है और इस की आधार-शिला है--विवाह। भारतीय धर्म विवाह को शारीरिक संबंध पर ही आश्रित नहीं मानता, प्रत्युत वह दो विभिन्न प्राणियों को प्रेम-सूत्र में बाँध कर मर्यादा के भीतर अपने-अपने निर्दिष्ट कार्यों के संपादन का उपदेश देता है। यह आत्मा का मिलन है, देह का नहीं। आधुनिक यंत्र-विद्या की उन्नति होने पर स्त्रियों के ऊपर अधिक भार बढ़ गया है। स्त्री-समाज पर दोहरा कार्यभार हो गया है--घर में पत्नी बन कर गृहस्थी सँभालना और कार्यालय में कर्मचारी बन कर जीविकोपार्जन करना। स्त्रियों का सहज कार्य है--गृहधर्म का निर्वाह। हिंदू-धर्म ने स्त्रियों का जो कार्यक्षेत्र निर्दिष्ट कर दिया है, वह नितांत उपयुक्त है। '**न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति**' स्त्रियों की पराधीनता का डिण्डिम घोष नहीं है। इस का इतना ही तात्पर्य है कि असहाय होने से स्त्री-समाज को प्रलोभनों का शिकार होने की अधिक आशंका रहती है। इसलिए उस का यथावत संरक्षण होना चाहिए। भारतीय धर्म की इस गरिमा की घोषणा टोयनबी ने की है। उन का कथन ऐतिहासिक प्रमाण पर आधारित है। वे कहते हैं कि ५०० ई. पूर्व यूनान के प्रधान नगर एथेंस का स्त्री-समाज अपने गृहकार्य में सीमित था। इसलिए एथेंस उस युग में अपनी सभ्यता के चरम उत्कर्ष पर चढ़ गया; परंतु सिकंदर के समय में स्त्रियों का स्वातंत्र्य-आंदोलन आरंभ हुआ। तब यूनानी सभ्यता का ह्रास हुआ। नगर-राष्ट्रों का पतन हुआ। थोड़े दिनों में देश ही पराधीन बन गया।

समाज के प्रति हमें अपने कर्तव्यों का पूर्ण पालन करना चाहिए। धर्म समाज की प्रतिष्ठा पर आग्रह रखता है। चतुराश्रम की व्यवस्था का अंतर्निहित रहस्य ध्यान देने योग्य है। व्यक्ति के पुंज का नाम समाज अवश्य है, परंतु व्यक्तियों से पृथक समाज का भी निजी व्यक्तित्व है। चारों आश्रम इस समाज के पोषण में अपनी-अपनी दृष्टियों से लगे रहते हैं। गुरुकुल में निवास कर समाज से भिक्षा ग्रहण कर विद्या का संपादन करने वाला ब्रह्मचारी आजीवन समाज का सेवक बना रहता है और अपनी उपार्जित विद्या

के द्वारा अपने समाज के कल्याण के लिए सदैव सचेष्ट रहता है। गृहस्थ तो समाज का निर्वाहक मख्य उपादान ही ठहरा। वानप्रस्थी अपने गृहस्थी के उत्तरदायियित्व से दूर रह कर समाज का पक्का सेवक होता है। प्राचीन काल में इसी तृतीय आश्रम से समाजसेवकों की प्राप्ति होती थी और इस आश्रम के मूलतः उच्छिन्न होने के कारण ही तो समाजसेवियों का इस समय भारी टोटा है। संन्यासी का तो जीवन ही गृहस्थों की शिक्षा-दीक्षा दे कर समाज का परम मंगल संपादन करता है। फलतः आज भी धर्म का यही आदर्श हमारे सामने है कि हम अपनी शक्ति के अनुसार समाज का जीवन पुष्ट तथा समृद्ध करें--

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

धर्म व्यक्ति के पूर्ण अभ्युदय की शिक्षा देता है। मानव शक्तियों का पूज ठहरा। कुछ ही शक्तियों को वह विकसित कर पाता है। अनेक शक्तियाँ प्रेरणा के अभाव में अंतराल में पड़ी रह कर समाप्त हो जाती हैं। धर्म व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का समर्थक है। व्यक्ति का अपने प्रति यह कर्तव्य होता है कि वह अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर अपनी अर्धनिद्रित शक्तियों का प्रबोधन करे। जीव सच्चिदानंद आनंदकंद भगवान का रूप ही तो ठहरा। उस में किसी शक्ति की कमी नहीं है। सम्यक संतत उद्योग द्वारा उसे अपने अनंत ज्ञान, अनंत श्रद्धा तथा अनंत वीर्य को प्राप्त करना चाहिए।

आज की परिस्थिति में भी धर्म मानव को पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक--इस त्रिविध पूर्णता के अभाव में जीव का वैयक्तिक बिकास पूरा नहीं कहा जा सकता। फलतः भारतीय धर्म अकर्मण्यों का धर्म नहीं है, वह क्रियाशीलों का धर्म है। वह कर्तव्य दृष्टि से कार्य करने की शिक्षा देता है। निष्काम कर्म का वह उपदेशक है। वह समस्त मानवों के सामने (केवल भारतीयों के सामने नहीं) उद्घोष करता है--

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति।।

अर्थात सत्-मार्ग पर चलिये, जिस पर पिता तथा पितामह चल कर उन्नति करते गये हैं। उस सन्मार्ग से चलने से रंचमात्र भी हानि न होगी। वर्तमान समाज के प्रति धर्म का यही सुस्थिर उपदेश है। यही सुचिंतित तथ्य धर्म का मेरुदंड है।

योग्यता में दायित्व तथा अंतिम चरण तक बने रहने की शक्ति निहित है और यही कर्तव्य है।

--इयान मैक्लीन



• तारकेश्वरी सिन्हा

मजनूं जो मर गया है जंगल उदास है

डाक्टर लोहिया के बारे में लिखना जितना आसान है उतना ही मुश्किल। राजनीतिक क्षितिज पर इस तरह का व्यक्तित्व कभी ही कभी उभरता है: उन का एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसे तरह-तरह-तरह के लोगों ने भिन्न-भिन्न रूप में देखा। वे अपने आप में किसी के लिए यदि युग-प्रवर्तक या युग-नेता थे तो कुछ दूसरे लोगों के लिए रास्ते पर भटकते हुए पथिक, जिसे न दिया मिलता है, न दिये से रोशन रास्ता। खासकर कांग्रेस पार्टी में बहुत लोगों की यही धारणा थी कि डा० लोहिया का व्यक्तित्व झुंझलाया हुआ व्यक्तित्व था, जो अपने जीवन की असफलता से निराश हो कर अपने आसपास के हर व्यक्ति को नोचने और खसोटने की कोशिश करता रहा। इस के विपरीत वे अपने दल के लोगों के लिए अगाध प्रेम और वात्सल्य का पुंज थे और अपने आप में एक महादेव। भारत के पिछले वर्षों के राजनीतिक इतिहास में शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति होगा जिस के लिए उस के नजदीक रहने वाले लोगों में इतना प्यार था। अकसर यह देखा जाता है कि दूर का ढोल सुहावना होता है। अधिकांश व्यक्तियों को दूर से देखने पर उन का सुहावनापन अधिक आकर्षक होता है, और नजदीक से देखने पर उन से कुछ निराशा-सी होती है। डा० लोहिया का व्यक्तित्व इस के विपरीत था। दूर से देखने वाले व्यक्तियों को उन के बारे में चाहे किसी भी प्रकार की भ्रमित भावना हो—और यह भी सही है कि काफी अंशों तक उन के बारे में गलतफहमियाँ थीं—पर उन के नज़दीक रहने वाले लोग उन को साक्षात महादेव

का रूप मानते थे, जिन्होंने जन्मजात विद्रोही होते हुए भी सारे भारत की विषमताओं के हलाहल को पी कर समाज और राष्ट्र को नया जीवन देने का जी-तोड़ परिश्रम किया था। उन के बारे में यह कहा जा सकता था—

विद्रोही होगा पहला कवि
आह से निकला होगा गान

संसदीय जीवन डा० लोहिया के व्यक्तित्व का एक छोटा-सा प्रतिबिंब था। मैं ने उन को पहले-पहल तब देखा, जब वे लोकसभा में सदस्य चुन कर आये, यों तो उन के बारे में विद्यार्थी-जीवन से ही बहुत कुछ सुन रखा था। जिस समय मैं विद्यार्थी थी, डा० लोहिया का जीवन हमारे लिए एक क्रांतिकारी और रोमांटिक जीवन था। उन के बारे में तरह-तरह के किस्से, तरह-तरह की कहानियाँ सुनने में आती थीं। लोहिया हमारे लिए एक नवयुवक क्रांतिकारी नेता वन चुके थे, जिन के रहस्यपूर्ण जीवन की घटनाओं को सुन कर रोमांच के साथ-साथ गुदगुदी पैदा होती थी। बहुत जी चाहता था कि ऐसे व्यक्ति को नजदीक से देखने का मौका मिले। पर यह मौका तब मिला जब वे संसद में पहले-पहल आये। विद्यार्थी-जीवन छोड़े हुए मुझे भी एक जमाना बीत गया था और इसलिए डा० साहब मेरे लिए कोई रोमांटिक व्यक्ति नहीं रह गये थे। पर संसदीय जीवन में मुझे उन के जिन रूपों की झाँकियाँ मिलीं उन्होंने फिर से मन के उन तारों को झनझनाया जो कि १९४२ की क्रांति के युग के बाद सुप्त हो कर करीब-करीब निर्जीव-से हो गये थे। शुरू-शुरू में जब वे संसद में आये थे, मुझे भी उन के बारे में बड़ी गलतफहमियाँ थीं। ऐसा लगता था कि समाज को विद्रोही मोड़ देने वाला व्यक्ति जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व के दायरे में लिपट कर संकुचित बन गया है। जिस क्रांतिकारी व्यक्ति का नाम सुन कर हमारा हौसला बढ़ जाता था, उसी व्यक्ति को सिर्फ जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तिगत आलोचक के रूप में पा कर काफी मायूसी हमें हुई थी। इसीलिए जब डा० लोहिया आये तो मैं ने भी उन को उसी दृष्टिकोण से देखा। जब उन का चनाव खत्म हुआ और वे लोकसभा में अधिवेशन के पहले दिन आ कर शपथ लेने वाले थे, हम आम-तौर पर यही सोच रहे थे कि एक ऐसा व्यक्ति संसद में आ रहा है जो संसद की सारी परिपाटी को तोड़ कर वातावरण वहुत विषाक्त बना देगा, साथ ही जवाहर-लाल नेहरू की व्यक्तिगत आलोचना कर संसदीय वातावरण को भी व्यक्तियों के दायरे में बाँध देगा। पर उस समय भी हर व्यक्ति के मन में उन के संसदीय जीवन को देखने की बड़ी जोरों से उत्कंठा जाग गयी थी। कैसा होगा वह व्यक्ति, किस तरह की उथल-पुथल मचायेगा, न जाने कितने भूकंप संसदीय जीवन में आयेंगे। उन के आने की बात सुन कर सारी संसद इसी उधेड़बुन में पड़ गयी थी। सोशलिस्ट पार्टी की एक छोटी-सी

जमात थी। उस जमात का अपने आप में कोई व्यक्तित्व नहीं बन पाया था। इसलिए कभी किसी ने उस पार्टी को महत्त्व ही नहीं दिया था। फिर एक दिन डा० साहब को पहली बार संसद में देखा। देखते ही ऐसा लगा कि यह आदमी कट्टर होने के साथ-साथ बहुत भावुक है, जो एक तरफ महात्मा है, तो दूसरी तरफ मूर्ति भंग करने वाला विद्रोही।

संसद में आते ही डा० लोहिया जवाहरलालजी की कटु आलोचना करने लगे। जब भी कोई मौका होता डा० लोहिया भरपूर कोशिश करते कि जवाहरलाल नेहरू पर सीधा प्रहार किया जाये। एक दिन मैं ने उन से पूछा कि डा० साहब आप इतने महान व्यक्ति हैं, इतने कर्मठ, इतने उदार हैं, फिर भी आप इस तरह से पंडितजी के पीछे क्यों पड़े हुए हैं? डा० लोहिया ने उस समय जो बात कही थी वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कहा, "तारकेश्वरी, मेरा रिश्ता जवाहरलाल से क्या था, तुम यह समझ नहीं सकतीं। जवाहरलाल को मैं ने सिर्फ सहयोगी ही नहीं माना था बल्कि अपना देवता माना था। उस व्यक्ति ने हमारी क्रांति की लपट को बुझा दिया। वह जो समाजवाद का अग्रणी था, जिस से हम ने इतनी उम्मीदें बाँध रखी थीं, उस ने हमारी सभी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मेरी मायूसी, का तुम अंदाज भी नहीं लगा सकतीं। पर यह देश तो ऐसा है जो बराबर मूर्तिपूजक रहा है और जवाहरलाल नेहरू को भी मूर्ति बना कर पूजने लगा है। जब तक यह मूर्ति भंग नहीं होगी तब तक यह देश नेहरू का मूर्तिपूजक बना रहेगा। इस देश के लोग पीपल के नीचे यदि एक पत्थर को भी देख लेते हैं, जहाँ किसी ने दो-चार फूल फेंक दिये हों, तो उस पत्थर की भी पूजा करने लगते हैं। इसलिए अगर देश के अवास्तविक सपनों को तोड़ना है और देश को झकझोरना है तो नेहरू की मूर्ति भंग करनी ही पड़ेगी।"

डा० साहब को संसद में जब किसी विषय पर भाषण देना होता तो उस विषय की गहराई में जाने के लिए महीनों समय लगाते थे। और इसीलिए जब किसी बात को उठाते थे तो उस विषय के आँकड़े उन की अँगुलियों पर थिरकते रहते। वैसे उन के घर पर जाने का मौका मुझे कम मिला, पर जब भी गयी तो देखा एक मजमा लगा रहता। उस में कुछ शिक्षक, कुछ मजदूर, कुछ किसान और कुछ कार्यकर्ता होते थे। डा० लोहिया का यही परिवार था, जिस के वे अभिभावक नहीं, सहयोगी थे। उन के बारे में यह कहा जा सकता था—

दलित आ जा, थकित आ जा
व्यथित आ जा, तृषित आ जा
मिल न पाया प्यार जिन को
आज उन को प्यार मेरा

किसी भी विषय पर चर्चा करना हो तो जिस तरह वकील किसी को 'क्रास-एक्जामिन' करता है उसी तरह से वे पूछ-ताछ करते थे। मुझे भी जब कभी किसी

विषय पर बातचीत करने का मौका मिला तो वे इतनी ज्यादा छानबीन करते कि कभी-कभी अंदर से गुस्सा आ जाता था। ऐसा लगता था जैसे किसी बात के पीछे ही पड़ गये हैं। पर दूसरे ही क्षण यह महसूस होने लगता कि यह भी डा० साहब की एक खूबी थी। वे किसी भी विषय को समुद्र मान कर उस की गहराई में जाने का प्रयत्न करते थे। इस के अलावा हर व्यक्ति उन के लिए महान था। इसलिए डा० लोहिया एक व्यक्ति नहीं बल्कि अपने आप में सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का निचोड़ बन गये थे। खानाबदोशी की जिंदगी थी और कार्यकर्ताओं के अलावा न उन के पास कोई पूँजी थी, न बैंक-बैलेंस। रामसेवक यादवजी ने एक बार मुझ से कहा था कि डा० लोहिया को हम प्यार इसलिए करते हैं कि अपने या पराये का भेद उन के जीवन में नहीं।

एक दिन मैं लोकसभा के दरवाजे के पास अपनी गाड़ी का इंतजार कर रही थी कि देखा कि डा० लोहिया आ कर खड़े हो गये। मैं ने पूछा कि डा० साहब कहाँ जाना है? मैं वहाँ पहुँचा दूँ? उन्होंने कहा कि काफीहाउस जाना है, वहीं पहुँचा दो। वे गाड़ी में बैठ गये। काफीहाउस के नजदीक गाड़ी पहुँची तो उन्होंने गाड़ी से उतरते मुझ से भी उतरने के लिए कहा। मैं ने कहा, "नहीं, डा० साहब, जहाँ आप जा रहे हैं वहाँ बहुत हंगामा रहता है, मैं नहीं जाऊँगी।" मेरी इस बात को सुन उन्होंने मुझे बहुत डाँटा और कहा, "जिस तरह की जनता यहाँ आती है उस जनता-जनार्दन को तुम हंगामा कहती हो! तारकेश्वरी, मुझे बड़ा अफसोस है कि तुम्हारे दिमाग में इस तरह का भेद है। मैं यह मानता हूँ कि यहाँ आम जनसमूह आता है—गाड़ीवाला, बैल-गाड़ीवाला, रेड़ीवाला, टैक्सी चलानेवाला ड्राइवर, सरकारी दफ्तर में काम करने वाला, कर्मचारी। तुम समझती हो कि इन लोगों के बीच तुम्हारा जाना तुम्हारी शान के खिलाफ है? अगर तुम ऐसा समझती हो तो मैं यही मानूँगा कि तुम्हारा दिमाग भ्रष्ट है।" मुझे याद है कि मैं ऊपर से नीचे तक तिलमिला उठी थी और साथ ही यह भी महसूस किया था कि मेरे मन में अगर इस तरह का पाप है तो मुझे उस को निकाल कर फेंक देना चाहिए।

व्यक्तिगत समानता, सामाजिक वर्गों में समानता के साथ स्त्री-पुरुष की समानता का सिद्धांत उन की रग-रग में भरा हुआ था। ऐसा लगता था कि जैसे उन का रोम-रोम बेचैन था समानता लाने में। एक बार केंद्रीय कक्ष में डा० साहब बैठे हुए थे। आमतौर पर जहाँ वे बैठे होते वहाँ अच्छी खासी भीड़ जमा हो जाती। संसद के सदस्य और अखबारवाले उन्हें घेर लेते। देखा कि डा० साहब एक बड़ी भीड़ में घिरे बैठे हैं और हँसी-मजाक का फव्वारा छूट रहा है। संसद में वे जितने कठोर रहते, संसद के केंद्रीय कक्ष में उतने ही नम्र और स्नेह से भरपूर। संसद में कटु आलोचना करने के बाद बाहर निकलने पर अगर डा० साहब की नजर हम लोगों पर पड़ जाती थी तो

जमात थी। उस जमात का अपने आप में कोई व्यक्तित्व नहीं बन पाया था। इसलिए कभी किसी ने उस पार्टी को महत्त्व ही नहीं दिया था। फिर एक दिन डा० साहब को पहली बार संसद में देखा। देखते ही ऐसा लगा कि यह आदमी कट्टर होने के साथ-साथ बहुत भावुक है, जो एक तरफ महात्मा है, तो दूसरी तरफ मूर्ति भंग करने वाला विद्रोही।

संसद में आते ही डा० लोहिया जवाहरलालजी की कटु आलोचना करने लगे। जब भी कोई मौका होता डा० लोहिया भरपूर कोशिश करते कि जवाहरलाल नेहरू पर सीधा प्रहार किया जाये। एक दिन मैं ने उन से पूछा कि डा० साहब आप इतने महान व्यक्ति हैं, इतने कर्मठ, इतने उदार हैं, फिर भी आप इस तरह से पंडितजी के पीछे क्यों पड़े हुए हैं? डा० लोहिया ने उस समय जो बात कही थी वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कहा, "तारकेश्वरी, मेरा रिश्ता जवाहरलाल से क्या था, तुम यह समझ नहीं सकतीं। जवाहरलाल को मैं ने सिर्फ सहयोगी ही नहीं माना था बल्कि अपना देवता माना था। उस व्यक्ति ने हमारी क्रांति की लपट को बुझा दिया। वह जो समाजवाद का अग्रणी था, जिस से हम ने इतनी उम्मीदें बाँध रखी थीं, उस ने हमारी सभी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मेरी मायूसी, का तुम अंदाज भी नहीं लगा सकतीं। पर यह देश तो ऐसा है जो बराबर मूर्तिपूजक रहा है और जवाहरलाल नेहरू को भी मूर्ति बना कर पूजने लगा है। जब तक यह मूर्ति भंग नहीं होगी तब तक यह देश नेहरू का मूर्तिपूजक बना रहेगा। इस देश के लोग पीपल के नीचे यदि एक पत्थर को भी देख लेते हैं, जहाँ किसी ने दो-चार फूल फेंक दिये हों, तो उस पत्थर की भी पूजा करने लगते हैं। इसलिए अगर देश के अवास्तविक सपनों को तोड़ना है और देश को झकझोरना है तो नेहरू की मूर्ति भंग करनी ही पड़ेगी।"

डा० साहब को संसद में जब किसी विषय पर भाषण देना होता तो उस विषय की गहराई में जाने के लिए महीनों समय लगाते थे। और इसीलिए जब किसी बात को उठाते थे तो उस विषय के आँकड़े उन की अँगुलियों पर थिरकते रहते। वैसे उन के घर पर जाने का मौका मुझे कम मिला, पर जब भी गयी तो देखा एक मजमा लगा रहता। उस में कुछ शिक्षक, कुछ मजदूर, कुछ किसान और कुछ कार्यकर्ता होते थे। डा० लोहिया का यही परिवार था, जिस के वे अभिभावक नहीं, सहयोगी थे। उन के बारे में यह कहा जा सकता था—

दलित आ जा, थकित आ जा
व्यथित आ जा, तृषित आ जा
मिल न पाया प्यार जिन को
आज उन को प्यार मेरा

किसी भी विषय पर चर्चा करना हो तो जिस तरह वकील किसी को 'क्रास-एक्जामिन' करता है उसी तरह से वे पूछताछ करते थे। मुझे भी जब कभी किसी

विषय पर बातचीत करने का मौका मिला तो वे इतनी ज्यादा छानबीन करते कि कभी-कभी अंदर से गुस्सा आ जाता था। ऐसा लगता था जैसे किसी बात के पीछे ही पड़ गये हैं। पर दूसरे ही क्षण यह महसूस होने लगता कि यह भी डा० साहब की एक खूबी थी। वे किसी भी विषय को समुद्र मान कर उस की गहराई में जाने का प्रयत्न करते थे। इस के अलावा हर व्यक्ति उन के लिए महान था। इसलिए डा० लोहिया एक व्यक्ति नहीं बल्कि अपने आप में सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का निचोड़ बन गये थे। खानाबदोशी की जिंदगी थी और कार्यकर्ताओं के अलावा न उन के पास कोई पूँजी थी, न बैंक-बैलेंस। रामसेवक यादवजी ने एक बार मुझ से कहा था कि डा० लोहिया को हम प्यार इसलिए करते हैं कि अपने या पराये का भेद उन के जीवन में नहीं।

एक दिन मैं लोकसभा के दरवाजे के पास अपनी गाड़ी का इंतजार कर रही थी कि देखा कि डा० लोहिया आ कर खड़े हो गये। मैं ने पूछा कि डा० साहब कहाँ जाना है? मैं वहाँ पहुँचा दूँ? उन्होंने कहा कि काफीहाउस जाना है, वहीं पहुँचा दो। वे गाड़ी में बैठ गये। काफीहाउस के नजदीक गाड़ी पहुँची तो उन्होंने गाड़ी से उतरते मुझ से भी उतरने के लिए कहा। मैं ने कहा, "नहीं, डा० साहब, जहाँ आप जा रहे हैं वहाँ बहुत हंगामा रहता है, मैं नहीं जाऊँगी।" मेरी इस बात को सुन उन्होंने मुझे बहुत डाँटा और कहा, "जिस तरह की जनता यहाँ आती है उस जनता-जनार्दन को तुम हंगामा कहती हो! तारकेश्वरी, मुझे बड़ा अफसोस है कि तुम्हारे दिमाग में इस तरह का भेद है। मैं यह मानता हूँ कि यहाँ आम जनसमूह आता है—गाड़ीवाला, बैल-गाड़ीवाला, रेड़ीवाला, टैक्सी चलानेवाला ड्राइवर, सरकारी दफ्तर में काम करने वाला, कर्मचारी। तुम समझती हो कि इन लोगों के बीच तुम्हारा जाना तुम्हारी शान के खिलाफ है? अगर तुम ऐसा समझती हो तो मैं यही मानूँगा कि तुम्हारा दिमाग भ्रष्ट है।" मुझे याद है कि मैं ऊपर से नीचे तक तिलमिला उठी थी और साथ ही यह भी महसूस किया था कि मेरे मन में अगर इस तरह का पाप है तो मुझे उस को निकाल कर फेंक देना चाहिए।

व्यक्तिगत समानता, सामाजिक वर्गों में समानता के साथ स्त्री-पुरुष की समानता का सिद्धांत उन की रग-रग में भरा हुआ था। ऐसा लगता था कि जैसे उन का रोम-रोम बेचैन था समानता लाने में। एक बार केंद्रीय कक्ष में डा० साहब बैठे हुए थे। आमतौर पर जहाँ वे बैठे होते वहाँ अच्छी खासी भीड़ जमा हो जाती। संसद के सदस्य और अखबारवाले उन्हें घेर लेते। देखा कि डा० साहब एक बड़ी भीड़ में घिरे बैठे हैं और हँसी-मजाक का फव्वारा छूट रहा है। संसद में वे जितने कठोर रहते, संसद के केंद्रीय कक्ष में उतने ही नम्र और स्नेह से भरपूर। संसद में कटु आलोचना करने के बाद बाहर निकलने पर अगर डा० साहब की नजर हम लोगों पर पड़ जाती थी तो

तुरंत बुला कर बैठा लेते थे, जबरदस्ती समोसा और आइसक्रीम खिलाते थे और बिना काफी पिलाये वहाँ से हटने नहीं देते थे। शनिवार का दिन था, इसलिए संसद का अधिवेशन तो नहीं था, पर केंद्रीय कक्ष खुला हुआ था। मैं अपने दोनों बच्चों को साथ ले कर उन को आइसक्रीम खिलाने के लिए केंद्रीय कक्ष में आयी। डा० साहब ने देखते ही बुलाया। जब वहाँ पहुँची तो किसी विषय पर चर्चा हो रही थी। मैं ने बातचीत के सिलसिले में एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि किसी मजमे में जब कुछ पुरुष हतोत्साह दिखायी देने लगे तो मैं ने उन लोगों से कहा कि आप पुरुष होते हुए भी महिलाओं से भी बदतर हो गये हैं। अच्छा यह होगा कि आप चूड़ी पहन कर बैठ जायें। डा० साहब बहुत गुस्सा हो गये और उन्होंने मेरी लड़की से कहा, "देखती हो–तुम्हारी माँ तुम्हारे खिलाफ कितनी बड़ी बात कह रही है। चूड़ी क्या कमजोरी का प्रतीक है? एक महिला के मुँह से इस बात का निकलना कि तुम जन्मजात कमजोर हो, कतई उचित नहीं।" और फिर एक बार मेरी लड़की की ओर इशारा करते हुए कहा कि तुम्हारी माँ को तुम्हें कमजोर बनाने का कोई हक नहीं। मेरी लड़की एकटक उन का मुँह देख रही थी। सारे सदस्य हँस रहे थे और मैं भीतर ही भीतर इस क्रांतिकारी इनसान को तोलने की कोशिश कर रही थी।

डा० लोहिया ने सिर्फ राजनीतिक

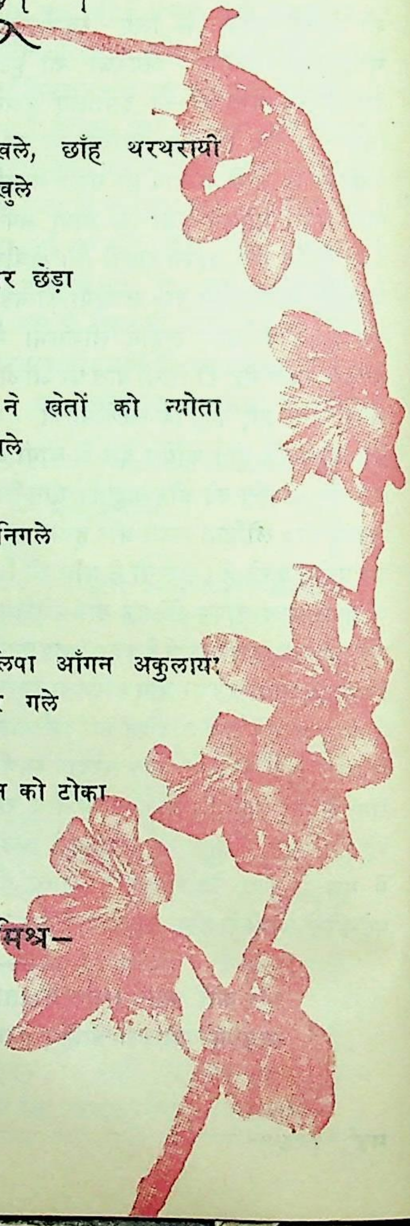
और सामाजिक प्रांगण में समानता का अलख नहीं जगाया बल्कि भारत की भाषाओं को भी एक नया मोड़ दिया। उन का यह विश्वास था कि भारत की जनता को अपनी भाषा के लिए स्वाभिमान चाहिए। उन्होंने अँगरेजी को हटा कर क्षेत्रीय भाषाओं को इसीलिए प्रश्रय दिया। कहना तो यह चाहिए कि डा० लोहिया के आने के बाद ही संसद में हमें पहले-पहल महसूस हुआ कि भाषा अपने आप में कितना महत्त्व रखती है। क्षेत्रीय भाषाओं का विकास डा० लोहिया की बड़ी देन है। एक बार उन्होंने लोकसभा में सरदार स्वर्णसिंह की किसी बात पर आलोचना करते हुए कहा कि स्वर्णसिंहजी, तुम झूठ बोल रहे हो। कांग्रेस दल के लोगों ने इस पर आपत्ति की और कहा कि माननीय सदस्य डा० लोहिया गलत और हलके शब्द का प्रयोग करते हैं। सदस्यों ने माँग की कि वे अपने शब्द वापस लें, पर डा० लोहिया अड़े रहे। बाहर आ कर मैं ने कहा, "आप इतने विद्वान हैं, भाषा के ऊपर आप का इतना प्रभुत्व है, फिर आप ने 'झूठ' शब्द का क्यों इस्तेमाल किया? झूठ की जगह आप सरदार स्वर्णसिंह से यह कहते कि आप असत्य बोल रहे रहे हैं।" उन्होंने बहुत ही कटाक्ष-भरे शब्दों में मुझ से कहा, "तारकेश्वरी, 'असत्य' तो पढ़े-लिखे लोगों के कोश का शब्द हो सकता है, आम जनता अपनी बातचीत के लिए 'झूठ' शब्द का ही प्रयोग करती है। एक रेड़ीवाला इसी शब्द का इस्तेमाल करेगा, 'असत्य' शब्द का नहीं। और इस देश की भाषा वह है जो साधारण जनता बोलती है।" इस छोटी-सी घटना में उन का जो रूप मैं ने देखा उस से मेरा रोआँ-रोआँ गद्‌गद हो गया। आज वे संसद में नहीं हैं। एक उदासी की भावना बनी रहती है। वे जिस तरह से हमारे बीच आँधी की तरह आये, उसी तरह चले गये। उन का आना जितना आकस्मिक था, उन का जाना उतना ही दुखद। अभी भी संसद की गलियों में उन के पदचिह्न दिखायी पड़ते हैं। उन की ध्वनि संसद की दीवारों में इस तरह लिपट गयी है कि वे दीवारें अभी भी कुछ कहती रहती हैं। डा० लोहिया हमारे बीच से क्या गये, ऐसा लगा कि एक युग चला गया। देश में आज ऐसा कोई व्यक्ति दिखायी नहीं देता जो उन सभी रास्तों पर चलने की क्षमता रखता हो। वही एक व्यक्ति थे जिन्होंने भगवान को इनसान और नेता को मानव बनाने की कोशिश की। डा० लोहिया महान मानव की तरह राजनीतिक धरातल पर अवतरित हुए। इसीलिए जब वे हमारे बीच से चले गये तो संसद में किसी ने कहा था—मजनू जो मर गया है

जंगल उदास है

यदि कोई महान बनना चाहता है तो उसे महानता को भूल कर सत्य को खोजना चाहिए। तब उसे दोनों ही चीजें प्राप्त होंगी।

—होरेस मैन

सेमल के फूल खिले



सेमल के फूल खिले, छाँह थरथरायी
जीवन के पृष्ठ खुले
याद उभर आयी

महुए के फूलों ने मादक स्वर छेड़ा
फागुन के ओठ हिले
बाँह कसमसायी

बाँटा खलिहानों ने खेतों को न्योता
हँसियों के दूत चले
फसल गुनगुनायी

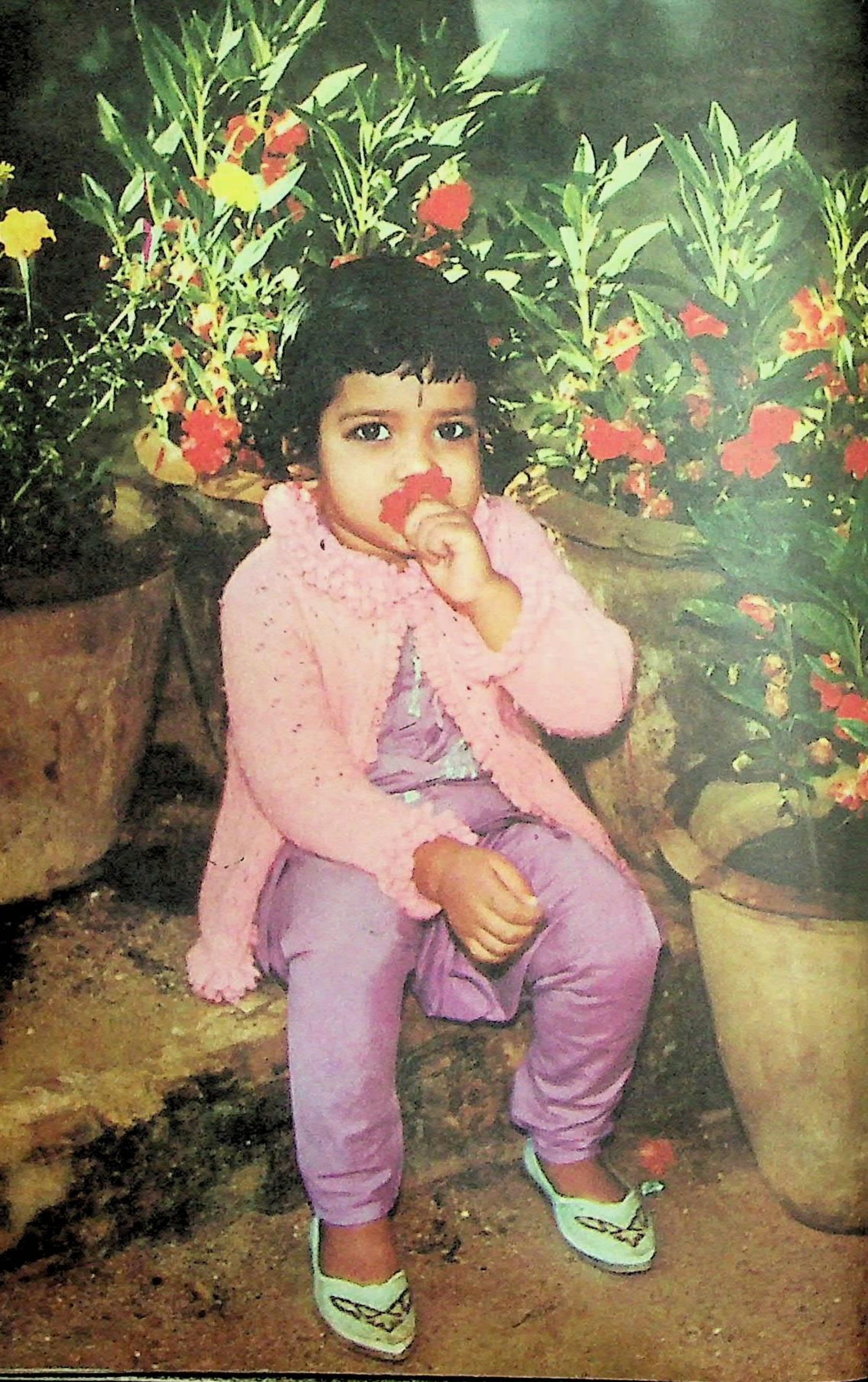
फूले वन-टेसू को सूनापन निगले
धुँधलाये क्षण मचले
ऊँघती तराई

धरती का गंध-लिपा आँगन अकुलाया
सपनों के शिखर गले
पीड़ा गदरायी

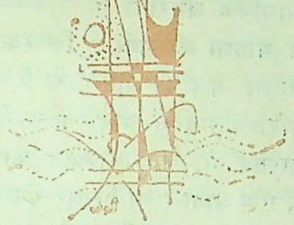
मौसम ने कुछ बिसरे पल-छिन को टोका
कुछ कहने के पहले
आँख डबडबायी

—छविनाथ मिश्र—





क्षणिकाएँ



दुपहरी

जेठ की दुपहरी
अंबर के माथे पर धूल
पलकों पर चुभ गये बबूल
पर फैला उड़ता आकाश
मौन फाँकता हुआ पलाश
बाँस-वन सिहरते हैं
दिन चुप-चुप पत्तों-से झरते हैं

—माताचरण मिश्र

समय

यह समय दुधारी तलवार है
प्यार भी युद्ध है
युद्ध भी प्यार है
किसी को किसी का एतबार नहीं
इस बात पर सब को एतबार है
दुनिया के तमाम अखबारों में
यह एक धारावाहिक समाचार है

—श्रीकांत जोशी

शिशु-मन

मैं भुला देता हूँ
पंछी के परित्यक्त पंख-से
अतीत को
लेकिन फिर भी
न जाने क्यों
मेरा शिशु-मन
एक-एक पंख को
चुनने लगता है !

—भीखमचंद ओझा

सड़क

गरमी से परेशान हो
लपलपाती जीभ वाले कुत्ते की तरह
सड़क आयी
और धर्मभीरु यात्री की तरह
सामने पड़ने वाली नदी में स्नान कर
भीगी बिल्ली की तरह
जंगलों में भाग गयी

—रामनारायण उपाध्याय

साँझ

दिन भर की श्रमिता साँझ
दोपहर के कपड़े उतार
नंगी कूद पड़ी है क्षितिज के सरोवर में
बादलों के छितराये टुकड़े
शर्म से लाल पड़ गये हैं
कुछ काली चादर का कोना खींच रहे हैं

—योगेन्द्र किसलय

सब सुखी रहें

● लक्ष्मीनिवास बिड़ला

सुख का विवेकपूर्ण आधार ही सही आधार है। और इस का अभी निर्माण किया जाना है, कहीं ऐसा न हो कि दुखों का भार असावधान जनता को कुचल दे। नेता भले ही असफल हों, स्वयं जनता असफल न हो

प्राचीन भारत का सांख्य दर्शन मनुष्य को 'दुख के पूर्ण उन्मूलन' के लिए परम पुरुषार्थ करने का आदेश देता है। आधुनिक अमरीका के लोकतंत्री सिद्धांत में घोषणा की गयी है कि स्वतंत्रता का महत्त्व 'सुख की प्राप्ति' के लिए अनुकूल परिस्थितियों में योगदान करने में है। वास्तव में, मानव-सभ्यता की दीर्घाओं में एक आवाज जो निरंतर गूँजती रही है, वह है दुख से मुक्ति की कामना की। सुख की खोज, सुख की भावना से प्राप्त, सुख की दृष्टि से संचालित, मनुष्य के परम लक्ष्य पर छायी हुई है।

इस का कारण जीवन को कल्याण की भावना से––आत्मा के, व्यक्तित्व के, मन के, शरीर के कल्याण की भावना से––ढालना है। आनंद के स्रोत की प्राप्ति जीवन की प्रेरक शक्ति है। आनंद के स्रोत तक पहुँचने में जो कुछ बाधक है, अथवा बाधा डालता दिखायी देता है, उस सब पर नियंत्रण करना इस शक्ति का उद्देश्य है। वह जीवन और मृत्यु के बीच के रंगीन इंद्रधनुष से टकराती रहती है। उपनिषद का कहना है : संपूर्ण जीवन की उत्पत्ति आनंद से हुई है। वास्तव में, जीवन की ज्योति ही जीने का आह्लाद है। गीता में तो यहाँ तक कहा गया है : "मोह-भावना से आत्म-उत्पीड़न सहित किये गये तप 'तामस' कहलाते हैं (श्लोक १९, अध्याय १७)। वंचना में धर्म का उत्कृष्ट रूप प्रकट नहीं होता। गुलाब में काँटे होते हैं। उन का गुण उस की रक्षा करना है। किंतु

गुलाव का वास्तविक आकर्षण उस की पंखुड़ियों की रंगीन सुगंध में है ।

जीवन की शक्ति वस्तुओं को आनंद के रूपों में परिवर्तित करने में, कष्टों को सुख के रंगों में रंगने से, सिद्ध होती है । अँगरेज कवि पोप की ये पंक्तियाँ एकदम हृदय को छू लेती हैं--

'हे सुख, तू हमारी सत्ता का निष्कर्ष और लक्ष्य है। सद्, आनंद, विश्राम, संतोष, तेरा कुछ भी नाम हो।'

विषाद जीवन का शत्रु है। वह मन की अस्वस्थता है, जिस से शक्ति नष्ट होती है और विपत्ति आती है। इस के विपरीत, दुख को जीतना सर्वोच्च विजय है। जिस के मन में अपने दुख पर विजय पाने की क्षमता है, वह ऋषि है, जिस ने न केवल अपने वरन मनुष्यमात्र के दुखों को जीतने की क्षमता प्राप्त कर ली है, वह संत है। भगवान बुद्ध ने सभी मनुष्यों को दुख पर विजय प्राप्त कर सकने का मार्ग दिखाया। ईसा मसीह को मनुष्य के 'दुखों पर विजय' का प्रतीक माना गया। दूसरों के दुखों को अपने ऊपर ले कर, गर्व-द्वेष से रहित हो कर कष्टों को शांतिपूर्वक हर लेने के आनंद में निमग्न होना महान जीवन की कला है। इस कला में संकीर्णता के लिए कोई स्थान न होने से सार्थक सुख में सभी का भाग होना ही चाहिए। एकांतिक सुख स्वार्थ है, दूसरों के दुख की प्रतिक्रिया होती है। कहीं भी अँधेरा कोना हो, विषाद का स्थल हो, अथवा संघर्ष का क्षेत्र हो, रोग का यह ऐसा कीटाणु है जिस से छूत फैलना और मानवता के स्रोतों का विषाक्त होना अनिवार्य है। इसी से 'महाभारत' में जगद्व्यापी सामंजस्य की प्रार्थना की गयी है--

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

(सभी सुखी हों, सभी मन एवं शरीर से स्वस्थ हों, सभी एक-दूसरे का भला चाहें, दुख किसी के भाग्य में न हो।)

यह महाप्रार्थना जन-जन के मन में स्पंदित हो रही है। और मूल समस्या--कही या अनकही--क्या है ? वह कौन-सी वस्तु है जो सुख को उस की वास्तविक चमक, उस का वास्तविक आकर्षण, उस का भावनात्मक रस प्रदान करती है ? मानसिक सुख की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी भौतिक सुख की। भौतिक सुख के लिए प्रथम आवश्यकता अभाव से मुक्ति की है। 'महाभारत' में स्पष्ट कहा गया है कि 'पंचमहादुखों' में अभाव सब से अधिक क्षतिकारी है, और उस के बाद जीवन-निर्वाह तक के लिए अत्यंत कठोर श्रम करना है। आज भी अटलांटिक घोषणा-पत्र में प्रतिज्ञापित 'चार मुक्तियों' में अभाव से मुक्ति को सम्मिलित करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। अभाव के विरुद्ध अभियान आज के स्वतंत्र विश्व का अभियान है।

जीना तभी अच्छा लगता है जब वह भयकारी अग्नि-परीक्षा न बने। भौतिक साधन महत्त्वहीन नहीं हैं, क्योंकि अभाव

मनुष्य की सारी शक्ति को सोख लेता है और उस में मन के अभौतिक आनंदों की अनुभूति कर पाने की प्रवृत्ति भी नहीं रहती। मन ही मनुष्यों को प्राप्त वह अद्वितीय उपहार है, जो उसे पशु-संसार में एकांतिक वरीयता प्रदान करता है, जो उसे सृष्टि में सम्मानजनक स्थान दिलाता है, जो अब तक विकास-प्रक्रिया में अंतिम शब्द का द्योतक है। मन ही मनुष्य को सृष्टि-रंगमंच का मुख्य अभिनेता बनाता है।

और, अभाव से मन क्षीण होता है, बुद्धि का ह्रास होता है, उस की अंतर्ज्योति पर कुहरा एवं धुआँ छा जाता है, उसे क्षुद्र बना देता है और उस के आंतरिक सौंदर्य को हर लेता है। तब हमारा पहला संघर्ष अभाव के विरुद्ध होना चाहिए। किंतु ऐसा करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस युद्ध के धर्म-युद्ध न रहने पर मनुष्य की प्रतिष्ठा गिर जाने का संकट है। युद्ध की दिशा को इस आशा के साथ नियंत्रित करना है कि व्यक्ति की युग-चेतना मनुष्य की मुक्ति के क्षेत्र का विस्तार कर सकेगी।

मानव-जीवन परिवर्तनशील है। 'जहाज के पंछी' की तरह वह एक बल्ली से उड़ कर दूसरी बल्ली पर जा बैठता है। इस का कोई ज्ञात कारण नहीं है सिवा इस के कि मानवीय विश्व-रचना के परि-दृश्य में सदा समय का माप नहीं रहा है। युग सिमट कर, दुख का एक क्षण बन गये हैं, अथवा दुख का एक क्षण युगों लंबा हो गया है। बिना आयी कोई नहीं मरता, किंतु मरण के कष्टों का अनुभव अनेक बार हो सकता है।

केवल स्वतंत्र मन से ही सुखी मन हो सकता है और सुख का निर्माण किसी सरकारी विभाग के द्वारा नहीं किया जा सकता। उस का निर्माण सुख की खोज करने वाले और इस लक्ष्य की प्राप्ति में अपने निजी साधन जुटाने वाले व्यक्ति ही करेंगे। दूसरे लोग तो, जिन में सरकार भी है, इस प्रयत्न में सहायता ही दे सकते हैं। 'सद्-जीवन' के विचार—नैतिक और सौंदर्यपरक—दोनों स्थिर नहीं रहेंगे। अनेक अस्थायी निर्णय करने होंगे, परीक्षण करने होंगे और उद्देश्यों तथा प्राथमिकता, निष्कर्षों तथा संदर्भों की निरंतर तुलना करनी होगी।

ऐसा हो सकता है कि कभी-कभी लोग स्वप्नों को सुख समझने के छल में आ जायें। लोग तो इस बात के लिए बने हैं कि जो कुछ दिखाया जाये उसी की खोज करते हुए, उसी को देखते हुए, चलते चले जायें, यद्यपि वे परम सामंजस्य की खोज करते हैं। क्षणिक भावना स्वप्न की भाँति ओझल हो जाती है। एक अन्य मोह या भ्रम सत्य दिखायी देने लगता है। उसे भी नष्ट होना ही है। फिर भी शासक-वर्ग भावी विश्व का मात्र काल्प-निक सुनहला रूप खींचते रहते हैं। उन का उद्देश्य लोगों को वास्तविकता के प्रभाव से अलग रखना होता है। नका-रात्मक सिद्धांत अपना कर वे एक भूली-

बिसरी रचना के सारे सौंदर्य का चित्र खींचते रहते हैं। अंततः आत्म-ज्ञान के अनुभव से बचने के लिए उन का यही ढंग है। जीवन उन के लिए एक प्रकार का जुआ है। वे उन भ्रमों को पालते रहते हैं जो कदाचित यथार्थ से अधिक सुंदर और अधिक पूर्ण हैं और जो, कुछ के विचार से, कानून हैं। उन का अपना अस्तित्वमात्र मृगतृष्णावत है और इसलिए वे दूसरे लोगों की मृगतृष्णाओं का आदर करना सीख लेते हैं। लोग भूले अतीत और झूठे भविष्य के बीच फँस जाते हैं।

ज्ञान ही, जिस में विज्ञान भी है, मनुष्यों का सही दृष्टिकोण है। वे सब-कुछ जानने को स्वतंत्र है। ज्ञान ही स्वयं पर शासन करने की शक्ति है। यंत्रवत केंद्रीय निर्देशन से समानता पैदा होना आवश्यक नहीं है।

अनेक लोगों ने अमरीका में एक भारतीय पर्यटक के हाल में एक अनुभव के बारे में सुना होगा। यात्रा-पत्रों को दर्ज कराते हुए उस ने विमान-कंपनी को सूचित किया कि वह शाकाहारी है। यह सूचना परिकलक-यंत्र (कम्प्यूटर) को दी गयी और फिर परिकलक-यंत्र से कार्यकारी शाखा को हिदायतें मिल गयीं। लेकिन विमान में भारतीय यात्री को भी वही खाना मिला जो दूसरों को दिया गया था। उस ने परिचारिका का ध्यान इस ओर खींचा, जो प्रबंधक को बुला लायी। प्रबंधक ने जब विस्तृत हिदायतों पर दृष्टि डाली, तो पता चला कि परिकलक-यंत्र ने कहा था : "अब शुक्रवार को मांस खाया जा सकता है।" एक विख्यात अँगरेजी लेखक ने एक बार कहा था : "असमान परिस्थितियों में समानता असमानता है।" किसी भी व्यापक रूप से मान्य प्रणाली में ऐसे निश्चित, बने-बनाये मानदंड नहीं हैं जिन से क्षमताओं का मूल्यांकन किया जा सके।

आज का समाज जीवन को इतने भावनात्मक कोण से नहीं देखता। शांत-स्वभाव अर्थशास्त्रियों का कहना है कि मुद्रा का सभी दिशाओं में और सभी वर्गों में प्रचलन होना चाहिए। तर्क दिया जाता है कि मानव अनमान के अनुसार मानव को उस की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करने भर को तो मिलना ही चाहिए। इस तर्क का कारण केवल अंतरात्मा या भावना ही नहीं है, वरन यह आशंका भी है कि बढ़ता हुआ अभाव समाज पर छा जायेगा। प्लेटो का गणराज्य, मूर का आदर्श लोक, मार्क्स का सर्वहारा-वर्ग (सिद्धांत), मानव-संबंधों में अधिक सामंजस्य लाने के लिए समाज के पुनर्गठन में तत्पर है। अभाव केवल निर्धनों की समस्या नहीं है, वह धनिकों की भी समस्या है, जिसे उन्हें अर्थ-व्यवस्था के साधनों और आध्यात्मिकता की भावना से सुलझाना है। इसी प्रकार विकसित देश साथी राष्ट्रों के आर्थिक पिछड़ेपन की उपेक्षा नहीं कर सकते। आज की दुनिया इतनी संगठित हो चुकी है कि एक दूसरे को नहीं भुला सकता।

कभी-कभी त्रुटियाँ होना संभव है। किंतु सच्चाई से त्रुटि का होना स्वतंत्रता का अंग है। यदि कोई अपनी त्रुटियों के प्रति सचेत है, तो उस ने कितनी गलती की, यह महत्त्वहीन है। आवश्यकता तो सब ओर से शक्तियों को मुक्त करने की है।

प्रगति का संकेत मतभेदों के प्रति आदर से मिलता है। राजनीतिक नियमों और आर्थिक नियमों में एक-दूसरे के प्रति सच्चा और उदार आदर होना चाहिए। सच्चा और पूर्ण सुख राजनीति और अर्थशास्त्र के बीच सूक्ष्म संतुलन बनाये रखने से ही प्राप्त हो सकता है। दोनों अपने तथ्यों पर आधारित हैं और दोनों को उन कल्पनाओं से मुक्त किया जाना चाहिए जो दोनों को ही भ्रम में डालती दिखायी देती हैं। दोनों अपने-अपने ढंग से तर्कसंगत और व्यवहार्य हैं। किसी भी दशा में, हठधर्मिता नहीं होनी चाहिए और अर्थ-शास्त्र तथा राजनीति के बीच निरंतर आदान-प्रदान होते रहना चाहिए, जिस से वे एक-दूसरे के लिए व्यापक उपलब्धि में सहायक हों और किसी के अंतर्जात सिद्धांतों का उल्लंघन न करें।

इस के लिए आवश्यकता ऐसा निर्णय करने की है जिस से वस्तुओं को उन के सही परिप्रेक्ष्य में देखा और ढाला जाये तथा उद्देश्य की एकता प्राप्त की जाये, जिस से सभी को संतोष हो और किसी का बलिदान न हो। किसी भी स्वस्थ एवं लाभकारक निर्णय में स्वतंत्रता तथा विचार का समन्वय आवश्यक है। विचार-रहित स्वतंत्रता से उच्छृंखलता या मूढ़ता पैदा होती है और स्वतंत्रता-रहित विचार या तो जड़ होता है या त्रुटिपूर्ण। फलदायक प्रभाव के लिए स्वतंत्रता का उपयोग विचार के साथ तथा विचार स्वतंत्रता के साथ किया जाना चाहिए। मन का धर्म सोचना है और मनुष्य का स्वतंत्रता, अतः सफलता का मार्ग स्वतंत्र चिंतन से ही है।

मनुष्य को अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए प्रेरणा-स्रोतों का विकास करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। लोकतंत्र और स्वतंत्रता एक सरल मान्यता पर आधारित हैं, सही ढंग से सूचित जनता का बहुमत उचित निर्णय करेगा। तथापि, आज और प्रतिदिन, बड़ी संख्या में लोग शिकायत करते हैं कि सरकार बहुत अधिक अधिकार अपने हाथों में ले रही है। हमें और हमारी संततियों को सैकड़ों महत्त्वपूर्ण ढंगों से प्रभावित करने वाले बड़े-बड़े निर्णय, निश्चय ही, सही ढंग से सूचित मतदाताओं के बहुमत द्वारा नहीं किये जाते वरन उन पदारूढ़ व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं जिन के चुनाव में जनता ने सचेतन भाग नहीं लिया है। अधिकतर, नीति-निर्माताओं ने कल्याण-कार्यक्रम की अपनी धारणाओं से करोड़ों व्यक्तियों को भरमाया है। समय निकट है, जब कि ज्ञात यथार्थ का ऐसा अज्ञान मतदाताओं को एकमात्र अवशिष्ट साधन अपनाने को बाध्य कर देगा: बिना सोच-

विचारे भावना से काम करने का। विख्यात अमरीकी लेखक फिलिप वायली का कहना है: "केवल ईश्वर (और शैतान) को ही लोगों के जीवन से खिलवाड़ करने का अधिकार प्राप्त है।" साथ ही, हमें अपना यह प्राचीन मंत्र याद रखना चाहिए: "प्रजा विष्णुः।" और उस दशा में हमें आशा करनी चाहिए कि जनता अपनी सही स्थिति से परिचित हो कर राजनीतिक रूप से सही और आर्थिक रूप से भी तर्कसंगत जीवन-दृष्टि अपनायेगी।

जनता एक समूहवादी शब्द है। इस का अर्थ है संपूर्ण जनता : समान उद्देश्य से, समान उपलब्धि से, संगठित जनता, जो अपनी प्रकटतः अनेकता से विचलित नहीं होती वरन अपनी अंतर्जात एकता से अनुप्राणित है। तब मैं, उपनिषद के महान शब्दों में प्रार्थना करता हूँ: **स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु (श्वेताश्वतरोपनिषद्)**--भगवान हमें शुभ बुद्धि दे। हमारे मत हमें विभाजित न करें, सभी समान उपलब्धि के लिए अपने धर्म का पालन करें, वे अंतरविरोध के बिना विभिन्न गुणों का आदर करें। सुख का विवेकपूर्ण आधार ही सही आधार है। और इस का अभी निर्माण किया जाना है, कहीं ऐसा न हो कि दुखों का भार असावधान जनता को कुचल दे। नेता भले ही असफल हों, स्वयं जनता को असफल नहीं होना चाहिए। उस की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह असफल होने को सहन कर सके।

वर विबाह-मंडप में बैठा अनुष्ठान संपन्न कर रहा था। उस ने देखा कि दालान में तख्तों के ऊपर कीमती सामान सजाया जा रहा है। उस ने किसी से पूछा कि यह क्या हो रहा है? बताया गया कि दहेज सजाया जा रहा है। वर तत्काल उठ पड़ा और उस ने वह सारा सामान लेने से इनकार कर दिया। उस ने किसी का कहा नहीं माना। ससुर ने समझाया, "यह तो रस्म है, सारा सामान स्वेच्छा से दिया जा रहा है। अगर आप इसे अस्वीकार कर देंगे तो परिवार की मानहानि होगी।" पर वर ने साफ कह दिया कि यह सब होगा तो मैं मंडप से उठ जाऊँगा। ससुर के बहुत हठ करने पर वर ने कहा, "आप की बहुत इच्छा है तो एक चरखा और कुछ गज खादी दहेज-स्वरूप दे दें।"

वर थे स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री।

● मालती जोशी



"अम्मा ! आज पूर्णमासी है, तुम कुछ करने के लिए कह रहीं थीं न !"

"क्या सचमुच आज पूर्णमासी है ?"

"हाँ, तुम्हें अब क्या तिथियाँ याद नहीं रहतीं, अम्मा !"

"नहीं रे . . . सोच रही हूँ कि एक महीना हो गया। और उस दिन सोच रही थी कि उस के बिना एक दिन भी नहीं जी सकूँगी . . ."

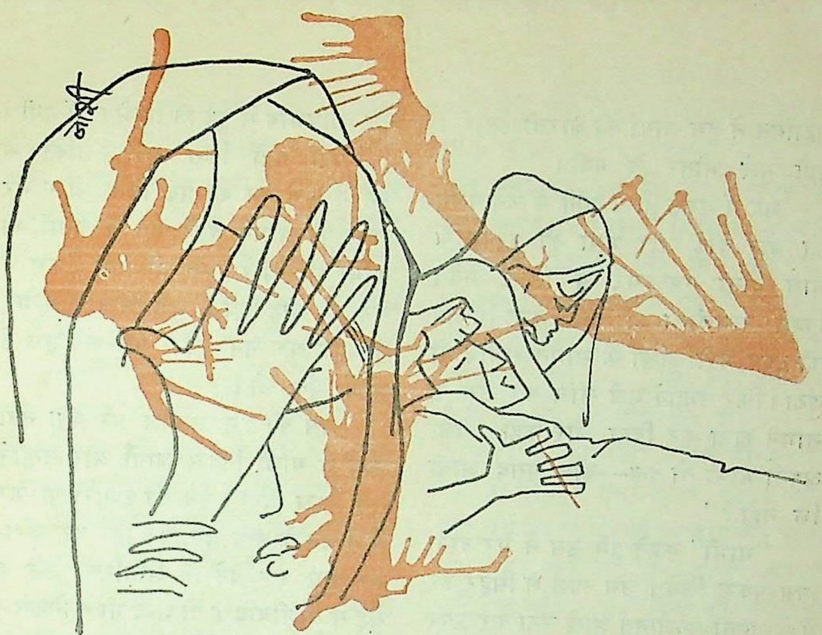
"अम्मा . . ."

इस के बाद कान तो कुछ नहीं सुन सके, पर मेरी कल्पना की आँखों ने देख लिया कि माँ का सिर बेटे के कंधे पर टिका है और दोनों निःशब्द रुदन में डूब गये हैं। मन कैसा हो आया ! मैं भारी कदमों से रसोई की ओर मुड़ गयी।

दरअसल मैं इन से एक बहुत ही जरूरी बात कहने गयी थी। आज सुबह नहाते समय एक दर्द की लहर शरीर में दौड़ गयी थी—वही चिर-प्रतीक्षित, आशंकित लहर। मैं ने सोचा था इन के दफ्तर जाने से पहले नर्सिंग-होम चल कर चेक करा लेते तो ठीक था। पर ठीक इसी समय उद्धव का प्रसंग छिड़ जाना मुझे बड़ा अशुभ-सा लगा। एक खीझ-सी हुई मन में। क्या मरने के बाद भी उस का साया हमारी गृहस्थी के ऊपर मँडराता रहेगा ?

मेरे इस घर में आने से पहले ही उद्धव मेरे जीवन में आ गया था। अपनी सब से प्यारी साड़ी पहन कर मैं इन के साथ घूमने गयी थी। 'नंदनवन' की हरी-हरी दूब पर बैठते ही इन्होंने बिना किसी भूमिका के प्रारंभ कर दिया था—"संध्या, शादी से पहले मैं अपने घर का चित्र तुम्हारे सामने रखना चाहता हूँ। मेरा बहुत छोटा-सा परिवार है। माँ हैं, जिन्होंने लाख मुसीबतें झेल कर मुझे इस काबिल बनाया है। दूसरा है उद्धव, मेरा छोटा भाई—१५ वर्ष की कच्ची उम्र में ही बस-दुर्घटना में उस के दोनों पैर बेकार हो गये हैं। पाँच वर्षों से वह बिस्तर पर है (यहाँ इन की आँखें भर आयी थीं) मेरे और अम्मा के आधे प्राण उसी में बसते हैं। मुझे ऐसी पत्नी चाहिये जो मेरी इन जिम्मेदारियों को खुशी-खुशी बाँट सके। तुम से हो सकेगा यह सब ?"

इन्होंने प्रश्न-भरी आँखों से मुझे देखा था। इन के करुण सम्मोहन ने मुझे



बाँध लिया और उस अनजान अपंग युवक के प्रति मन ममता से भर उठा। यह तो उसी दिन जान गयी कि इन के अंदर का पुत्र और भाई इन पर सदा हावी रहेगा। तब तो इसी बात पर मुग्ध हो कर अंतर्मन से इन्हें वर लिया था। और तब अपने मानस में राम और लक्ष्मण के साथ नित्य नये विनोद की कल्पना में विवाह की तिथि को जोहती रही।

शादी इन के ताऊजी के यहाँ से हुई। इस खुशी के मौके पर भी माँजी ने अपने बीमार बेटे का साथ नहीं छोड़ा और मेरे मन में उन का आसन और ऊँचा उठ गया।

लोकाचार जैसे-तैसे निबटा कर हम लोग पहली बार घर आये थे, वह दिन आज भी भूलता नहीं है। पड़ोसी गिरिजा बाबू स्टेशन पर हमें लेने आये थे। उन्होंने बताया कि नयी भाभी को ले कर उद्धव के आनंद और उत्कंठा की सीमा नहीं है। माँजी के पीछे पड़ कर उस ने पूरे मकान की सफेदी करवायी है। शादी की रात महल्ले की औरतों को बुला कर रतजगा भी करवाया है। बंदनवार उस ने खुद अपने हाथों बनाये हैं।

ताँगा रुकते ही मैं ने देखा, बंदनवारों से सजा, लिपा-पुता घर अपनी समस्त दीनहीनता लिये सामने खड़ा था। भाग्य के थपेड़ों के बीच दो अनाथ बालकों के साथ जिंदगी की राह पर चलने वाली माँजी का प्रतीक-सा ही लगा वह मुझे।

दरवाजे पर संभवतः पड़ोस की किसी

सुहागिन ने हम लोगों की आरती उतारी। वही मुझे भीतर ले गयी।

घर में घुसते ही ये कोने में लगे पलंग की ओर दौड़े और भैया की पुकार के साथ दोनों एक-दूसरे से लिपट गये। किसी रामलीला में देखे भरत-मिलाप का दृश्य मेरी आँखों के सामने सजीव हो उठा। फिर उन्होंने मुझे खींच कर उस के सामने खड़ा कर दिया और कहा, "देख, अपनी भाभी तो देख--बोल पसंद आयी कि नहीं?"

"भाभी" कहते हुए उस ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। उस स्पर्श से सिहर कर मैं ने अपनी लज्जानत आँखें उठा कर ऊपर देखा।

मेरी कल्पना का उद्धव यह नहीं था। मेरी कल्पना का उद्धव सिनेमा और उपन्यासों का मरीज था--लाख कष्टों के बावजूद जिस के चेहरे की कांति अक्षय रहती है--वेदना और यंत्रणा जिसे और आकर्षक बना देती है।

मेरे सामने जो उद्धव था, वह यथार्थ का उद्धव था। किशोरावस्था में ही अपंग हो जाने के कारण वह बुझ-सा गया था। अपनी विवशता की पीड़ा और कर्मण्यता का अहसास अभावों में पले उस के कंकाल-प्राय चेहरे को और भी करुण तथा विरूप बना रहा था। मैं हृदय से कठोर न सही, पर उसे अपनी समस्त आंतरिकता के साथ ग्रहण न कर सकी। अपनी कल्पना का यह विद्रूप मुझ से सहा नहीं गया। एक वत्सल सीता, एक फ्लोरेंस नाइटिंगेल आविर्भाव से पूर्व ही विलीन हो गयी।

पता नहीं किस संवेदन-शक्ति से उस ने मेरे मन को पढ़ लिया और मेरे हाथों को थामने वाले उस के हाथों की गरमी धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। उस ने मेरे हाथ छोड़ दिये। "मुझे लिटा दो अम्मा, मैं बहुत थक गया हूँ," कह कर उस ने आँखें मूंद लीं।

उस की इस आवाज पर पता नहीं कहाँ से माँजी निकल आयीं और उन्होंने उसे लिटा दिया। इन का इशारा पा कर मैं ने उन के पाँव छुए, पर सिर पर जरा-सा हाथ रख देने के अतिरिक्त उन के मुँह से आशीर्वाद के दो शब्द भी न निकले। एक जबरदस्त अपेक्षाभंग का वातावरण घर में छा गया था--हम सब के सपने कपूर की भाँति उड़ गये थे। मुझ से इस बारे में कभी भी किसी ने कुछ नहीं कहा। मैं हमेशा सफाई देने के लिए छटपटाती रही, पर बिना अभियोग के सफाई कैसी?

पम्मी के जन्म के बाद बस इन्होंने इतना कहा था, "एक बार इसे अम्मा को दिखा लाते।" इस बार घर जाने पर मैं ने अपने मधुर व्यवहार से माँजी का मन मोह लिया। पम्मी तो जैसे उन के गले का हार बन गयी थी। अपनी पिछली भूलों का प्रायश्चित करने के लिए कृत-संकल्प मैं माँजी को साथ ले चलने के उपाय कर रही थी। मुझे मालूम था कि इन के मन में हमेशा यह इच्छा रही है। बँगले के उस सुनिश्चित कोने की तरह इन के मन का कोना भी खाली-खाली रहता

था, यह भी मैं जानती थी। इसलिए उद्धव को भी इस बार मैं ने शिकायत का मौका नहीं दिया। उस ने कभी कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। बीमार व्यक्तियों का अहं वैसे भी भारी होता है—पर मैं अपने कर्त्तव्यबोध से सब कुछ कर रही थी।

मुझे खुशी थी कि इस बार दिन खैरियत से गुजर रहे हैं।

शायद चौथे या पाँचवे दिन की बात है। मैं नहा रही थी। दो कमरों का छोटा-सा घर था। रसोई बंद करके नहाना पड़ता था। तभी मैं ने सुना, उद्धव कह रहा था, "अम्मा! भाभी कहाँ हैं?"

"नहा रही हैं। क्यों रे?" माँजी ने पूछा। मुझे भी आश्चर्य हुआ कि आज मेरी क्या जरूरत पड़ गयी।

"एक बार गुड्डी को मुझे दो न अम्मा!" कुछ क्षण खामोशी रही—"अम्मा, बस थोड़ी-सी देर को।"

इस बार उस के स्वर में बला की आजिजी थी। शायद तभी तो माँजी से नहीं रहा गया होगा। उस का असीम दैन्य मुझे खल गया। मुझ से छिपा कर मेरी बच्ची को देखने का प्रस्ताव ऐसा ही कुत्सित लगा, जैसे मेरी अनपस्थिति में किसी ने मेरे जेवरों का बक्स खोल लिया हो। उस के कंकालप्राय खुरदरे हाथों द्वारा पम्मी के शरीर के सहलाये जाने की कल्पना से मैं सिहर उठी। क्या पता उस ने अपने घिनौने मुख से उसे चूम भी लिया हो।

पता नहीं कौन-सी बात मेरे मन में गड़ गयी कि किसी तरह बेतरतीबी से साड़ी पहन मैं ने दरवाजा खोल दिया और झपट कर उस की गोद से पम्मी को उठा लिया। उसे छाती से लगाये मैं मुड़ी ही थी कि माँजी से आँखें मिल गयीं। बेटे का अपमान वहाँ प्रतिबिंबित हो उठा था। पता नहीं वहाँ क्या - क्या था—क्रोध, अपमान, घृणा . . . पर मेरा साहस न हुआ कि उन की ओर देख सकूँ।

घर की यह मेरी अंतिम यात्रा थी।

ये तो हर दूसरे-तीसरे महीने जाते और एक उदासी की पर्त सी ओढ़ कर वापस आ जाते। कई बार मन हुआ कि जा कर उसे देख आऊँ। उन लोगों की गलतफहमियाँ दूर कर आऊँ, पर अपने पर से विश्वास ही जैसे उठ गया था।

विधि का विधान भी कैसा है! उस के अंतिम समय भी जाना न हो सका। वे ही गये और आते समय माँजी को ले आये। जो कमरा वर्षों से उद्धव और माँजी की प्रतीक्षा करता रहा था—उस में माँजी अकेली आयी थीं। उन के साथ आयी थी शोक की एक काली छाया, जो निरंतर घर पर छायी रहती। उन के आते ही घर एकदम छोटा हो गया था और प्रच्छन्न रूप से दो दलों में बँट गया था। मैं कितनी अकेली पड़ गयी थी!

"संध्या, तुम्हारा जी कैसा है?"

मैं ने चौंक कर देखा, कुरसी की पीठ पर हाथ रखे ये खड़े थे। "इधर से गुजरा तो देखा डाइनिंग-टेबल पर सिर रखे सो रही हो। पहले तो सोचा सो लेने

दो, पर देखता हूँ चेहरा बेहद उतरा हुआ है—खैरियत तो है ?"

"मेरा खयाल था—एक बार नर्सिंग-होम हो आते।"

"जरूर, जरूर," वे बोले और तेजी से बाहर निकल गये। कुछ ही देर में हम लोग गाड़ी में सड़क नाप रहे थे। तब खयाल आया, चलने से पहले माँजी से कहना चाहिए था, पर घबराहट में याद न रहा।

नर्सिंग-होम पहुँचने भर की देर थी। उन लोगों ने मुझे हाथोंहाथ लिया और दूसरे ही क्षण मैं प्रसूति-कक्ष में थी। मुझे सिस्टर के हाथ सौंप कर ये चले गये थे—दफ्तर या क्या पता बाहर ही बैठे हों। सफेद कपड़ों में लिपटी उन नर्सों के बीच मैं अपने आप को नितांत असहाय और अकेला अनुभव करने लगी। पम्मी के समय की यादें अपनी सारी वहशत के साथ मुझ पर हावी हो गयीं और मेरा दम घुटने लगा। उसी समय दरवाजा खुला और डा. अलकारानी ने कहा, "मिसेज श्रीधर, आप की सास आयी हैं।"

मैं ने देखा, माँजी अपराधी-सी मुद्रा में सिरहाने खड़ी हैं। "मुझ से रहा नहीं गया। बिटिया दुलारी को साथ ले कर चली आयी।"

"ठीक है," मैं ने कहा। मुझे बड़ी शर्म आ रही थी। घर से निकलते समय इन से कह कर भी नहीं आ सकी थी।

उसी समय दर्द की एक लहर उठी और मैं ने "ओ माँ" कह कर माँजी के दोनों हाथ पकड़ लिये। पीड़ा के वे क्षण बीत जाने पर भी मुझे याद रहा कि वे दुबले खुरदरे हाथ अजीब-सी ममता से भीगे हुए थे। उस समय भी वे माथा सहला रही थीं और मुझे अच्छा लग रहा था।

दर्द के वे क्षण कितनी बार दोहराये गये। माँजी हर बार मेरे साथ पसीने से नहा आती थीं, मानो मेरी पीड़ा को वे अणु-अणु के साथ अनुभव कर रही थीं। डॉक्टर ने दो-तीन बार आदर से, फिर कुछ रुखाई से उन से धीरज रखने के लिए कहा। एक बार तो दबी जबान से बाहर बैठने का भी अनुरोध किया। पर मैं उन्हें दृढ़ता से पकड़े रही। उन भावविहीन चेहरों के बीच उन्हीं का चेहरा तो था जो मेरी वेदना से विह्वल हो रहा था। मेरी पीड़ा को एक अकेली वे ही तो समझ रही थीं, क्योंकि सृजन की यह पीर उन्होंने भी तो सही थी।

फिर एक अजीब-सा विचार मन में आया। जिसे इतनी पीड़ा के साथ जन्म दिया होगा, उसे अपनी ही आँखों के सामने तिल-तिल कर मृत्यु के मुख में जाते देखना कितना दुख देता होगा! किस तरह सहा होगा उन्होंने इसे?

कौन-सी पीड़ा अधिक कठिन है—जन्म की या मृत्यु की? पाने की या खोने की? अपने विचारों के रेले में मैं देख रही थी कि डाक्टर और नर्स दोनों के चेहरे बदहवास से लग रहे थे। मैं अपने आप को किसी बर्फीले प्रदेश में जाते हुए देख रही थी। वे लोग विचित्र दृष्टि से मुझे घूर

रही थीं। हर पाँच मिनट पर तड़पा देने वाली वे दर्द की लहरें पता नहीं कहाँ खो गयी थीं। उन की प्रतीक्षा में कमरे में एक तनाव भर गया था।

मुझे मम्मी बेतरह याद आ रही थीं। वे हमेशा कहती थीं–'डिलीवरी' में दोनों का जन्म होता है––माँ और बेटे का। तभी तो ४२ वर्ष की उम्र में शिशु को जन्म देने की पीड़ा उन से सही नहीं गयी। आपरेशन-रूम से बाहर लाते हुए स्ट्रेचर पर उन का सफेद निष्प्राण चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ रहा है।

कैसा होता होगा मरण पार का देश? क्या वहाँ जाने पर मम्मी से फिर भेंट हो सकेगी? और उद्धव––क्या वह भी मिलेगा? उस की करुण असहाय आँखों का अभियोग क्या अब भी उतना ही ताजा होगा? अपनी सफाई में मुझे क्या कहना होगा?

स्स . . . इंजेक्शन की जैसे कई एक सुइयाँ चुभो दी गयी हों––पर मेरी चेतना लौट आयी। और कम्बख्त वही दर्द फिर उभर आया। सफेद कमरा, सफेद चमकीले बल्ब, सफेद वस्त्रों में लिपटी नर्सें––सब जैसे घूम गये। केवल दो दुबले खुरदरे हाथ स्थिर थे, जो मेरे माथे पर थे।

शिशु के कर्कश रुदन से कमरा भर उठा, तनाव टूटने लगा और हर चीज जैसे फिर अपनी जगह पर लौट आयी थी।

डाक्टर अलका कह रही थीं, "माँजी, मुबारक हो, पोता हुआ है।"

माँजी ने हाथ जोड़ कर कहा, "वह तो जो भी है भगवान की देन है, पर आप ने मेरी बेटी को बचा लिया . . ." इस से आगे वे कुछ न कह सकीं। उन का गला रुँध गया। सिस्टर ने उन्हें सहारा दे कर बिठा दिया।

थकान से बोझिल पलकें उठा कर मैं ने देखा––उन का चेहरा भी बेहद थका हुआ लग रहा था। जैसे पीड़ा का हर क्षण उन्होंने मेरे साथ जिया है। इस के अतिरिक्त मेरी संभावित मृत्यु की आशंका भी उन्हें पस्त कर गयी थी। मैं ने एक बेटे के जन्म की पीड़ा को सहा है––उन्होंने शायद एक बेटी की मृत्यु को सहा है।

पीड़ा की ये अनुभूतियाँ हमें एक साथ बाँध गयी थीं। मैं ने उन का हाथ अपने हाथ में ले कर क्षीण स्वर में कहा, "माँजी, इधर देखिये न, उद्धव हमारे बीच फिर लौट आये हैं।"

उन्होंने डबडबायी आँखों से मेरी ओर देखा। फिर उन के चेहरे पर एक मुसकराहट फैल गयी। मुझे ऐसा लगा जैसे ओस-भीगी सुबह में सूरज की किरणें नहा गयी हों। ●

मिस रोज से जब सहेली ने जॉन से मँगनी तोड़ देने का कारण पूछा तो वह बोली, "मैं जब उस के साथ होटल में लंच करने गयी तो देखते ही देखते तीन लोगों ने आ कर उस के कानों पर अपने टोप टाँग दिये!"

• महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न धारा

प्रायः ८४ वर्ष पहले विद्वद्वर शशधर तर्कचूड़ामणि महोदय ने, नाना युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा, यह बात प्रतिपादित की थी कि पूर्ण मनुष्यत्व का विकास केवल भारतवर्ष में ही हो सकता है। शीत, ग्रीष्मादि षड्ऋतुओं का संबंध तथा विभिन्न प्रकार के परस्पर-विरुद्ध धर्मों का समन्वय एकमात्र भारतवर्ष में ही दिखायी देता है। प्रसुप्त शक्तियों के विकास के लिए यही योग्य क्षेत्र है। हुआ भी ऐसा ही--यहाँ जिस संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, जगत के और किसी देश में उस की उपमा नहीं है। मिस्र, फिनिशिया, पार्थिया, क्रीट, भूमध्यसागर की प्राच्य-प्रांत-भूमि, ग्रीस, प्राचीन चीन--किसी भी देश की संस्कृति गंभीरता, व्यापकता, विरोध-समन्वय-सामर्थ्य और सर्वतोमुख विकास के विषय में भारतीय संस्कृति के साथ तुलना-योग्य नहीं प्रतीत होती। व्यष्टि के साथ समष्टि का तथा दूसरी ओर सर्वातीत मूल सत्ता का इस प्रकार अद्भत समन्वय और किसी देश में नहीं मिलता। यदि किसी दिन भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक क्रम-धारा के अंतराल में रहने वाले तत्त्वों का विश्लेषण संपन्न होगा तो इस संस्कृति की महिमा प्रस्फुटित होगी।

हिंदू-संस्कृति इस मूल-संस्कृति का एक-देश-मात्र है। एक चिंतनशील लेखक ने कहा था कि इस मूल-संस्कृति से ही क्रमिक संकोच-विकास के प्रभाव से नाना संस्कृतियों का उद्भव हुआ है। दस्युओं की संस्कृति, द्राविड़-संस्कृति, आर्य-संस्कृति, बौद्ध-जैन-संस्कृति तथा अभिनव हिंदू-संस्कृति इसी की क्रमविवर्त्तमान अवस्था-मात्र हैं। वानरों की तथा राक्षसों की संस्कृति भी उसी की विकृति-मूलक स्फूर्ति है।

आदान और विसर्ग दोनों व्यापार जीवनी-शक्ति के निदर्शक हैं। जो निगूढ़ शक्ति व्यक्तिगत देह का संरक्षण करने के लिए बाहर से पुष्टि-साधक उपादान

खींच कर उन को देह-रूप में परिणत कर रही है, जिस के फल से काया का पोषण होता है, उसी एक शक्ति से एक ही प्रयोजन सिद्ध करने के लिए देह के भीतर से अनावश्यक हानिकारक मलादि दूषित पदार्थों का अपसरण होता है।

इन दोनों कार्यों में जीवन-व्यापार निष्पन्न होता है। समष्टिगत सामाजिक देह तथा महा-समष्टिगत विश्व-देह के विषय में भी यही एक नियम है। किसी भी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा के संरक्षण का यही रहस्य है।

एक प्रदीप से जैसे सहस्र प्रदीप प्रज्वलित किये जा सकते हैं, वैसे ही एक जीवंत संस्कृति के प्रभाव से सहस्र उपसंस्कृतियों का विकास होता है। भारतवर्ष से तिब्बत (महाचीन), चीन, नेपाल, मध्यएशिया, गांधार, जापान, कोरिया, ब्रह्मदेश, प्राच्य द्वीप-पंज (सुवर्णद्वीप, बालिद्वीप, यवद्वीप आदि), प्रतीच्य उपद्वीप, ईरान, सिंहल आदि नाना देशों में सभ्यता का विस्तार हुआ है, यह अखंडनीय ऐतिहासिक तथ्य है। संभवतः बेबिलोन, मिस्र, उत्तर-सीरिया, फिलिस्तीन, मैसन आदि स्थानों में भी ऐसा ही हुआ है। क्रीट, एशियामाइनर आदि स्थानों में जो प्राचीन तांत्रिक साधना के भग्नावशेष मिले हैं, उन का आलोचन करने से प्रतीत होता है कि इस का मूल भी परंपरा से भारतवर्ष ही है। वैदिक और तांत्रिक दोनों साधनों से देश, काल और निमित्तों के भेद से विशिष्ट आकारों में जगत के यावतीय साधनों का उद्भव हुआ है। मूसा, पाइथागोरस, अपालोनियस, ईसा आदि के जीवन-चरित्रों का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि वे लोग अपने दिव्य ज्ञान और शक्ति के लिए साक्षात या परंपरा से भारतवर्ष के ऋणी थे।

और-और धर्मों का जैसा नाम है, भारतीय मूल-धर्म का वैसा कोई नाम नहीं है। हो भी नहीं सकता; क्योंकि जो नित्य व्यापक और सनातन है, वह परिच्छिन्न नाम से परिचित होने योग्य नहीं है। इसीलिए, इस का नाम सनातनधर्म है। बौद्ध, जैन भी इसी प्रकार मल-धर्म को सद्धर्म मात्र कहते थे। परंतु व्यवहार-क्षेत्र में विशेष नाम का प्रयोग अवश्य हुआ है। तदनसार. आर्य, हिंदू आदि नामों से सनातन भारतीय संस्कृति का प्रतिपादन करने की चेष्टा की जाती है।

प्रत्येक संस्कृति की एक विशिष्ट आत्मा है। यही उस का बीज-स्वरूप है। बीज अविनश्वर है, अर्थात प्रवाह-रूप में नित्य है। वृक्ष शुष्क हो जाने पर भी जैसे उस का बीज रह जाता है और सुयोग प्राप्त होने पर फिर अंकुरित होता है, संस्कृति का बीज भी ऐसा ही होता है। जाति में यदि वैशिष्ट्य संरक्षित रहे, तब तो वह जाति जीवित रहती है, उस समय भी बीज तो रहता ही है, परंतु जाति का लोप हो जाने पर भी उस के बीज का नाश नहीं होता।

जाति की आत्मा क्या है? इस विषय के विशेषज्ञ आचार्य कहते हैं कि यह

विशिष्ट संस्कारों का अयुतसिद्ध संघात-मात्र है। प्रत्येक देश में जल, वायु, भूमि, सूक्ष्म वातावरण आदि कारणों से एक विशिष्ट प्रकृति का विकास होता है। उस देश में दीर्घकाल अवस्थान करने के प्रभाव से उस पर देश-प्रकृति की छाप लग जाती है। 'भारतीय-संस्कृति' शब्द का तात्पर्य यह है कि यह संस्कृति पूर्वोक्त प्रणाली से भारतीय प्रकृति की छाप से अंकित है। इसीलिए इस में आर्य, द्राविड़, दस्यु, किरात, शक आदि बहुभावापन्न विभिन्न धाराओं के योग रहने पर भी सभी अल्पाधिक भारतीय प्रकृति-संपन्न होने के कारण भारतीय संस्कृति के अंतर्गत माने जाते हैं। इस के अतिरिक्त देश-प्रकृति के अनुरूप काल-भेद से भी एक नैमित्तिक परिवर्तन होता है, उसे युग-प्रकृति कह सकते हैं। इन सब प्रकृतियों के भीतर हो कर बीज का आत्मविकास सिद्ध होता है। आनुषंगिक तथा पारिपार्श्विक अवस्था का भी एक प्रभाव है, पर वह उतना गंभीर नहीं है।

इसी प्रकार सूक्ष्म प्रणाली से आलोचना करने पर समझ में आ सकता है कि भारतीय समाज-विज्ञान भेद के भीतर अभेद के दर्शन और अभेद की प्रतिष्ठा के विषय में एक प्रशंसनीय उद्यम है, परंतु परिश्रम करके इस का आविष्कार करना पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने जैसे क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष इन दो परस्पर-विरुद्ध तत्त्वों के समन्वय के लिए पुरुषोत्तम तत्त्व का प्रतिपादन किया था और जैसे कामना और निष्क्रियता के एकाधार में समाधान के लिए निष्काम कर्म-रूप महायोग का अवतारण किया था, भारतीय संस्कृति का रहस्य भी उसी समन्वय-मार्ग से उद्घाटित होगा, इस में कोई संदेह नहीं।

भारतीय संस्कृति को अखंड सत्य का पता है। इसी से यह खंड सत्य का भी आदर कर सकती है। इस देश की प्रत्येक विद्या, प्रत्येक कला, प्रत्येक शास्त्र ही एक महान उद्देश्य से अनुप्राणित है। ब्रह्म-प्राप्ति या आत्मलाभ ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है। प्राचीन समय में भारतवर्ष में सर्व प्रकार साधन का यही परम उद्देश्य था।

भारतवर्ष का यह ज्ञान था कि आत्म-लाभ होने पर और किसी वस्तु की प्राप्ति शेष नहीं रहती। **'भूमैव सुखं नाल्पे सुख-मस्ति'**, इस श्रुति में कहा गया है कि जो भूमा या अनंत है, वही आनंद-स्वरूप है। इस वस्तु का नाम आत्मा है। जो अनात्मा है, वह सीमाबद्ध और परिच्छिन्न भी है, इस में आनंद नहीं है। नित्य, निर्मल चिरस्थायी आनंद प्राप्त होने पर जीवन का सर्वविध अभाव सदा के लिए मिट जाता है और मनुष्य आप्तकाम हो कर धन्य होता है। यह यथार्थ आनंद बाहर की ओर अन्वेषण करने से नहीं मिल सकता, हृदय के भीतर स्थिर दृष्टि डालने पर ही उस का पता लग सकता है। अंतर्मुख अवस्था में, परिश्रम किये बिना, स्वतःसिद्ध रूप में उस का प्रकाश होता है। ऋषि इस वस्तु की खबर रखते थे,

इसलिए वे अपनी समाज-व्यवस्था, शिक्षा-प्रणाली, कर्त्तव्य-निर्णय आदि विषयों को इस प्रकार कौशल से बना गये हैं कि आ-पामर सभी लोग उन के वाक्य-अनुसरण-पूर्वक चल कर इस महान ऐश्वर्य की प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर हो सकते हैं। जो लोग अ-जपा-साधन करते हैं, उन का अनुभव है कि प्रतिश्वास में भगवन्नाम-स्मरण का प्रभाव कितना अधिक है। इसी प्रकार ऋषि लोग भी जीवन के प्रति कार्य में प्रति पद-क्षेप में भगवत-शक्ति के अनुस्मरण का माहात्म्य जानते थे। लौकिक विद्या का दृष्टांत दे कर इस विषय का किंचित स्पष्टीकरण करना है। विद्या के अनंत भेद होने पर भी यह अखंडनीय सत्य है कि मल में विद्या एक ही है। जिस से सत्य या तत्त्व की प्राप्ति होती है, वही विद्या है। यथार्थतः उसी का नाम ब्रह्म-विद्या है। वस्तुतः लौकिक विद्या भी तभी उपादेय रूप में परिगणित हो सकती है, जब वह किसी भी प्रकार से ब्रह्मविद्या का कार्य करती हो।

व्याकरण-शास्त्र वस्तुतः केवल 'ग्रामर' नहीं है । यह भी ब्रह्मविद्या ही है । इस का मुख्य उद्देश्य वाक्शुद्धि अथवा शब्द-संस्कार है। इसलिए, **'वाङमयानां चिकित्सितम्'** कहा गया है। शब्दमात्र शोधित करने पर प्रणव-रूप में परिणत हो जाता है, क्योंकि व्यवहार के सब शब्द ही विकृत रूप हैं। जिन के मूल में एक ही प्रकृति है, वही प्रणव है। उस के विकास में अंतःकरण-ग्रंथि छिन्न हो कर आत्म-साक्षात्कार का उदय होता है। उस समय वह शब्द सिद्ध-शब्द, अर्थात कामधेनु-रूप में प्रकट हो जाता है और लौकिक तथा अलौकिक सर्वविध कल्याण का साधन करता है।

वाक की व्याकृत और अव्याकृत अवस्था व्याकरण से ही जानी जा सकती है। परा वाक अव्याकृत है। वाक-शुद्धि की प्रक्रिया से पश्यंती वाक-पर्यंत साक्षात्कार हो जाने पर योगी ऋषिपद-वाच्य हो जाते हैं। यह दिव्य ज्ञान की अवस्था है। षोडश-कल पुरुष या आत्मा में यही वाक अमृतकला रूपा है।

इसी प्रकार, छंदःशास्त्र केवल 'प्रोसोडी' नहीं है। यह भी ब्रह्मविद्या है। छंद से ही जगत की सृष्टि होती है और सृष्टि के अतीत परमपद को पाने के लिए भी छंद ही उपाय है : **"छन्दांसि छादनात्'**। देवता किसी समय मृत्यु से भयभीत हुए थे। उसी समय छंदों ने उन्हें आच्छादित कर मृत्यु से बचाया था। छंद और वेद स्वरूप में एक ही हैं। छंद से शुद्ध जिस सृष्टि का आविर्भाव होता है, उसी में ब्रह्म में प्रविष्ट होने की सामर्थ्य रहती है। जिस में छंद नहीं है या जिस का छंद विकृत है, वह ज्योति के राज्य में नहीं जा सकता।

रोग, शोक, ताप का उद्भव छंदोभंग से ही होता है। स्वच्छंद अवस्था ही मुक्ति-प्रद है। आत्मा की मोक्ष-दशा में छंद ठीक रहता है। उसी को पुनः प्राप्त करना छंदोविज्ञान का उद्देश्य है।

काव्य और साहित्य क्या हैं? ये 'पोएट्री' अथवा 'रेटारिक' मात्र नहीं हैं। ये भी ब्रह्मविद्या हैं। प्राचीन काल में कवि-पद से ब्रह्मविद समझा जाता था। **'कवयः क्रान्तदर्शिनः'** यही प्राचीन दृष्टि है। **'कविं पुराणमनुशासितारम्'** इत्यादि वचनों में भी कवि शब्द से ज्ञानी ही माना जाता है। वाक (शब्द) और अर्थ के सहित भाव से ही साहित्य का उद्भव है। वाक और अर्थ यथाक्रम शक्ति और शिव के वाचक हैं। शिवशक्ति-सामरस्य ही साहित्य है। इस की आत्मा अथवा प्राण रस है। ह्लादिनी-शक्ति तथा संवित-शक्ति इन दो स्वरूप-शक्तियों के अभेद से रस का आस्वादन होता है: **'रसो वै सः।'** वस्तुतः रस स्वयंप्रकाश ब्रह्म-तत्त्व का ही नामांतर है।

इसी प्रकार संगीत-शास्त्र और नाट्य-शास्त्र ब्रह्मविद्या हैं। नाद से सृष्टि होती है तथा नाद में ही लय होता है। नाद का विज्ञान ही संगीत-विद्या है। नृत्य-विज्ञान भी वस्तुतः ब्रह्म-विज्ञान ही है। नटराज शंकर अथवा नटवर श्रीकृष्ण के नृत्य से जगत का उद्भव हुआ है और उसी में उस का पर्यवसान भी होता है।

वैदिक कर्मकांड ब्रह्म-विज्ञान की ही अत्युच्च अभिव्यक्ति है। वेदि-तत्त्व, कुंड-तत्त्व, विभिन्न प्रकार के अग्नि-तत्त्व, अग्नि-चयन, अग्नि-मंथन आदि व्यापार ब्रह्मविद्या के ही अंगीभूत हैं।

सच कहा जाये तो प्राचीन काल में काम-शास्त्र भी ब्रह्म-विज्ञान का ही रूप रहा है। यह केवल 'सेक्सुअल साइंस' या 'इरोटिक्स' नहीं है। कामकला-तत्त्व की अभिव्यक्ति के साथ इस का घनिष्ठ संबंध है। पुरुष और प्रकृति, अर्थात नायक और नायिका, किस प्रकार मिलित होने पर दोनों के अर्धांग यथावत मिल कर पूर्णांग अखंड ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हो सकते हैं, उसी का रहस्य काम-कला-विज्ञान में है।

कहने का तात्पर्य यह कि आत्मविद्या ही मुख्य विद्या है। इतर विद्याएँ मुख्य नहीं हैं। इस का ज्ञान ही रहस्य-ज्ञान है।

बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने एक बार दरबारियों से पूछा, "हिंदुओं के पंचांग में जब चंद्रग्रहण आदि का विवरण होता है तो भूकंप की तिथि का संकेत क्यों नहीं होता ?" हिंदू पंडित चकरा गये। प्रश्न कृष्णनगर दरबार के गोपाल भाँड ने भी सुना। वह सिराजुद्दौला के दरबार में जा कर बड़ी गंभीरतापूर्वक बोला, "हुजूर, हिंदू मृतकों का दाह-संस्कार करते हैं, इसलिए उन की आत्मा स्वर्ग जाती है। वहाँ से वह अपने कुटुंबियों को ग्रह-नक्षत्र आदि की गति-विधियाँ बताती है। मुसलमान तो अपने मुरदे गाड़ते हैं हुजुर, अतः उन की रूह जमीन में चली जाती है। भूकंप जमीन में होता है, इसलिए इस के बारे में जानकारी भी मुसलमान भाइयों को ही होनी चाहिए।"



एक ही तो है मर्द

गोल्डा शेलानू

● राजेन्द्रमोहन अग्रवाल

इजरायल के दिवंगत प्रधानमंत्री लेवी एश्कोल का स्थान एक महिला ने लिया है। ये महिला हैं--श्रीमती गोल्डा मायर। गोल्डा इजरायल की चौथी प्रधानमंत्री हैं और संसार की महिला प्रधानमंत्रियों में उन का नंबर तीसरा है--श्रीमावो भंडारनायक, इंदिरा गाँधी और गोल्डा मायर। गोल्डा पिछले चालीस वर्षों से इजरायल के भाग्य का संचालन कर रही हैं। इजरायल में एक कहावत प्रचलित है कि इजरायली सरकार के समस्त निर्णय गोल्डा मायर की रसोई में पक कर तैयार होते हैं। गोल्डा को इजरायल के लोग स्नेहवश हमारी गोल्डा--गोल्डा शेलानू कह कर पुकारते हैं।

इन का जन्म रूस के कीव नगर में हुआ और माता-पिता ने इन का नाम गोल्डी माबोविच रखा। किशोरावस्था में ही ये विद्रोहिणी हो गयीं और १४ वर्ष की अवस्था में पिता के घर से भाग कर अपनी बहिन के यहाँ डेनवर चली गयीं। अंततः माता-पिता ने इन की बात मान ली और शिक्षा प्राप्त कर शिक्षिका बनने की अनुमति दे दी। इन की शिक्षा-दीक्षा अमरीका के मिलवूकी में हुई। जार के अत्याचारों से भाग कर दूसरे यहूदियों के साथ इन के माता-पिता भी वहाँ चले गये। १९२१ में गोल्डा अपने पति मारिस मायरसन के साथ फिलिस्तीन चली आयीं। इन्होंने दो वर्ष किबुत्ज (सहकारी कृषि-फार्म) में तथा चार वर्ष यरुशलम में भयंकर दरिद्रता की अवस्था में बिताये। बाद में इन के पति अमरीका लौट गये लेकिन ये अपनी बेटी सारा और बेटे मेनाशेम के साथ इजरायल में ही रहीं। कुछ समय पश्चात इन के पति भी इजरायल लौट आये और मुनीमगीरी करने लगे।

१९५१ में मारिस मायरसन का देहांत हो गया। गोल्डा की बेटी अब नेगेव मरुथल के एक किबुत्ज में रहती हैं और बेटा संसार के प्रख्यात सोलो-वादक पाब्लो कासल्स से सोलो-वादन सीख कर अमरीका में प्राध्यापक हो गया है। १९५६ तक गोल्डा को श्रीमती मायरसन के नाम से पुकारा जाता था, लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री बेन गुरियन के आग्रह पर इन्होंने अपने नाम का हिब्रूकरण कर लिया और गोल्डा मायर (ज्वलंत स्वर्ण) बन गयीं।

गोल्डा मायर ने फिलिस्तीन में अँगरेजी शासन के विरुद्ध यहूदी-विद्रोह का संगठन कुशलतापूर्वक किया। १९४६ में अँगरेजों ने अनेक प्रमुख यहूदी-विद्रोहियों को पकड़ कर जेलों में डाल दिया। गोल्डा मायर को नहीं पकड़ा गया। शायद एक महिला गिरफ्तार करना उचित न समझा गया हो। उन्हें क्या मालूम था कि विद्रोह का संगठन श्रीमती मायर ही कर रही हैं! अँगरेजों के इस भोलेपन पर यहूदी लोग मजाक किया करते थे कि यहूदी-एजेंसी संगठन में गोल्डा मायर ही तो एक मर्द है और जब तक वह जेल के बाहर हैं, तब तक संगठन की गतिविधि को नहीं

रोका जा सकता। हुआ भी यही।

गोल्डा अपनी जवानी में ही पोआली जियोन (यहूदी श्रमिक दल) की सक्रिय कार्यकर्त्री बन गयीं और अनेक वर्षों तक हिस्ताद्रुत संगठन में विभिन्न पदों पर कार्य करती रहीं। इजरायल की स्थापना के बाद अगस्त, १९४८ में प्रथम प्रधानमंत्री बेन गुरियन ने गोल्डा को इजरायली राजदूत बना कर रूस भेजा। वहाँ इन्होंने दूतावास का गठन यहूदी 'किबुत्ज' के आधार पर किया। अपनी पारी आने पर ये स्वयं दूतावास के सामूहिक भोजनालय में प्लेटें धोने का काम करती थीं। आज भी खाने की मेज पर इन की नौकरानी और शोफर इन के साथ बैठते हैं। मार्च, १९४९ में गोल्डा इजरायल की श्रममंत्री बनीं। सात वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के दौरान इन्होंने इजरायल के प्रत्येक नागरिक के लिए सुविधाजनक मकान का निर्माण कराया और सारे देश में सुदृढ़ सड़कों का जाल बिछवा दिया।

१९५६ में गोल्डा इजरायल की विदेशमंत्री बनीं और दस वर्ष तक इस पद पर रहीं। एक दिन प्रधानमंत्री बेन गुरियन ने पश्चिम जरमनी को मान्यता देने तथा उस के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करने की घोषणा कर दी। गोल्डा इसे सहन न कर सकीं। ये हिटलर और जरमन नाजियों के उन अत्याचारों के लिए जरमनी को कभी क्षमा करने को तैयार न थीं जो उन्होंने लाखों यहूदियों के साथ किये थे। अतः इन्होंने विदेशमंत्री-पद त्याग दिया। आज भी गोल्डा जरमनी में बनी कार में नहीं चढ़तीं।

गोल्डा इजरायली संसद (केनेसेत) की लगातार सदस्या रही हैं। फरवरी, १९६३ से अगस्त, १९६८ तक ये इजरायली श्रमिक दल की महासचिव रहीं तथा १९६८ में मापाई-दल के पुनर्गठन के बाद से उस की महासचिव हैं। गोल्डा बहुत साहसी महिला हैं। १९४८ में जब अरब-इजरायल संघर्ष के लक्षण स्पष्ट रूप से उभरने लगे तो गोल्डा अरब महिला के वेश में बुरका ओढ़ कर जोर्डन के तत्कालीन शाह अब्दुल्ला से मिलने अमन गयीं, मगर संधि-वार्त्ता विफल हो गयी और अरब कार-चालक ने गोल्डा को यहूदी सीमा तक ले जाने से इनकार कर दिया। रात का समय था, गोल्डा एक सहायक को साथ ले दो मील पैदल चल कर सीमा तक आयीं। प्रधानमंत्री-पद सँभालते ही इन्होंने जोर्डन के वर्तमान शाह हुसैन को एक संदेश भेजा, जिस में कहा गया है कि यदि आप पसंद करें तो मैं आप के साथ चर्चा के लिए उसी तरह अमन आ सकती हूँ जैसे आप के दादा के साथ चर्चा करने के लिए वहाँ गयी थी।

गोल्डा बहुत दृढ़ राजनीतिज्ञ हैं। इन्होंने ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री एश्कोल को रक्षामंत्री दायान और भूतपूर्व प्रधानमंत्री बेन गुरियन की चालों से बचाया। इजरायल के राजनीतिज्ञ गोल्डा को देश की सब से बुद्धिमान नागरिक मानते हैं। ये भावुक नहीं हैं और सदैव

देश-हित को प्राथमिकता देती हैं। इन की एक ही माँग हैं कि अरब देश इजरायल के अस्तित्व को स्वीकार करें। इन्होंने अधिकृत अरब प्रदेशों में दुर्गवत बस्तियाँ बसाने और इजरायली ढंग के लोकतंत्र की स्थापना का कार्य शुरू कर दिया है।

अपने बारे में गोल्डा कहती हैं कि मुझे कभी यह सोचने की फुरसत ही नहीं मिली कि मैं कौन-सा पद लूँगी। देश की आवश्यकता के अनुसार काम करना ही मेरा ध्येय रहा है। मुझे पद इत्यादि की कोई चाह नहीं है।

इन्होंने एक बात बहुत साफ कर दी ह कि इजरायल अपनी पुरानी सीमा को स्वीकार नहीं करेगा और न वह यरुशलम के विभाजन, गोलान पर्वत से उतरने, सिनाई लौटने तथा अपने जहाजों पर स्वेज से गजरने पर लगी पाबंदी को स्वीकार करेगा।

सत्तर वर्ष की अवस्था में भी गोल्डा का स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा है। किसी ने इन से पूछा कि क्या इस अवस्था में आप का स्वास्थ्य प्रधानमंत्री-पद का कार्यभार सँभालने के योग्य है? गोल्डा ने तपाक से जवाब दिया कि सत्तर वर्ष का होना कोई पाप तो नहीं है! गोल्डा अपने अनुयायियों को दादी-माँ-जैसा स्नेह-दुलार देती हैं, मगर अपने विरोधियों को फटकारने और धता बताने में भी कुशल हैं। गोल्डा एक सशक्त महिला हैं, क्योंकि महिला ही तो शक्ति का प्रतीक होती है।

मार्क ट्वेन तथा विलियम स्विटन नये-नये पत्रकार बने थे। एक बार उन्हें तीन डॉलर की सख्त जरूरत पड़ी। स्विटन ने कहा, "भगवान देगा।" मार्क ट्वेन एक होटल के द्वार पर चिंतित मुद्रा में टहल रहे थे कि एक छोटा-सा सुंदर कुत्ता आ कर उन के पाँवों में खेलने लगा। वहीं जनरल माइल्स कहीं से घूमते आ पहुँचे। कुत्ते को देख वे बड़े खुश हुए और पूछा, "कुत्ता बेचना चाहते हो?" मार्क ट्वेन ने कहा, "तीन डालर निकालिये, कुत्ता आप का हो जायेगा।"

थोड़ी देर बाद कुत्ते का असली मालिक कुत्ते के विषय में पूछ-ताछ करने लगा। मार्क ट्वेन ने सुझाव दिया, "एक शर्त पर कुत्ता ढूँढ़ सकता हूँ कि कुत्ता मिल जाने पर तीन डॉलर पुरस्कारस्वरूप देने होंगे।" मालिक राजी हो गया।

मार्क ट्वेन जनरल माइल्स के पास गये और तीन डॉलर लौटा कर कुत्ते को ले आये। फिर कुत्ते के मालिक को कुत्ता सौंप कर मार्क ट्वेन ने तीन डॉलर का इनाम ले लिया।

अंधकार से प्रकाश की ओर

अनेकानेक विद्याओं के पंडित, वेद और शास्त्र के आचार्य, पुराण और व्याकरण के ज्ञानी नारद जन्म-मरण और शोक-व्याधि से दुखी हो कर मुनि सनत्कुमार के पास 'ब्रह्मविद्या' का ज्ञान प्राप्त करने पहुँचे। सनत्कुमार बोले, "मुनिवर, ब्रह्मविद्या का भेद-विभेद जानने के पश्चात ही जन्म-मरण तथा व्याधि से मुक्ति हो सकती है। इस के लिए आत्म-ज्ञान-चिंतन, वाणी, मंत्र, स्नेह, आत्मा, संकल्प, आकाश, जल, तेज, सुवृष्टि, अन्न, संशय, पीड़ा, एकाग्र-चिंतन, अंतरिक्ष, सौर-लोक, पर्वत, देवजन, मानव, विकसित एवं अविकसित प्रकृति, क्लेश और कलह के उदय होने के कारण का ज्ञान अनिवार्य है। आत्म-ज्ञान-चिंतन वाणी के बिना नहीं प्राप्त हो सकता।"

नारद बोले, "मुनिवर, हरेक की महत्ता विस्तृत रूप में करें!"

सनत्कुमार ने कहा, "वाणी मंत्र के माध्यम से द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज आदि का बोध कराती है। मंत्र स्नेह का बोध कराता है। इस से आत्मा का जन्म होता है, जो असाध्य को साध्य कर देती है। साध्य ही संकल्प है। इस से वायु, आकाश, जल और तेज का जन्म होता है, जो सुवृष्टि का आदि अंग है। सुवृष्टि की महत्ता जल से है और जल द्वारा अन्न की उत्पत्ति होती है। अन्न सुखों की निधि और शक्तियों का जनक है। लौकिक सुख प्रधान है, जिस के मुख्य अंग हैं संतान आदि। संशय और पीड़ा आदि का शमन लौकिक सुख से है। लौकिक सुख की उत्पत्ति संकल्प द्वारा होती है। संकल्प से आत्म-ज्ञान और आत्म-ज्ञान से आत्मा की रचना होती है। इस से एकाग्रचित्त होता है, जो अंतरिक्ष, सौर-लोक, जल, पर्वत, देवजन, मानव, विकसित एवं अविकसित प्रकृति का बोध कराता है। फलस्वरूप भगवान की सत्ता तथा उस के विराट रूप का ज्ञान होता है, जो क्लेश और कलह का शमन करता है।

"भगवान की सत्ता और उस के विराट रूप का बोध एकाग्रचित ओर यथार्थ

ज्ञान पर अवलंबित है, जो विज्ञान से प्राप्त होता है। विज्ञान से लौकिक एवं पारलौकिक सत्ता का बोध होता है, जो पूर्णरूपेण बल पर आश्रित है। बल सेवा-भाव, सत्संग की महत्ता, मननशीलता, आत्मविकास, जड़-चेतन, मानव-दानव, चल-अचल का अंतर बताता है। अन्न बल का प्रमुख स्रोत है। अन्न जल के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। जल की उत्पत्ति का मुख्य अंग तेज है, जो पृथ्वी, आकाश को तपाता है, विद्युत और वायु में गति भरता है। आकाश जल, प्रकाश और ध्वनि का संगम-स्थल है। एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि का बोध होता है और असीम तथा ससीम का अंतर ज्ञात होता है। अंतर-ज्ञान स्मरण को जन्म देता है। स्मरण के बिना ईश्वर का बोध नहीं हो सकता। स्मरण से स्थिरता, चिंतन, आकांक्षा अथवा आशा की महत्ता का ज्ञान होता है। इस के अभाव में कर्म करना संभव नहीं। कर्म मंत्रोच्चार के माध्यम से कृति-क्रिया के लिए अग्रसर होता है, जिस से भावना की उत्पत्ति होती है। भावना-योग से स्नेह, स्व-स्वरूप, और स्मृति तीनों उदय होती हैं और सकाम मनोरथ पूर्ण कराने में सहायक हैं। भावना के अनुरूप ही जीव का जन्म होता है और प्राण-प्रतिष्ठित क्रिया संपूर्ण होती है। जीव और प्राण संशय को चनौती देते हैं, जो यथार्थ ज्ञान के माध्यम से परिष्कृत हो भावना के प्रतिष्ठापन में योग देते हैं।"

नारद ने प्रश्न किया, "यथार्थ ज्ञान होने पर संशय की चुनौती स्वीकार करना क्या है?"

मुनि ने उत्तर दिया, "ज्ञान और सत्य में ईश्वर का निवास है। ईश्वर अविनाशी है, अतः चुनौती स्वीकार करने में दोष नहीं है। यथार्थ की कसौटी पर कसने की क्रिया ही विज्ञान है। इस पर दर्शन, श्रवण और अध्ययन को कस कर धर्ममत को प्रतिष्ठित किया जाता है और यहीं श्रद्धा की उत्पत्ति होती है। धर्ममत से अस्तित्व और मान्यता का बोध होता है, जो संशय के प्रवेश को रोकता है। जहाँ ऐसा होता है वहाँ निष्ठा निवास करती है। निष्ठा से उपासना, आराधना और कृति का बोध होता है और कृति से ही सुख है। सुख में धर्म-कर्म और धर्म-कर्म में ही दृढ़ निश्चय का वास है। अमृत धर्म-कर्म से प्राप्त होता है और पूर्ण चेतना स्थायित्व से। स्व और पर का अंतर प्रकट होता है। यही अंतर अपने आप में राजा है। वह तेज, जल, अन्न, बल, नाम और श्रुतियों का भेद-विभेद समझता है, आत्मदर्शन और सिद्धि-योग प्राप्त करने की क्षमता रखता है!"

मुनि सनत्कुमार के 'ब्रह्मविद्या' उपदेश से मुनि नारद जन्म-मरण और शोक-व्याधि से मुक्ति प्राप्त कर ब्रह्मलोक की ओर अग्रसर हुए।

--'छान्दोग्य उपनिषद' से

सामाजिक विग्रह मानव के भाग्य में लिखी अमिट लकीर नहीं है।

--विवेकानंद

संसार की भीषण दुर्घटनाएँ--२

प्रलय के दो दिन

ईसवी सन १८७१ में अमरीका का शिकागो अत्यंत खूबसूरत नगर था। नगर भर में उनसठ हजार पाँच सौ इमारतें थीं; मगर इन के अतिरिक्त नगर का बहुत बड़ा भाग सहज प्रज्वलनशील सामग्री का बना हुआ था—जैसे नाटक के लिए तैयार किया गया रंगमंच जिस में खपच्चियाँ, रंग-रोगन, कागज, कपड़ा आदि होते थे। देवदारु के खंभों पर टिके मकानों के सामने के भाग दूर से देखने पर संगमरमर के बने मालूम होते थे, मगर नजदीक से देखने पर सस्ती लकड़ी पर किया गया इंद्र-धनुषी रंग-रोगन साफ नजर आता था।

गोथिक शैली के बने विशाल और भव्य गिरजाघर यथार्थ में टीन के बने थे और कई बार भरभराकर ढह जाते थे। इन के भीतर देवदारु और सीमेंट के सजीले खंभे होते थे। नगर के बीचोंबीच अनियन नदी बहती थी—उस के दोनों तटों पर इमारती लकड़ी और कोयले के सैकड़ों-हजारों ढेर लगे थे। कई-कई एकड़ भूमि पर लकड़ी के ढाँचे और उसी के मकान खड़े थे। कई-कई फर्लांग लंबे लकड़ी के फुटपाथ और पगडंडियाँ थीं।

आग लगने पर शिकागो को कोई ताकत नहीं बचा सकती थी।

गतांक में आप ने २५ वर्ष पूर्व बंबई बंदरगाह में हुए अग्नि-कांड का विवरण पढ़ा। इस अंक में शशिबन्धुभ प्रस्तुत करते हैं १८७१ में शिकागो में हुए अग्निकांड का वर्णन



उस वर्ष शिकागो में औसत का तीसरा भाग भी वर्षा नहीं हुई थी और नगर में चहुँ ओर ही कई महीनों से तन-बदन फूँक देने वाली गरम हवाएँ बह रही थीं। नगर की जनसंख्या दिन-दूनी और रात चौगुनी दर से बढ़ कर तीन लाख तक पहुँच चुकी थी, फिर भी नगर की जल-पूर्ति और अग्निशामक-दल की व्यवस्था अपर्याप्त थी।

८ और ९ अक्तूबर की सर्वनाशी आग के लिए यह खुला न्योता था। ७ अक्तूबर को भी नगर में आग लग चुकी थी और उसी ने नगर की चार गलियों को जला कर राख कर दिया था। नगर-वासी थर्रा उठे थे।

८ अक्तूबर की रात को नौ बज कर पचीस मिनट पर पैट्रिक ओ'लीयरी के भूसे के भंडार में, जो नदी के उत्तरी तट पर स्थित था, गुजरते हुए एक ठेलेवाले ने आग की एक मामूली-सी, लपट उठती देखी। पाँच मिनट के अंदर-अंदर यह लपट इतनी बढ़ी और इतनी फैली कि पूरी की पूरी टेलर स्ट्रीट को लपटों ने घेर लिया।

अग्निशामक दस्ता आया। अभी वे यही तय करने में लगे थे कि इस मशीन को कहाँ टिका कर आग बुझाने का काम शुरू किया जाये, जिस से अधिक से अधिक आग पर काबू पाया जा सके, कि पड़ोस के एक बाजार में भी आग लगने



को अवसर मिला । [illegible]

[illegible]

[illegible] व्यापारिक क्षेत्र की ओर बढ़ने लगी- [illegible] सुपरस्टोर और [illegible] उस की लपटों में आने लगे ।

इसी बीच आग की लपटों का एक गिरजाघर-सा खड़ा हो गया, जिस के ऊपर घना अमेघ धुआँ छा गया । अंगारों की वर्षा उत्तर की ओर उन्मुख हो कर बढ़ने लगी और टिड्डीदल की तरह जहाँ-तहाँ ये अंगारे बैठने और अंडे देने लगे । लपटों का सागर उमड़ा हुआ था और उस की लहरों की गर्जन सभी के दिल दहलाये दे रहा था, कानों को बहरा बनाये दे रहा था । आग को देखने वालों [illegible] की आँखें लपटों की चमक से चौंधिया रही थीं ।

[illegible]

[illegible] धरती पर आ रहे । यहीं पर एक भव्य इमारत थी—[illegible] बिल्डिंग । इसे एक सुपरस्टोर के मालिक मार्शल फील्ड ने, अविश्वसनीय ऊँचे किराये, बावन हजार डालर प्रतिवर्ष, पर ले रखा था । सारी की सारी इमारत राख बन कर बिखर गयी और गैस बन कर उड़ गयी । नौ-मंजिला होटल पामरहाउस और सात-मंजिल शर्मनहाउस ठसाठस भरे थे । इन के निवासी अपने-अपने सामान को

[illegible]

[illegible] हथियार लेकर, [illegible] खड़े हुए। [illegible] स्वर में [illegible] चीखते और रोते हुए इधर-उधर भाग रहे थे। कटघरों के नीचे बिल बना कर रहने वाले मोटे-मोटे चूहे निकले और भागते-हुए लोगों के पाँवों तले कुचल गये।

नगर के न्यायालय-भवन के गुंबद में बरसों से रहते चले आ रहे सैकड़ों-

[illegible]

[illegible] को भस्मीभूत होता देखते रहे।

इस समय तक आग नगर को ऐसे निगल चुकी थी जैसे विस्तृत समुद्र किसी छोटी-मोटी नौका को उदरस्थ कर ले। बच्चों के हाथ से छूटे गैस-भरे गुब्बारों की तरह आग के अंगारे [illegible] हवा में उड़ते नजर आ रहे थे। ये उड़ते अंगारे आग को और फैला रहे थे। आग की लपटें ईंटों और पत्थरों की विशाल इमारतों को भस्मीभूत करके

मलबे के ढेर बनाये जा रही थीं। इमारतों के गुंबद ऐसे फूटते जा रहे थे जैसे सावन के झाग के बुलबले हों। संगमरमर की दीवारें गत्ते की दीवारों की तरह झुलस कर ढहती जा रही थीं।

चौराहे पर खड़ी न्यायालय की इमारत भी लपटों के दायरे में समा गयी। उस के ऊपर लगा विशाल घंटा, जो आग के शुरू होने से अब तक निरंतर बज रहा था और नगर-निवासियों को दुर्भाग्य की चेतावनी देने के अतिरिक्त उन के शोक में साझीदार भी बना हुआ था, अंतिम बार झनझना कर गिरा और अपने वजन से फर्श को भेदता तहखाने के धरातल पर आ रहा।

लोग पागल हो गये। फुटपाथों पर कई जगह गंदगी के ढेर लगे पड़े थे और कई जगह ये फुटपाथ छोटी-बड़ी नालियों के ऊपर से हो कर गुजरते थे—ऐसे स्थानों पर भागते लोगों के बोझ से ये फुटपाथी पल टूट कर ढह गये। लोग जंगलों और मुँडेरों पर हो कर चलने लगे। भय और आतंक के मारे भाग रहे लोगों के हाथों से उन का सामान और फर्नीचर रास्ते में ही गिर जाता था। वे गिरे सामान को उठाने के बजाय आगे निकल जाते थे—उठाने की कोशिश करते तो पीछे से आते भीड़ के रेले उन्हें कुचल न जाते! पीछे से आती भीड़ इन गिरी हुई चीजों से ठोकर खाती और उन्हें फेंक कर बढ़ जानेवालों को कोसने लगती।

दुकानों के शीशे और दरवाजे-खिड़कियाँ तोड़ दिये गये और भीतर का सामान लूट लिया गया। शराबखानों से व्हिस्की की सड़ाँध से अटे, लड़खड़ाते और धुएँ से झुलस कर काले पड़े अधेड़ और जवान निकल रहे थे। वे भीड़ के साथ मिल कर आगे बढ़ते और लोगों की जेबें काटते जा रहे थे। लुटेरे और बदमाश दुकानों के ताले तोड़-तोड़ सामान और नकदी लूट रहे थे। रोकने वाला कोई नहीं था। रेशमी वस्त्रों से लदे ठेलों और गाड़ियों को लुटेरे ले उड़े। चोरों ने मार्शल फील्ड के डिपार्टमेंटल स्टोर को लूट लिया।

गली-बाजारों में, भागते-भागते कुचले गये, ऐसे बीसियों लोगों की लाशें बिछी थीं, जिन की जेबों में लूट का माल— सोने की अँगूठियाँ, प्रसाधन-सामग्री, नकदी आदि ठुँसा पड़ा था। हीरे-मोती सड़कों पर बिखरे पड़े थे। अपने चसे हुए आम की गुठलियों—से खोखले, पाउडर की परतों से अटे भद्दे चेहरों वाली वेश्याएँ भीड़ में भी ठहाके लगाती हुई इधर-उधर भागती फिर रही थीं—लपटों की काँपती रोशनी में उन के चेहरे और भी भयंकर लग रहे थे।

दक्षिणी तट पर मौत से छूट कर भागे लोग झील के बर्फीले पानी में घुसे खड़े थे— उन के आसपास अंगारों और आग के बगूलों की बरसात हो रही थी। कई लुच्चे-लफंगे पानी में खड़ी औरतों से उन के कपड़ों की गठरियाँ और गहने आदि छीनने के लिए उन पर हमला करते थे और वातावरण औरतों की चीख-

पुकार से गूँज रहा था। जिन लोगों के पास किसी सवारीगाड़ी का भाड़ा खर्च करके भाग जाने लायक पैसा था, उन की हजामत बड़ी बेरहमी से बनायी जा रही थी। छोटी-से छोटी दूरी तय करने के लिए भी दस डालर माँगे जा रहे थे।

आग बुझाने वाले कर्मचारियों में से कई पिछले रोज की आग बुझाने के सिलसिले में बरी तरह थक चुके थे। वे पूरा प्रयास कर रहे थे, मगर आज की आग पर काबू पाना इनसान के बस की बात नहीं थी। हवा के थपेड़ों से उड़े आग के बगूले जब ईंट-पत्थर के मकानों पर भी पड़ते थे तो वे ऐसे भभक उठते थे जैसे वे कागज और मोम के बने ढाँचे हों। गलियों में, जो आग के मारे दोपहर की तरह चमक रही थीं, सैंकड़ों-हजारों लोग बुत बने इस सारे दृश्य को देख रहे थे।

रैंडोल्फ स्ट्रीट के पड़ोस में एक तेल-भंडार था। वहाँ काफी देर तक सूखी आग भभकती रही। फिर गरमी पा कर तेल का एक टैंक फट पड़ा--इस विस्फोट के साथ ही आग एक बार आसमान को छूने के लिए उछली और फिर धरती पर बिखर कर नदी-प्रवाह की ओर बढ़ चली। इस विस्फोट के ही साथ नेवादा होटल बिना जरा-सी आवाज किये भरभरा कर ढह गया– मानो वह कोई स्वप्न-महल रहा हो।

इसी समय नगर की महत्त्वपूर्ण और सुंदरतम इमारतों में से एक गार्डन-सिटी हाउस, माचिस की डबिया की तरह चरमराया और भीतर लगे लौह-स्तंभों के पिघलने के साथ-साथ, धरती पर गिर कर समतल हो गया।

आतंकित भीड़ रैंडोल्फ स्ट्रीट पुल की ओर उमड़ पड़ी--पुल पर हथठेले, बग्घियाँ और अन्य सवारी-गाड़ियाँ भर गयीं; एक-दूसरी से टकराती चली गयीं; कोई टूटी, कोई बच रही।

इस सर्वनाशी आग से १९०० एकड़ का क्षेत्र प्रभावित हुआ– इस क्षेत्र का चप्पा-चप्पा भस्म हो चुका था। तेरह हजार इमारतें जल कर खाक हो गयीं। एक लाख व्यक्ति बेघरबार हो गये तथा अनुमानित बीस करोड़ डालर मूल्य की संपत्ति का नुकसान हुआ।

आग पर काबू पा लिये जाने का दावा मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ ही कहा जायेगा। इस के विपरीत यह कहना बेहतर होगा कि आग ने थक कर अपनी विनाश-लीला को त्याग दिया। सब कुछ समाप्त हो जाने के बाद, जब कि यत्र-तत्र धुएँ की रेखाएँ उठ-उठ कर आसमान की ओर बढ़ती दिखायी दे रही थीं और जब जले कपड़े, लकड़ी और तेल की बदबू भर हवा में बच रही थी, ऐसा लग रहा था जैसे किसी ज्वालामुखी से निकला लावा सारे शहर पर से हो कर गुजर कर राख बिछा गया हो।

कहीं-कहीं पूरा का पूरा महल्ला पूर्ववत खड़ा था। एकाध जगह तो घास-फूस की झोंपड़ियाँ तक आग की लपटों से

बच गयी थीं, मगर अधिकांशत: महल्ले के महल्ले खाक हो चुके थे– ऐसा लगता था कि जंगल काट कर जमीन साफ की गयी हो और जुताई के बाद , बरसात की प्रतीक्षा में उस पर जहाँ-तहाँ खाद के ढेर लगा दिये गये हों। १० अक्तूबर के दिन मंगलवार की शाम को जो सूर्यास्त हुआ, वह शिकागो की चिता को बुझती देख हुआ।

और इस अंधकारमय वीराने में एक नयी दानवी शक्ति ने सिर उठाया : आगजनी और लूटमार करने वाले समाज-विरोधी तत्त्व मैदान में आ गये। एक लड़के को एक मकान को आग लगाने की चेष्टा करते हुए पकड़ा गया–उसे तत्काल मार डाला गया। स्टेट स्ट्रीट में भी एक इमारत को आग लगाने की कोशिश करता हुआ एक बदमाश वहाँ के चौकीदार की गोली का शिकार बना। एक खलिहान में दियासलाई दिखाती एक महिला पकड़ी गयी। उसे फाँसी चढ़ाने की व्यवस्था की जा रही थी कि वह भाग निकली। एक अन्य स्थान पर एक खलिहान को आग की लपटों में घिरा पाया गया – और पास ही में एक व्यक्ति को संदेहास्पद अवस्था में पाया गया। उसे तुरंत मौत के घाट उतार दिया गया।

मंगलवार को सुबह फोर्थ एवेन्यू की एक इमारत के तहखाने में छिपा हुआ आगजनी करने वाला एक व्यक्ति पाया गया। उस ने भाग निकलने की कोशिश की, मगर भीड़ ने उस का पीछा किया और पत्थर मार-मार कर उसे समाप्त कर दिया। एक बहुत बड़ी दुकान को आग लगा दी गयी थी– और स्थिति की जाँच करने वाले अधिकारियों की नजर नदी-तट पर बसे लकड़ी के गोदामों में छिपाये गये पैराफीन से भीगे भसे के ढेर तथा चारकोल में लिपटे रस्से पर पड़ी। इतनी-क्रूरता, इतनी निर्ममता से रचा यह विनाशकारी अग्निकांड शिकागो के प्रति किसी के मन में छिपी घृणा और प्रतिहिंसा का परिणाम था अथवा किसी के दीवानेपन का –कहा नहीं जा सकता।

जाँच करने वाले अधिकारी यह भी तय नहीं कर पाये कि मुख्य आग का कारण क्या था। ओ' लीयरी के भूसे के गोदाम में तेल से जलने वाला एक लैंप भूसे के जले ढेर में उलटा पड़ा मिला था– उस की चिमनी टूट चुकी थी। यह लैंप एक विशेष प्रकार का बना था और इसे सामान्य लोग अपनी बैठक में रखते हैं। कुछ भी हो, औसत रूप से इस लैंप को ले कर तबेले में पशुओं को दुहने जाना कुछ अटपटी-सी बात मालूम होती है। मगर इस के अतिरिक्त और कोई कारण समझ में भी तो नहीं आता !

श्रीजी हमेशा आकर्षण का केंद्र बने रहना चाहते हैं। वे अगर किसी शव-यात्रा में जाते हैं तो रास्ते भर यही मलाल करते जाते हैं कि यह शव मेरा क्यों नहीं है।

प्रोफेसर दोई
हिंदी के जापानी आचार्य

● रवीन्द्र केलेकर

टोकियो के भारतीय दूतावास ने हमारे सम्मान में एक दावत दी और चूंकि काकासाहब कालेलकर प्रमुख मेहमान थे, इसलिए जापान के कुछ चने हुए विद्वानों को भी निमंत्रित किया गया ।

इन निमंत्रित जापानी विद्वानों में वयोवृद्ध प्रो० नाकामुरा ने मेरा ध्यान खास तौर से खींचा । वे जापान के प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद हैं । संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं । पाली और मागधी-जैसी भाषाओं पर भी उन का अधिकार है । भारतीय धर्म और संस्कृति का उन का ज्ञान काफी गहरा है । इस विषय पर उन्होंने अनेक प्रबंध जापानी भाषा में लिखे हैं । उन्होंने भारत का एक यात्रा-वर्णन भी लिखा है, जो बहुत अच्छा माना जाता है । वे भारत कई बार आये हैं और हमारे भत-पूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के घनिष्ठ मित्रों में हैं ।

मैं उन से बातें कर रहा था—भारत और जापान के बीच सांस्कृतिक संबंध कैसे प्रस्थापित हुए, बाद में उन में क्या परिवर्तन हुआ, वगैरा । अनेक बातें वे मुझे समझा रहे थे । उन का समझाने का ढंग आकर्षक था । इतने में दूतावास के एक अफसर राय चौधरी ने मुझ से पूछा, "आप प्रो० दोई से मिले ?"

मैं ने कहा, "नहीं तो !"

पास में ही एक अधेड़ उम्र के सज्जन खड़े थे । उन की ओर इशारा करके राय चौधरी बोले "आप प्रो० दोई हैं । हिंदी के एक बड़े आचार्य हैं ।"

मेरे मुँह से निकल पड़ा, "अच्छा !" और मैं ने अभिवादन करते हुए उन से पूछा, "आप ने हिंदी का अध्ययन कहाँ किया ?"

जवाब मिला "अधिकतर इसी देश में । किंतु विशेष अध्ययन के लिए दो वर्ष मैं प्रयाग में रहा था ।" और मुझ से पूछने लगे, "आप तो गोवा के हैं । आप की भाषा कोंकणी है या मराठी ?"

मैं ने जवाब दिया, "है तो कोंकणी, किंतु मैं मराठी भी जानता हूँ ।" और कहा, "आप तो भारत के बारे में काफी जान-कारी रखते हैं ।"

उन का हिंदी का उच्चारण सुन

कर मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैं किन्हीं जापानी सज्जन के साथ बातें कर रहा हूँ। कोकी नागा या कात्सु होरिउची-जैसे चंद जापानी युवक-युवतियों को मैं जानता हूँ, जिन्होंने काकासाहब के संपर्क में रह कर हिंदी का खासा अध्ययन किया है। कोकी नागा तो हिंदी-जापानी कोश भी बना रहे थे। वे कभी-कभी हम से ऐसे प्रश्न पूछ बैठते जिन से हम असमंजस में पड़ जाते। मसलन, एक रोज उन्होंने पूछा, "प्रगति का मतलब है विकास, तो फिर फूल की प्रगति क्यों नहीं होती, उस का विकास ही क्यों होता है ?" ऐसे मौकों पर हम यह कहने के लिए बाध्य हो जाते कि 'भाई, इस का जवाब तो आप को काकासाहब ही दे सकेंगे।"

इतनी गहराई में उतरने के बावजूद उन के हिंदी-उच्चारण में कहीं-कहीं 'जापानीपन' की बू आ जाती है, किंतु प्रो० दोई का उच्चारण तो बिलकुल निर्दोष था, मानो कोई काशी-प्रयाग का विद्वान जापानी देह धारण कर बोल रहा हो। मैं तुरंत उन की ओर आकृष्ट हुआ।

बगल में ही दो कुरसियाँ थीं। हम वहाँ जा कर बैठे और बातों में डूब गये। मैं आधनिक जापान के बारे में जानना चाहता था। आजकल के जापानी लेखक क्या लिखते हैं, कौन-से लेखक विशेष लोकप्रिय हैं और किस कारण वे लोकप्रिय हुए हैं, आदि अनेक प्रश्न मैं ने उन से पूछे। उन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी दी। तब मैं ने उन से पूछा, "प्रोफेसर साहब, क्या आप मुझे यह बता सकेंगे कि कौन-से भारतीय लेखकों से जापानी परिचित हैं ?"

बोले, "रवीन्द्रनाथ से तो परिचित हैं ही। उन की 'गीतांजलि' का अनुवाद तो बहुत पहले हो चुका था। गाँधीजी की आत्मकथा से भी लोग परिचित हैं। उस की दूसरी आवृत्ति अभी-अभी छपी है। प्रो० दामोदर कौसंबी तो आप के गोवा के ही हैं। उन की प्राचीन भारतीय इतिहास विषयक पुस्तक का अनुवाद हाल ही में प्रकाशित हुआ है।" फिर जरा मुसकरा कर कहने लगे, "वात्सायन का 'कामसूत्र' भी काफी लोकप्रिय है।"

मैं हँस पड़ा। मैं ने कहा, "खासा कांम्बिनेशन है।"

मैं ने फिर पूछा, "किसी आधुनिक हिंदी लेखक की किसी रचना का अनुवाद भी हुआ है ?"

वे जरा हिचकिचाये और दबी आवाज में कहने लगे, "मैं ने प्रेमचंदजी के उपन्यास 'गोदान' का अनुवाद किया है।"

"छप गया है ?"

बोले, "तीन लाख प्रतियाँ तो हाथों-हाथ बिक गयीं। अब दूसरी आवृत्ति की बातें चल रही हैं।"

मैं तो अवाक रह गया। मन-ही-मन सोचने लगा--क्या 'गोदान' की हिंदी में इतनी प्रतियाँ अब तक बिकी होंगी ? क्या किसी भारतीय लेखक के भाग्य में अपनी भाषा में अपनी रचना की इतनी प्रतियाँ प्रकाशित होना लिखा है ? जापान से मैं बड़ा प्रभावित हो चुका था। उस के

सृष्टि-सौंदर्य ने मुझे काफी प्रभावित किया था। उस के हृदय पर तो मैं मुग्ध हो गया था। उस की भौतिक प्रगति देख कर मेरी आँखें चौंधिया गयी थीं। अब उस का साहित्य-प्रेम देख कर मैं ईर्ष्या से जलने लगा।

प्रो० दोई कहने लगे, "महादेवी वर्मा की कुछ कहानियों के भी मैं ने अनुवाद किये हैं और अब दिनकरजी की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' का अनुवाद भी कर रहा हूँ।"

मैं बोल उठा, "काश हमारे देश में भी आप-जैसा कोई विद्वान होता, जो जापानी साहित्य सीधे जापानी से हमारी भाषाओं में लाता!"

वे कहने लगे, "आप ने तो अँगरेजी का आश्रय लिया और आप के लिए दुनिया के सारे दरवाजे बंद हो गये।"

मैं ने पूछा, "आप ने क्या कहा?"

कहने लगे, "जब तक आप को दुनिया का सारा ज्ञान अँगरेजी के जरिये मिलता रहेगा, आप दूसरी भाषाओं का अध्ययन ही नहीं करेंगे।"

और उन्होंने मुझे एक किस्सा सुनाया। कहने लगे, "आप की साहित्य अकादमी ने भारतीय भाषाओं में अनूदित करने के लिए दुनिया की विभिन्न भाषाओं की कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें चुनी हैं। उन में जापानी भाषा का सब से पुराना उपन्यास—और दुनिया का शायद सब से पहला उपन्यास—'गेंजी मोनोगातारी' भी एक था। मुझ से साहित्य अकादमी ने पूछा, 'क्या आप इस का हिंदी अनुवाद कर देंगे?' मैं ने जवाब भेजा—हिंदी का मैं ने जो अध्ययन किया है वह हिंदी की अच्छी-अच्छी किताबें जापानी में लाने के लिए है, न कि जापानी की हिंदी में। आप यदि जापानी पुस्तकें हिंदी में लाना चाहते हैं तो किसी को जापानी सिखाइये। मैं सिखा दूँगा।"

सुनते ही मेरी हालत ऐसी हुई मानो किसी ने जोरों से चपत लगा दी हो।

हम करीब एक घंटा बातें करते रहे। मेरी हिंदी में बीच-बीच में अँगरेजी शब्द आ जाते थे। किंतु प्रो० दोई की हिंदी में एक भी अँगरेजी शब्द न आया।

कुछ दिनों के बाद वे काकासाहब से मिलने के लिए हमारे 'सान-बाँचो' होटल में आये। वे गाँधीजी के बारे में काकासाहब से कुछ जानना चाहते थे। कहने लगे, "पचास साल की उम्र हुई, तभी कुछ गाँधीजी की बातें समझ में आने लगी हैं।" वह रक्षा-बंधन का दिन था। हम काकासाहब के चंद विद्यार्थी बहुत वर्षों के बाद एकत्र हुए थे—वह भी जापान में। हमारी बहिन सरोजिनी नाणावटी ने कहीं से राखियाँ मँगवा लीं और हमारे हाथों में बाँध दीं। प्रो० दोई जब हमारे कमरे में आये, उन का ध्यान तुरंत राखियों की ओर गया और उन्होंने पूछा, "अच्छा! रक्षाबंधन कब रहा?"

मैं ने कहा, 'दोईजी, आप तो हिंदू रस्म-रिवाजों से भी खूब परिचित मालूम होते हैं!"

बोले, "भाई, भाषा के पीछे तो संस्कृति

रहती है। उस संस्कृति का अध्ययन किये बिना भाषा का अध्ययन कैसे होगा ?"

मैं ने कहा, "इस के माने ये हैं कि हिंदी भाषा का ही नहीं, आप का हिंदी संस्कृति का भी अच्छा अध्ययन है।"

कहने लगे, "मैं ने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का अध्ययन किया है और दोनों संस्कृतियों का अध्ययन करने के बाद—काकासाहब को यह जान कर खुशी होगी कि—मैं हिंदुस्तानीवाला बन गया।"

काकासाहब से उन की बाद में जो बातें हुई वे बड़ी ही रोचक थीं। काकासाहब तो सितार-जैसे हैं। बजाने वाले की कुशलता पर सितार का संगीत निर्भर रहता है। दोईजी ऐसे बजाने वाले मिले कि मैं अवाक हो कर सुनता ही रहा। काश मेरे पास टेपरिकार्डर होता !

दोईजी ने काकासाहब से उस दिन अनेक प्रश्न पूछे—गाँधीजी के बारे में, हिंदी साहित्य तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बारे में भी। ऐसा ही मालूम होता था मानो दो भारतीय विद्वान आपस में चर्चा कर रहे हों। दोईजी इतनी शुद्ध हिंदी बोलते थे (उतनी ही शुद्ध वे उर्दू भी बोल लेते हैं) कि विश्वास नहीं होता था कि वे जापानी हैं। गंगा नदी का कई बार जिक्र हुआ। किंतु दोईजी के मुँह से 'गंगा' शब्द न निकला, 'गंगाजी' ही निकला। इलाहाबाद को उन्होंने इलाहाबाद नहीं, प्रयाग ही कहा।

मैं सुन रहा था और सोच भी रहा था। यह कैसा प्राणवान देश है, जो नयी-नयी बातें सीखने के लिए हमेशा उत्सुक रहता है ! मैं ने कहीं पढ़ा था, स्वामी रामतीर्थ की किसी वयोवृद्ध जापानी से भेंट हुई जो जरमन भाषा सीख रहा था। स्वामीजी ने पूछा, "भाई, आप बुढ़ापे में नयी भाषा सीख कर क्या करेंगे ?" बूढ़े ने जवाब दिया, "मैं प्राणिशास्त्र का विद्यार्थी हूँ। सुना है, जरमन भाषा में प्राणिशास्त्र पर एक बढ़िया ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। मैं उस का जापानी में अनुवाद करूँगा।"

मैं ने जब यह किस्सा पहले-पहल पढ़ा तब लगा था कि यह तो शायद अत्युक्ति है। किंतु नहीं, जापान आज भी वैसा ही प्राणवान है। और प्राणवान है इसीलिए वह चिर-तरुण भी है। दोईजी चिर-तरुण जापान के एक प्रतिनिधि हैं।

हिंदी एक सरल, समर्थ और वैज्ञानिक भाषा है। जापान और जापानी के बाद मैं भारत और हिंदी को अपना दूसरा देश और दूसरी भाषा मानता हूँ। मैं ऋषियों और महात्माओं की गौरवशाली परंपराओं से ओतप्रोत भारत को श्रद्धायुक्त प्रणाम करता हूँ। बुद्ध और गाँधी के देश भारत के प्रति मेरे मन में अपार श्रद्धा है। यह भी एक मुख्य कारण है कि मैं ने हिंदी सीख कर भारतीय संस्कृति और स्वतंत्रता के इतिहास का अध्ययन किया।

—प्रो० दोई

शहर से वापसी

एक मैं ही नहीं और भी साथ ह
ऊब कर हम तुम्हारे शहर से चले

होड़ जैसी मची छल-कपट में यहाँ
हम अधिक कुछ सरल थे पिछड़ ही गये
हो मुबारक तुम्हें यह तुम्हारा शहर
जम न पाये तनिक हम उखड़ ही गये
कौन जाने कि किन अपशकुन के क्षणों
छोड़ कर हम कभी गाँव, घर से चले

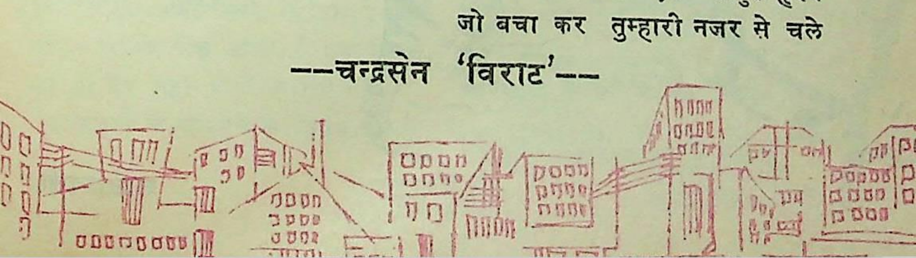
आदमी-आदमी इस कदर अजनबी
भीड़ होते हुए एक वीरान है
पास होते हुए भी बहुत फासले
कहकहे हैं मगर एक सुनसान है
लोग जैसे नुमाइश कहीं देखते
कुछ इधर से चले कुछ उधर से चले

स्वाभिमानी बहुत था हृदय तो मगर
वक्त ऐसा पड़ा शर्म से गड़ गया
बहुत मजबूर हो पेट के वास्ते
हाय, ईमान को बेचना पड़ गया
राह ऐसी भुलावों-घुमावों-भरी
शाम तक भी न पहुँचे सहर से चले

घोटता साँस है क्रूर यंत्रीकरण
हर कहीं मानवी मूल्य विघटित मिले
एक आतंक अस्तित्व पर छा रहा
लोग शंका-घिरे और कुंठित मिले
जिंदगी सिर्फ विज्ञापनों से भरी
एक फैशन कि जो चायघर से चले

सब उमीदें दफन हो गयीं बेकफन
हम खड़े हैं बहुत हार कर टूट कर
नोच डाला, लहू पी गये भेड़िये
सभ्यता के मुखौटे गये लूट कर
पास केवल बचा एक भावुक हृदय
जो बचा कर तुम्हारी नजर से चले

—चन्द्रसेन 'विराट'—





"यह घर तो मेरे ही पिता का है, तो फिर क्या उस के एक कमरे पर भी मेरा थोड़ा-सा अधिकार नहीं है ?"

नौ साल की लड़की अपने भूरे बालों को झटक कर, फ्रिल फ्रॉक को हिलोर कर, गरदन तिरछी करके और आँखों में आग भभका कर कूट प्रश्न कर बैठी।

सोमा निस्पंद हो गयी।

सोमा ने तीखी आवाज में पूछा, "क्या कहा ?"

वैसे मिटू कोई विनम्र और शांत लड़की हो, ऐसी बात नहीं। मिटू जिद्दी है, उद्धत है। घूमने के वक्त जब मिटू को फ्रॉक पसंद नहीं आता, तब इसी तरह गरदन टेढ़ी करके फुफकार उठती है, "अपनी पसंद का एक भी फ्रॉक तुम नहीं पहनने दोगी मुझे ?"

लेकिन यह बात अलग है।

आँखें तब इस तरह धधकती नहीं, और सोमा जब कड़ी आवाज में कहती, "नहीं, नहीं पहनने दूँगी। अभी से तुम्हें मैं तुम्हारी मर्जी के मुताबिक नहीं चलने दूँगी।" तब आँखों में पानी भर के, चेहरा लाल किये वह माँ के चुने फ्रॉक को पहन लेती है। हालाँकि भीतर ही भीतर इस की शिकायत पिता तक पहुँच जाती है।

हताश-सा हो कर सुप्रिय स्त्री से कहता, "तुम एक

कहानी

● आशापूर्णा देवी

पूंजी

मामूली-सी बात को ले कर इतना बखेड़ा क्यों खड़ा करती हो ? जो चाहे पहनने दो, इस में हर्ज क्या है ?"

"हर्ज क्या है, मैं तुम्हें नहीं समझा सकती," सोमा पति से भी रुखाई से पेश आती है, "उस के भविष्य की बात मुझे ही सोचना है। अभी से अगर इतनी मनमौजी हो गयी तो आखिर में क्या होगा, कभी इसे भी सोचा है तुम ने ?"

'मकान तो मेरे ही पिता का है ! मेरा अधिकार है उस पर।' कौन सिखा रहा है यह सब मिंटू को ? सोमा को संदेह हुआ कि शायद स्नेहांध पिता ने ही लाड़ली बेटी को यह सब सिखाया होगा ! विषवृक्ष में फूल लगने लगे हैं अब।

सोमा कमर में आँचल लपेटे गोश्त पका रही थी। हाथ के करछुल से दरवाजा दिखाते हुए गंभीर स्वर में उस ने कहा था--"जाओ, फेंक आओ ! एक मिनट की भी देर नहीं होनी चाहिए।"

सहेली के फॉरमूले से विशेष ढंग से गोश्त पका रही थी सोमा। एकाएक एक अप्रिय ध्वनि टकरायी उस के कान से--मीउ-मीउ-मीउ !

पहले सोचा था कि बाहर कहीं से आ रही है यह आवाज, पर उस आवाज ने धीरे-धीरे कान में हो कर उस के शरीर के रोम-रोम में पहुँचना शुरू किया। विरामहीन इस ध्वनि ने सोमा का दिमाग खराब कर दिया। सोमा ने नौकर को पुकार कर कहा, "घनश्याम, देख तो--यह बिल्ली का बच्चा कहाँ से बोल रहा है !"

घनश्याम ने तभी करीब आधा किलो प्याज पीसना खतम किया था। उस की आँख और मन, दोनों जगह ही जलन हो रही थी। घनश्याम थोड़ी भी उदारता न दिखा कर जासूसी काम कर बैठा, बोला, "घर ही में बोल रहा है। दीदीमनि (मुन्नी) नाले से उठा लायी है।"

नयी कॉलोनी का नया रास्ता !

दूरदर्शी व्यक्तियों ने बहुत पहले बहुत सस्ते दामों में जमीन खरीद रखी थी। अब आलीशान इमारतें बनवा डाली हैं। पर इन इमारतों के सामने कच्चे गंदे नाले बहते हैं। इसी नाले के पास से एक छोटे बिल्ली के बच्चे को उठा लायी है मिंटू। उस की मृतप्राय दशा उस से देखी नहीं गयी।

घनश्याम इस घटना का गवाह है। लेकिन अब तक घनश्याम ने इस विषय में कुछ कहने का साहस दीदीमनि की नाराजगी के डर से नहीं किया था।

सोमा ने झटपट पिसे अदरक-

हल्दी-प्याज-दही से सने अपने हाथ को धोया। तरकारी को करछुल से एक बार चला कर उसे लिये ही वह ड्राइंगरूम में चली जायेगी।

देखा मिंटू हाथ में एक बिसकुट का टुकड़ा लिये हताश-सी बैठी है। उस की गोद में है कीचड़ में सना, भद्दा-घिनौना एक बिल्ली का बच्चा। सिर से पैर तक जल उठी सोमा। बोली, "क्या है वह ?" मिंटू ने सहम कर माँ की ओर देखा और अपने आश्रित को थोड़ा ओट में कर लिया।

"उसे अभी फेंक आओ और साबुन से हाथ धो कर कपड़े बदल डालो।" हाथ के करछुल से दरवाजे की ओर संकेत करके अपनी आज्ञा को और भी अधिक स्पष्ट किया सोमा ने।

पर मिंटू ने माँ की इस आज्ञा का मान नहीं रखा। उस ने झगड़े की जड़ को छाती से चिपका कर जिद की—"नहीं।"

"मेरे मुंह पर 'नहीं' कहा तू ने !" जलभुन कर खाक हो गयी सोमा। उस घृणित प्राणी को बेटी की छाती पर देख वह अकबका गयी। तीखी आवाज में पुकारा, "घनश्याम ! फिनाइल की बोतल तो ला।" घनश्याम पास ही था सो आज्ञा-पालन में देर नहीं लगी।

"उस बिल्ली के बच्चे को छीन कर कहीं दूर फेंक आ और कालीन पर फिना-इल छिड़क दे," सोमा ने आदेश दिया। घनश्याम आगे बढ़ा। उस के चेहरे पर खुशी झलक रही थी। विपक्ष में है दीदी-मनि। मिंटू के उत्पात, घूंसे, थप्पड़ आदि उसे चुपचाप हजम करने पड़ते हैं।

मिंटू बच्चे को गोदी में ले कर उठ खड़ी हुई। तीखी आवाज में बोली, "खबरदार ! इसे छुआ तो मारते-मारते भरता बना दूँगी।'

"अच्छा, मेरे सामने जबानदराजी !" सोमा ने तेल-मसाले से सने उस करछुल से ही मिंटू के सिर पर एक ठोकर लगा कर कहा, "क्या सोच रखा है तुम ने ? बहुत जिद्दन बन गयी हो। उस कीचड़ से सने गंदे बिल्ली के बच्चे को छूने में तुम्हें घिन नहीं आती ! हाइजीन नहीं पढ़ी है तुम ने ? बिल्ली से कितनी तरह के रोग फैलते हैं, नहीं जानती हो ? उसे दे दो, घनश्याम फेंक आयेगा।"

मिंटू माँ की इस क्रुद्ध मूर्ति से नहीं डरी। बल्कि आश्रित को और ज्यादा आड़ में ले कर बोली, "क्यों फेंक आयेगा? फेंक देने पर मर नहीं जायेगा ? मैं उसे बचाऊँगी।" लगभग दो घंटे से माँ की नजर बचा कर मिंट उसे बचाने की ही चेष्टा में लगी थी। पर उस अभागे ने खुद ही अपनी शामत बुला ली। जोर से चिल्लाने लगा। न जाने क्यों इतनी बड़ी बेवकूफी कर बैठा यह बिल्ली का बच्चा। मिंट ने क्या उसे इस घर की मालकिन की आदत से वाकिफ नहीं कराया था ? मिंटू उसे बिसकुट खिलाने के व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। लेकिन एकाएक न जाने क्या हुआ, उस ने बोलना शुरू कर दिया।

मृतप्राय दशा थी पहले। मिंट के उठा कर घर में ले आने के बाद बोलते

की शक्ति लौटी है उस की। मरियल बच्चे की 'मीउ-मीउ' ध्वनि कितनी बुरी लगती है, सोमा को कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता। मिटू की गोद में उसे देख कर सोमा का सारा शरीर जल रहा था। उस पर मिटू की यह जिद!

सोमा ने दाहक दृष्टि से उस की ओर देखते हुए कहा, "तू उसे बचायेगी? बता, तुझे कौन बचायेगा? यमराज? मैं कहे देती हूँ मेरे घर में उस गंदे रोग की जड़ को नहीं रखा जा सकता। फेंक, फेंक।" सब्जी जलने की गंध पा कर भागने जा रही थी सोमा, मगर जा नहीं पायी। नौ साल की लड़की अपने भूरे बालों को झटक कर, फ्रिल फ्रॉक को हिलोर कर गरदन तिरछी करके और आँखों में आग भभका कर उस कूट प्रश्न को कर बैठी।

अधिकार का प्रश्न—"यह घर तो मेरे ही पिता का है, तो फिर उस के एक भी कमरे पर क्या मेरा अधिकार नहीं है?" सोमा को इस बात को समझने में थोड़ी देर लगी। सोमा को जवाब देने में देर लगी। उस ने तीखी आवाज में पूछा, "क्या कहा?" मिटू बोली नहीं कुछ, मगर मिटू खड़ी रही अड़ियल टट्टू की तरह। उधर नये फॉरमूले से बनाये जाने वाले गोश्त की गंध महल्ले भर में फैल कर जाहिर कर रही थी कि उस के प्रति उपेक्षा हो रही है। छुट्टी के दिन की सुबह थी। सुप्रिय गया था दोस्तों की मजलिस में शामिल होने। जब लौटा तो बिल्ली का बच्चा तब भी बोले जा रहा था। उस के घर आते ही सोमा चेहरा लाल किये ड्राइंगरूम से बाहर निकल आयी। इस लाली का कारण केवल लड़की की उद्दंडता ही नहीं थी, सब्जी भी थी। बड़े चाव और जतन से बना रही थी वह उसे। बरबाद हो गयी जल कर। आज छुट्टी के दिन अब किस से चावल खायेगा सुप्रिय? मिटू के बारे में कुछ भी नहीं सोच पा रही। मिटू का नाम ही होठों पर नहीं ला पा रही। सोमा को लग रहा कि उस के मानस-जगत में 'मिटू' नाम का जो भूखंड था वह जैसे सहस्रों साँपों से भर गया है। कुलबुला रहे हैं वे।

मिटू बिगड़ गयी है। मिटू के लिए अब स्नेह नहीं है उस के हृदय में। पर सुप्रिय ने यह क्या कहा?

सोमा को स्वप्न में भी यह आशंका न थी।

सुप्रिय ठठा कर हँस उठा। बोला, "यह कहा है मिटू ने? तब बड़ी हो कर वह जरूर वकील बनेगी।"

'हँस रहे हो तुम?" दोनों हाथों में अपने सिर को पकड़े बैठ गयी सोमा।

"हँसने की बात पर हँसूँ नहीं?"

"तब तुम्हारे लिए यह हँसी की बात है? नौ साल की लड़की अभी अपने बाप की जायदाद के लिए माँ से लड़ने आती है, यह हँसने की बात है?"

"बात के कहने वाली नौ साल की है, तभी बात हँसने की है," सुप्रिय ने कहा, "छत्तीस साल की होती तो डरने की बात

होती ।"

"तुम अगर उस बिल्ली के बच्चे को घर से नहीं बाहर करोगे तो मैं इस घर में अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी ।"

दिन के बाहर बजे हैं । तेज धूप फैली हैं चारों ओर । सुप्रिय इसी धूप में चल रहा है । स्नान-भोजन नहीं किया है अभी उस ने । सुप्रिय का मिजाज भी बिगड़ उठता है । वह कह बैठता है, "क्या खूब ! तुम तिल को ताड़ ही बनाती रहती हो ! आखिर लड़की तुम्हारी अपनी है या सौत की ?'"

सोमा खूनी आँखों से तरेरते हुए बोली, "सौत की से भी बढ़ कर है । लड़की तुम्हारी है—अकेले तुम्हारी ही । यही तुम ने हमेशा उसे समझने दिया है । यही सिखाते रहे हो । तभी तुम्हारी लड़की अब मेरा अनादर करना सीख गयी है । पिता की अधिकार की बात कहती है । ठीक है, अब संपत्ति पर अपने से तुम दोनों, बाप बेटी आराम से रहना, मैं कुछ भी नहीं कहूँगी । पर यह भी कहे देती हूँ कि उस बिल्ली के बच्चे को अब जो तुम्हारी बेटी छाती से चिपकाये हुए है उसे अगर डिप्थीरिया हो जाये, अगर मर भी जाये, तो भी मैं उस की ओर नहीं देखूंगी ।"

सुप्रिय गंभीर हो जाता है अब । उस का चेहरा भी तमतमा उठता है ।

सुप्रिय ड्राइंग-रूम में आ कर देखता है कि मिटू अपने एक फ्रॉक पर घाव से भरे एक गंदे बिल्ली के बच्चे को लिटाये उस के एतराज करने पर भी उसे एक बिस्कुट खिलाने की कोशिश में लगी है ।

मिटू के हाथ में सिर्फ यही खाने की चीज है, क्या करे वह । आ कर ही पहले उस ने घनश्याम से कहा था, "ऐ, थोड़ा दूध ला कर इसे पिला दे तो ..."

घनश्याम ने अवज्ञा से कहा था, "मुझ से नहीं होगा यह । मुझे उसे छूने से छूत की बीमारी हो जायेगी ।"

"ठीक है, जा भाग," गुस्से से कहा था मिटू ने, "मैं विस्कुट खिला रही हूँ ।" बिस्कुट को खिलाने की कोशिश में वह जी जान से लगी हुई है ।

"थोड़ा खा ले रे । बहुत अच्छा लगेगा। कभी खाया तो होगा नहीं, देख ले जरा चख के । अच्छा, तू इतना बेवकूफ क्यों है ? नहीं खाने से आदमी मर जाता है, इतना भी नहीं जानता ? मुझे देख, मैं कम खाती हूँ तभी इतनी दुबली हूँ । फिर मेरी तो माँ मौजूद है । जबरदस्ती खिलाती है । और तेरी तो माँ भी नहीं है । कौन खिलायेगा तुझे ? एक टुकड़ा खाते ही ताकत आ जायेगी शरीर में, तब समझेगा इस के गुण को ।"

जो लड़की माँ से पिता के घर पर अपने अधिकार के लिए झगड़ सकती है, वही लड़की इतना बचपना भी कर सकती है, यह अविश्वसनीय है !

और यही शायद मिटू का सच्चा स्वरूप है ।

आँखों से आग बरसाने वाली मिटू तो केवल अपनी माँ की कॉर्बन-कॉपी है । बालक से अधिक अनुकरणप्रिय और कौन

हो सकता है ! सुप्रिय कमरे में घुस कर ठिठक कर खड़ा हो गया। सुप्रिय को अपनी बेटी का याचना से कातर स्वर सुनायी दिया, "थोड़ा खा ले ना रे, बाबा ! कब से मना रही हूँ ! न खाने से मर जायेगा, यह भी नहीं जाता तू ?"

सुप्रिय शायद बेटी को डाँटने के लिए ही आया था। उस ने शायद बिल्ली के बच्चे को घर से निकाल बाहर करने की बात भी सोची हो, पर उस कातर याचना ने विचलित कर दिया सुप्रिय को। बोला, "तू कितनी मूर्ख है मिटू ! बिल्ली का बच्चा कहीं बिस्कुट खाता है ?"

पिता का मृदु स्वर सुन कर मिटू को लगा जैसे स्वर्ग धरती पर उतर आया हो। बोली, "बाबा, आ गये तुम ? मैं तब से सिर्फ तुम्हारे बारे में सोच रही हूँ। देखो न बाबा, यह कुछ नहीं खाता। मर जायेगा न इस तरह ?"

सुप्रिय बोला, "उसे थोड़ा दूध देना चाहिए।" दूध के प्रसंग पर एकाएक रो पड़ी मिटू। "मैं क्या नहीं जानती यह ? घनश्याम से तो मैं ने कहा भी था। पर घनश्याम पाजी ने नहीं दिया। और माँ तो .." हाथ से उस ने एक असहायता प्रकट की।

अब सुप्रिय ने धीरे से कहा, "तुम्हारी माँ ने ठीक ही कहा है मिटू। वह बच्चा कितना गंदा है, कीचड़ से लथपथ है। नहला कर साफ तक नहीं किया गया है, और तुम उसे गोदी में लिये हो। इस से तुम बीमार पड़ सकती हो कि नहीं ?"

"यह सब तो जानती हूँ बाबा," एक बड़ी-बूढ़ी की तरह मिटू ने कहा, "बिल्ली से ही डिपथीरिया और दूसरे रोग होते हैं। लेकिन उस की मौत से मेरी थोड़ी-सी बीमारी ही बड़ी चीज हो गयी ?" सुप्रिय ने सिर नीचा कर लिया। सुप्रिय इस विशुद्ध सरलता के सामने मानव जीवन के कठोर सत्य को उपस्थित न कर सका। वह नहीं कह सका कि एक व्यक्ति के अणुमात्र स्वार्थ की रक्षा के लिए अनेक के असंख्य स्वार्थ की हानि ही इस जगती का नियम है।

सुप्रिय ने केवल कहा, "इसे थोड़ा नहला लिया जाता तो अच्छा होता।"

"बीमारी की हालत में कैसे नहायेगा, बाबा ? जब हमें बुखार आता है हम नहाते हैं क्या ? जब ठीक हो जायेगा यह तब साबुन से नहला कर साफ कर दूँगी।"

सुप्रिय ने बाहर आ कर घनश्याम से कहा, "ऐ, उस बिल्ली के बच्चे के लिए थोड़ा दूध तो ले आ।"

सोमा ने यह उम्मीद तो नहीं की थी कि सुप्रिय लड़की से कोई कड़ाई करेगा, किंतु यह भी नहीं सोचा था कि वह नौकर को दूध लाने का हुक्म देगा।

इतना अपमान सोमा का ! क्या समझ रक्खा है उस ने ? रुपया कमाता है, इसलिए क्या पैरों तले रौंदेगा ?

सोमा का चेहरा धीरे-धीरे कठोर होने लगा।

मिटू ने कहा था, "जब ठीक हो

जायेगा यह तब साबुन से नहला कर साफ कर दूँगी ।"

पर मिंटू की किस्मत में उस दृश्य को दिखलाना नहीं बदा था ।

घनश्याम को एक प्लेट में बच्चे के लिए दूध ले आते देख कर खुशी-खुशी नहाने चली गयी थी मिंटू । पिता ने कहा था, "खाना खा कर तब उसे छूना मिंटू ।"

मिंटू ने पिता के आदेश का पालन किया था। फिर उसे भूख भी बहुत लगी थी । काफी मेहनत भी करनी पड़ी है ।

जली सब्जी से आज इतना खाया मिंटू ने जितना रुचिकर व्यंजन बनने पर भी नहीं खाती । लेकिन उस के बाद क्या हुआ मिंटू को ?

क्यों इस तरह पागलों की तरह चिल्ला उठी, "बाबा, क्यों तुम ने मुझे खाने को भेजा ? ओ . . . बा . . . बा . . ."

क्या जली तरकारी खा कर उस के पेट में दर्द हो रहा है ? या ज्यादा खा कर ?

दौड़ा आया सुप्रिय । दौड़ी आयी सोमा भी । घनश्याम भी ।

वह मृतप्राय जीव मरा पड़ा था, एक वीभत्स मुद्रा में । एक तरफ का गाल सटा था फर्श से। थोड़ा-सा द्रव बाहर निकल आया था मुँह से ।

अब मिंट को उस की ओर देखने तक की हिम्मत नहीं पड़ रही है । 'मीउ-मीउ' की ध्वनि बंद होने पर उस ने सोचा था कि दूध पी कर पेट भर जाने के कारण ही वह चुप हो गया है। चप होने का मतलब तब यह है ! सुप्रिय ने लड़की के मुरझाये चेहरे की ओर देखा, फिर सोमा के काठ बने चेहरे की ओर देख कर व्यंग्य से मसकरा कर बोला, "तुम औरतों के भंडार में तेल-घी-मसालों की तरह शायद जहर का स्टाक भी मौजूद रहता है, ताकि जरूरत पड़ते ही आसानी से मिल सके ।"

सोमा का काठ बना चेहरा थोड़ा शिथिल होता है । फक पड़ जाती है वह । रुँधी आवाज में कहती है, "क्या कहा ?"

"नहीं, कहता कुछ नहीं । सिर्फ महसूस कर रहा हूँ कि जीवन की निश्चिंतता सदा के लिए विदा हो गयी," सुप्रिय ने ठंडी साँस लेते हुए कहा ।

एक बार एक सज्जन पुस्तक खरीदने के लिए एक दुकान पर गये । पुस्तक बेचने वाली महिला ने 'फोरसाइट सागा' पुस्तक पढ़ने की सिफारिश करते हुए उन से कहा, "यह पुस्तक बढ़िया है । मैं ने इसे स्वयं पढ़ा है और खूब आनंद अनुभव किया है ।" सज्जन ने पुस्तक खरीद ली । कुछ ही देर बाद उन सज्जन ने लौट कर वह पुस्तक उस महिला को लौटा दी । प्रथम पृष्ठ पर लिखा था-- 'मेरी पुस्तक को पढ़ कर आनंद पाने वाली महिला को सप्रेम भेंट । भेंटकर्ता--जॉन गॉल्सवर्दी ।'

मुगलकालीन जन-जीवन की झाँकी



परदे में परदा

मुगलकालीन जन-जीवन ऐश्वर्य और सभ्यता का अद्‍भुत समन्वय था। यह युग दो विभिन्न जातियों के संगम का था। दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित कर रही थीं। यह काल रुचि और कला-संग्रह का भी था। घरों के दरवाजों और दीवारों को रूमी और काशानी मखमलों, बनारसी जरबफ्त, पुर्तगाली बमातों और कश्मीर की शालों से सजाया जाता था। फिरंग और चीन के परदे लटकते थे। ईरान और तुर्किस्तान के कालीनों के पा-अंदाज बिछते। अनूठे आईनों, बिल्लोर के कंदीलों, झाड़-फानूसों और कुमकुमों से दीवानखाने रोशन रहते। उस जमाने की महफिलें और 'नशिस्ते' ही और थीं।

अल्तेकर के अनुसार परदा मुस्लिम युग की देन है। वे इसे अरब और तुर्किस्तान से लाये। परदा केवल भय के कारण अस्तित्व में नहीं आया, इस के लिए अकबर-जैसे उदारवादी बादशाहों ने भी फरमान निकाले थे। तदनुसार, "अगर कोई जवान औरत सड़कों पर या बाजारों में मुँह खोले, दौड़ती पायी गयी या परदा रहते हुए भी मुँह उघड़ जाने देगी, उसे वेश्यावृत्ति करनी होगी।" (अब्दुल कादिर बदायूँनी--'मुंतखब-उत-तवारीख')

जरा देर के लिए भी परदा हट जाना तलाक का कारण बन जाता था। काबुल के गवर्नर अमीर खाँ की बीबी हाथी पर सवार थी। हाथी के पागल हो जाने

के कारण उसे कूदना पड़ा। उस मौके पर परदा उघड़ जाने से चेहरे की झलक दिखायी दे गयी। बिना परिस्थिति का विचार किये उसे तलाक दे दिया गया। मसीबत तो हकीम की होती। बेचारा नाड़ी देखने की कौन कहे, अँगुली का रंग भी न जान पाता। जान मार्शल ने लिखा है, "एक रूमाल बीमार बेगम की सारी देह पर फिराते थे। फिर वह रूमाल एक पानी के बरतन में डुबो दिया जाता। अब वह पानी हकीम साहब की खिदमत में पेश होता। वे सूँघ कर मर्ज भाँपने की कोशिश करते।"

मध्य-वर्ग के हिंदुओं तथा मुसलमानों में भी परदा होता था। राजपूत रमणियाँ इसे अपनाते हुए भी यद्ध तथा आखेट में भाग लेती थीं। नूरजहाँ परदा न करने वालों में अपवाद थी। किसानों की औरतें उस जमाने में भी मुँह उघाड़े पनघट पर जमा होतीं और खेतों में मेहनत करती थीं। डेल्ला बैले के अनुसार निर्धन तथा चरित्रहीन नारियों के अतिरिक्त सभी परदा करती थीं। बड़े घरों की औरतें खास मौकों पर ही घर से बाहर आती थीं। उस समय उन की पालकी ही नहीं ढकी रहती, चारों ओर से हिजड़े तथा नौकर घेरे रहते थे। रजिया के परदा तोड़ने पर लड़ाई ही मच गयी। (रहला, पृ० २४,२५)

अमीर कुलाह (टोपी) और रेशमी कोट के साथ कंधों पर शाल रखते थे। कमर से सुनहली मूठ की कटार लगी रहती। हिंदू कुंडल पहनते। ब्राह्मण तिलक के साथ रेशमी किनारी की धोती धारण करते। उन के हाथ में छड़ी, चरणों में पादुका रहती। '[illegible]-अकबरी' में ११ तरह के कोटों का जिक्र है। 'कबा' हिन्दू मुसलमान दोनों पहनते थे। यह ढीला-ढाला कोट टखनों तक लंबा होता था। बटन की जगह यह धागों से बाँधा जाता था। हिंदू इसे बायीं ओर मुसलमान दायीं ओर बाँधते थे (कानूने-हुमायूँ)। इस का पहला और आखिरी धागा बाँधना, बाकी लटकने देना अमीरों का फैशन और प्रतिष्ठा का कारण माना जाता था (लिस्टन, १–२४७)। 'गदर' कबा से लंबा-चौड़ा था और 'फर-कोट' की जगह इस्तेमाल होता था। ऊनी या मोमी कपड़े का बना 'चकमा' बरसाती कोट था।

औरतें अँगिया और लँहगे के साथ दुपट्टा पहनती थीं। अमीरजादियाँ 'लचक' से सजी रहती थीं। यह सिर से ठुड्डी तक बँधी चौकोर ओढ़नी रहती थी। इसे दोहरा कर तिकोना बना लेते थे। निकोलो काँटी ने रंग-बिरंगे फीतों से जूड़ा बाँधने का भी जिक्र किया है।

रईस सोने-चाँदी के तार या रेशमी कशीदाकारी से सजे जूते पहनते। ये टर्किश चमड़े से ले कर मखमल और साँप से ले कर शेर की खाल तक के बने होते थे। बेगमों के लिए जानवरों के कलेजों की जूतियाँ बनती थीं। मध्यम वर्ग लाल चमड़े के जूते पहनता था। सलीमशाही जूतों का तो सारे भारत में प्रचलन था। नादिरशाह की लूट में पाँच ऊँट सलीम-

शाही जूते भी थे। ऊपर से खुले, नोकदार, ऊँची एड़ी के तुर्की फैशन वाले जूते ही अधिक पहने जाते थे (स्टैवोरिनस)।

अकेले आगरा शहर में ही ८०० हमाम थे। ग्राहकों के तलवे झाँवे से रगड़ कर साफ किये जाते थे। कारण, लोग पैरों को भी हाथ-जितना ही मुलायम और साफ रखना पसंद करते थे। रक्त-संचार के लिए रीढ़, बगलों आदि की मालिश होती थी। नहला कर उन्हें तौलिये से पोंछा जाता था। तेल और इत्र के साथ गरमियों में संदल की रूह का खास इस्तेमाल किया जाता। लौंग और संतरे मुफ्त बाँटे जाते थे।

उच्च-वर्ग के हिंदू, मुसलमानों का भोजन लगभग एक-सा हो चला था। अमीर 'रोगनी' (१५ प्रतिशत घी वाली रोटी) खाते थे। 'बिरिंज' (सब्जी में पके चावल) 'जर्द बिरिंज', 'शीर बिरिंज,' 'दुज्दबिरियाँ,' 'कीमा', 'पुलाव' मुसलमानों की खास पसंद थे। जाफरान, मक्खन और काली मिर्च के साथ मेवों का भी इस्तेमाल होता था। 'रिश्ता-ए-खताई' गुलाबजल, मुश्क वगैरा डाल कर बनाते थे ('वाकियाते जहाँगीरी')। 'आलूबालू' तथा हलवे का इस्तेमाल होता ही था। इस जमाने में बहुत सी मिठाइयाँ भारत के बाहर से आयीं और यहीं की हो कर रह गयीं, जैसे गुलाबजामुन, बर्फी, बालूशाही आदि।

मामूली लोग बाजरे की रोटी, दाल तथा खिचड़ी खाते थे। हिंदुओं की पत्तलें नमक-घी लगा कर 'शुद्ध' की जाती थीं। फिर चावल, दही तथा सब्जी परोसते थे। पत्तलें अंजीर की पत्तियों से ढकी जाती थीं। चमचों का भी कभी-कभी इस्तेमाल होता था। संपन्न व्यक्ति गरमियों में बर्फ का प्रयोग करते थे। शिकंजबी के अलावा 'रोजे' में भी बर्फ का इस्तेमाल होता। पानी ठंडा करने के लिए शोरा काम में लाते थे।

खाने के बाद हुक्का पिया जाता। अमीरों के पान कपूर और मुश्क से गमकते और रेशम के डोरे से बँधे होते थे। उपहार में ही पान नहीं भेजा जाता था, वह प्रतिष्ठा का भी प्रतीक था। 'नशिस्त' में तश्तों में लगे पान आते। वे बैठक खतम होने और उठने के संकेत-रूप में होते थे।

चाय और काफी का रिवाज भी था। खासकर कारोमंडल के किनारे के लोग इसे बेहद इस्तेमाल में लाते थे (लिंस्टन)। बनियों तथा ब्राह्मणों में भी इस का प्रचार था। बनिये चाय में चीनी नहीं डालते थे। वे स्वाद के लिए उस के साथ नीबू का अचार चखते थे (ओविंगटन)। चाय को गरम रखने के लिए लकड़ी और टीन से बना, कपड़े से ढका 'खास-बर्तन' (टीकोजी) प्रयोग में आता था। काफी के बीज भी उबाल कर पिये जाते थे। अमीर और सरदार दोस्तों के साथ काफी पीने में खुशी जाहिर करते थे। थट्टा के नवाब ने हैमिल्टन को एक प्याली चाय पीने के लिए आमंत्रित किया था। अहमदाबाद, दिल्ली-जैसे शहरों में चाय-काफी

की दुकानें थीं।

शतरंज, चौपड़, और चौगान की इस युग में धूम थी। मर्द ही नहीं औरतें भी पतंग से शौक फरमाती थीं। 'इश्क-बाजी' (कबूतरबाजी) चलती ही थी। बटेरबाजी, 'चंडल-मंडल' (चौपड़-जैसा), 'नर्द', पचीसी, 'मगल-पठान' कुश्ती और घूँसेबाजी भी चलती। फारस और तूरान के घूँसेबाज भी आते (मनूची)। घोड़ों के साथ कुत्तों की दौड़ होती। 'सफरा' या 'भँवरजाल' से मछली मार कर दिल बहलाया जाता। 'मोरपंख' (नाव) या बजड़ों में सैर की जाती। चीतों से ले कर हिरनों तक की लड़ाई देखी जाती। मामूली लोग घरों के सामने मुर्ग, बटेर, बलबुल, वगैरा लड़ा कर शौक पूरा कर लेते। नटों, जोगियों और बाजीगरों की करामातें भी पसंद की जाती थीं। अमीरों के जीवन के तो 'रज्म' (युद्ध) और 'बज्म' (मनोरंजन) दो ही पहलू थे। हरम का काम तो हिजड़े सँभालते थे।

जश्न धूम से मनाये जाते थे। नाच-गाने के बाद प्याले-पर-प्याले ढाले जाते। दीवाली पर मुसलमान भी रोशनी, सजावट और पटाखों से खुशी जाहिर करते। शानदार जुलस निकलते। सोना-चाँदी, हीरे और मोतियों की प्रदर्शनी होती। हुमायूँ ने महल के पास नाव पर औरतों का मेला लगवाना शुरू किया। अकबर ने उसे 'खुशरोज' नाम दिया। बाद में वही मेला 'मीना-बाजार' के नाम से महल में लगने लगा। शाहजहाँ भी महल के बरामदे में आठ दिन का ऐसा ही मेला लगवाता था। उमरा की खूबसूरत बीबियाँ उस में दुकानदार बनती थीं। होली की तरह 'आबपाशी' मनायी जाती। 'ईद-ए-गुलाबी' में गुलाब-जल छिड़का जाता था। बसंत-पंचमी पर हिंदू सरस्वती की पूजा करते थे।

'राखी' हुमायूँ ने भी बँधवायी थी। यही एक ऐसा हिंदुओं का पर्व था जो अकबर के समय राष्ट्रीय त्योहार बन गया था। जहाँगीर भी 'निघदश्त' (राखी) बँधवाता था। पुरोहित सरदारों को राखी बाँधा करते थे। जहाँआरा ने छत्रसाल को राखी भेजी थी। मुगल-दरबार दशहरा भी मनाता था। उस अवसर पर पशुओं का निरीक्षण होता था। हिंदू भी मुस्लिम त्योहारों में भाग लेते थे। बहराइच की 'जियारत' का जिक्र तुलसीदासजी ने भी किया है। हिंदुओं में 'सेहरा' और 'जामा' अपना लिया गया। दिल्ली-दरबार में १८२५ तक दुर्गापूजा मनाने के उल्लेख हैं।

हिंदुओं का भी मुस्लिम-समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। मुस्लिम-समाज में दुलहन को पान का बीड़ा पेश किया जाने लगा था (इब्नबतूता, रहला)। चूड़ी और पगड़ी भी अपना ली गयी थी। किंतु सब से रोचक रूप 'सदासुहागिन संप्रदाय' के द्वारा प्रकट हुआ। इस पर सखी-संप्रदाय का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस की स्थापना हजरत शाह मूसा ने की थी। इस मत के लोग भी नारी वेश धारण

कर अल्लाह की इबादत करते थे। शाह मूसा ने अपने अनयायियों को चूड़ी पहन कर स्त्री-वेश में रहने का आदेश दिया था। उन का तखल्लुस 'सदासुहाग' था।

मुगल-काल की आर्थिक स्थिति अलाउद्दीन और तुगलक के शोषण-युग की अपेक्षा अच्छी कही जा सकती है। वैसे अकबर के जमाने के बाद किसानों की हालत भी उतनी बेहतर नहीं रही। दस्तूरी और बेगार का जोर बढ़ता गया। अकाल पड़े। १६१६ में प्लेग, १६१८ में 'फ्लू'-जैसी बीमारी और १५७५ में भयंकर मलेरिया। सभी में साधारण व्यक्ति ही पिसा। वैसे आयात-निर्यात का जोर रहा। अफ्रीका से गुलाम, चीन से रेशम (चीनांशुक), चीनी मिट्टी के बरतन, ईरान से कालीन और शरावें और बेनिस से शीशे आते। यहाँ से कपड़े, मसाले, शकर, नमक, लाख और अफीम जाती। कलकत्ता के पास बिहार का शोरा भी विदेशी पूँजी खींच रहा था। आगरा, सूरत, अहमदाबाद और सिरौंज कपड़े के केंद्र थे। सूरत का बीरजी बोरा (१६१९ से १६७०) विश्व के धनिकतम व्यापारियों में गिना जाता रहा। उस का व्यापार विदेशों में भी था। (एडवर्ड, 'मुगल रूल इन इंडिया')।

जनता के लिए डाक-व्यवस्था सरकारी न हो कर व्यापारियों पर निर्भर थी। उन के द्वारा 'हुंडी' के रूप में पैसे भी भेजे जाते थे। माथे पर बँधी घंटियाँ टुनटुनाते, चाबुक फटकारते मियाँ हरकारे उड़े जाते थे। थके कि अफीम का गोला चढ़ाया। पत्र पहुँचाया, इनाम पाया। अँगरेजी जमाना आया तो 'पोस्टपेड' की लाल और बैरंग की स्याह मुहरें तथा बाद में टिकट भी चले। मगर जनता को इतमीनान न हुआ। तोलने के लिए काँटा-बाट भी रखना पड़ा। मुसीबतें बढ़ ही गयीं। पहले "खत जब डाकघर में जाता था, रसीद मिलती थी। डाककिताब को देख याद आ जाता कि अमुक खत किस दिन भेजा, किस तरह भेजा। अब डाकघर में एक संदूक, मुँह खुला हुआ, न रसीद, न मुहर, न मुशाहिद (प्रत्यक्षदर्शी)। डाक के हरकारे को न इनाम का लालच, न सरकार को महसूल की 'तमा' (लोभ) (गालिब के एक खत से)।

हिंदुओं के प्रति सामान्यतः व्यवहार क्रूरता-पूर्ण ही रहा। प्रायः सभी बादशाहों के समय कहीं-न-कहीं धर्म-स्थान नष्ट हुए। जहाँगीर मसलमानों का हिंदू कन्याओं से विवाह सहन कर सकता था, किंतु विपरीत स्थिति उसे असह्य थी। मसलमान लड़कियों से विवाह करने वाले राजौरी के हिंदुओं को उस ने दंड दिया था। एक अन्य राजपूत सरदार को ऐसी ही स्थिति में बंदी बना कर भंगियों के साथ खिलाया था। ●

पड़ोसिन : दिनेश इतिहास के पर्चे में फेल कैसे हो गया?
माँ : दिनेश का कोई दोष नहीं था, नासपीटों ने सवाल उस जमाने के पूछे जब वह पैदा ही नहीं हुआ था।

खटपट की आवाजों से झनकू की नींद उचट गयी। सीढ़ियां उतर कर उन्होंने देखा कि चोर रसोईघर का सामान एक बोरे में समेट रहा है। दरवाजा भेड़ कर उस के पीछे से झनकू ने ललकारा--"सारा सामान यहीं रख दो नहीं तो तुम्हारी खैरियत नहीं है।" बोरे में चाय की छननी डाल कर चोर मुसकराया और बोला, "अब इतने बेईमान मत बनो सरकार, इस में आधा माल तो तुम्हारे पड़ोसी का है।"

★

जादूगर तमाशा दिखा रहा था। भीड़ में श्रीजी भी थे। जादूगर ने एक संदूक में एक आदमी को बंद किया और कुछ सेकंड में दो छोटे-छोटे खूबसूरत पिल्ले संदूक से निकाल कर पेश कर दिये। शो खत्म होने के बाद श्रीजी जादूगर से बोले, "क्या आप मुझे भी संदूक में बंद करके पिल्ले निकाल सकते हैं?"

"जी हाँ, पर आप को क्या फायदा होगा इस से?"

"मेरी दोस्त मिस झपाका को खूबसूरत पिल्ले बहुत पसंद हैं अतः उन्हें उसे भेंट कर दूँगा," श्रीजी ने प्रसन्नता दबाते हुए कहा।



★

"सुभाष ने नौकरी छोड़ दी।"

"क्यों?"

"उस से वह काम करने को कहा जा रहा था जो उसे पसंद नहीं था।"

"ऐसा क्या काम करने को कहा जा रहा था?"

"दूसरी नौकरी तलाश कर लो।"

★

मास्साब ने नंदू से पूछा, "ढाई का आधा भाग कितना हुआ?"

"मुझे ठीक-ठीक तो मालूम नहीं मास्साब, पर कोई ज्यादा थोड़े ही होगा!"



हँसी के मौसम

ग्राहक के खाना खा लेने के बाद वेटर ने बड़े अदब से दरवाजा खोला तो ग्राहक को एकाएक कुछ स्मरण हो आया, बोला, "भाई, माफ करना। मैनेजर को जब मैं बढ़िया खाने के लिए धन्यवाद देने गया तो भूल से तुम्हारी टिप उसे ही दे आया।"
"यह तो बहुत ही बरा हुआ साहब। खैर, अब आप ऐसा कीजिये—मैनेजर की टिप मुझे दे दीजिये।"

*

"ताज्जुब है ! मैं ने जब पिछले हफ्ते तुम से कह दिया था कि मुझे बड़ी उम्र का चपरासी चाहिए, तुम-जैसा छोकरा नहीं; फिर तुम क्यों आ गये ?"
"इसीलिए तो सा'ब, मैं एक हफ्ते बाद आया हूँ।"

*

झनकू प्राचीन वस्तुएँ खरीदने गये और दुकानदार से बोले, "उस फानूस की क्या कीमत है ?"
"पाँच सौ रुपये," दुकानदार ने बताया।
"पर पिछले हफ्ते तो आप ने तीन सौ रुपये बताये थे !"
"जरूर बताये होंगे साहब, पर अब कच्चे माल की कीमत और मजदूरी भी तो बढ़ गयी है।"

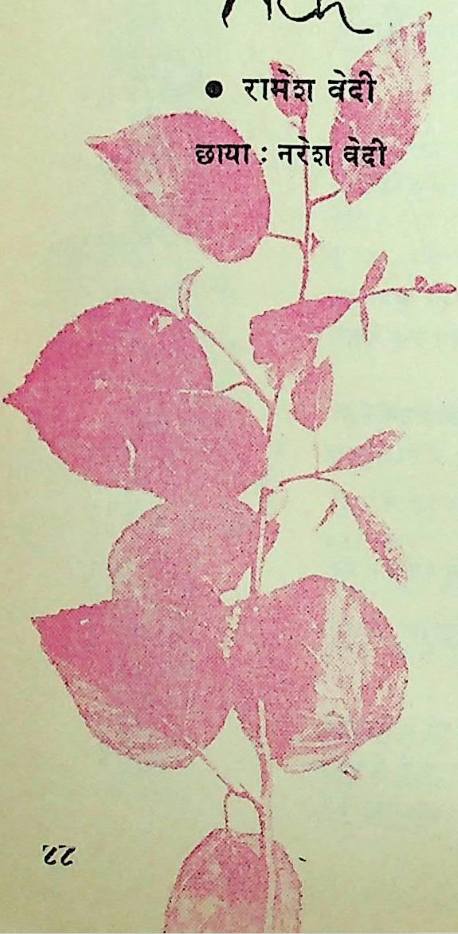
*

रामधनीजी का अपेंडिसाइटिस का आपरेशन हो चुका था और वे वार्ड में आराम कर रहे थे। एक मित्र उन्हें देखने आये और हालचाल पूछने लगे।
"अब तो मैं ठीक हूँ, पर पहले आपरेशन के बाद उन्हें फिर मेरा पेट चीरना पड़ा क्योंकि सर्जन मेरे पेट में स्पंज भूल गया था।"
"पर अब तो सब ठीक-ठाक है ?"
"हाँ, कल फिर मेरा आपरेशन हुआ। धोखे से सर्जन ने पेट में कैंची सी दी थी।"
"बड़ा कष्ट हुआ तुम्हें, पर अब तो सब ठीक ही है न," मित्र ने तसल्ली बँधाने के लिए कहा।
पर तभी रामधनीजी की तबीयत अचानक तेजी से बिगड़ने लगी। ऐन उसी वक्त डाक्टर हाँफता हुआ वार्ड में घुसा और बोला, "मेरा दस्ताना तो यहाँ नहीं रह गया !"

भोजपत्र कपड़ों से दवाखरू तक

• रामेश वेदी

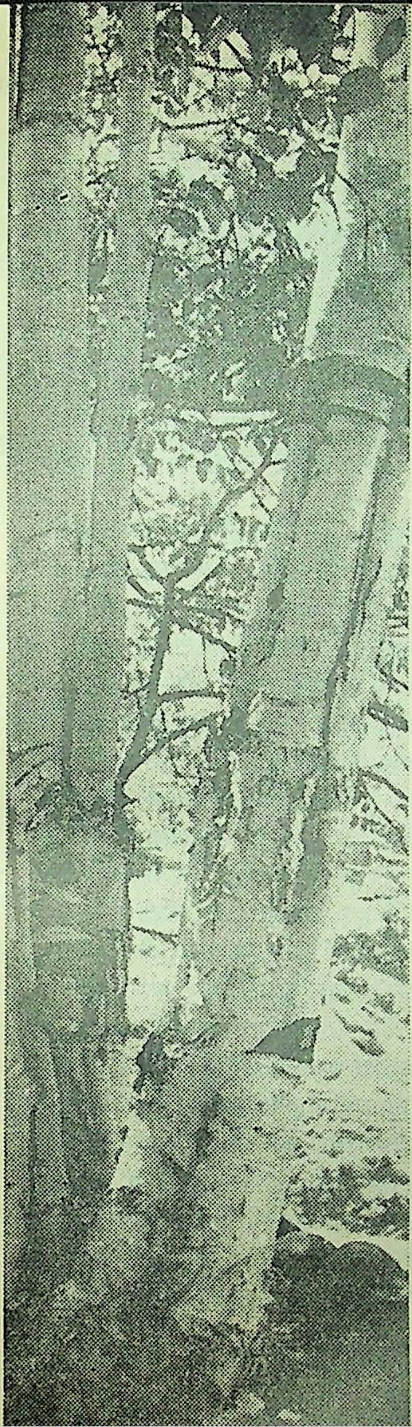
छाया : नरेश वेदी



अँगरेज कवियों ने भोजवृक्ष की उपमा अतिशय लजीली स्त्री से की है। वे इसे 'जंगल की देवी' भी कहते हैं। हिमालय के घने जंगलों में भोजवृक्ष के लंबे तनों का उगते हुए सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ जब आलिंगन करती हैं तो हिमालय के इस वृक्ष का लालित्य निखर उठता है।

दिग्विजय के लिए रघु जब हिमालय पर गये थे तो मार्ग में भोज के सूखे पत्तों में मर्मर ध्वनि पैदा करने वाली, गंगा के जल-कणों से शीतल हवाओं ने उन का स्वागत किया था।

भोजवृक्ष की छाल पवित्र मानी जाती है और धार्मिक कार्यों में व्यवहार में आती है। जन्मपत्रियों को भोजपत्र पर लिखने की प्रथा बहुत समय तक रही है। बाणभट्ट ने सातवीं शताब्दी में भोजपत्र पर गोरोचन से लिखे गंडे धारण करने का उल्लेख किया है। विनाशकारी शक्तियों तथा भूत-बाधाओं से बचाने के लिए भोजपत्र पर लिखे तावीज अब भी हमारे देश में धारण किये जाते हैं। कृश बच्चों को अभिमंत्रित भोजपत्र धारण कराये जाते हैं। सामान्यता भोजपत्र पर



अपने उपास्य देव का नाम या चित्र अंकित कर अथवा किसी कष्ट-निवारक मंत्र को लिखा कर धातु की छोटी-सी डबिया में बंद करके गले में या भुजा में बाँध लेते हैं।

पुराकाल में लिखने के लिए भोजवृक्ष की छाल का ही मुख्य रूप से व्यवहार होता था। इस विशेषता के कारण भोजवृक्ष को संस्कृत में लेख्यवृक्ष भी कहते थे। दस्तावेज, आदि इसी छाल पर लिखे जाते थे। इसलिए दस्तावेजों के लिए संस्कृत का प्राचीन शब्द भूर्जम् है। भोजपत्र पर लिखी जिल्दबंद पुस्तकें भी मिलती हैं। इस छाल पर सब से पुरानी पुस्तक तीसरी शताब्दी की लिखी हुई मिलती है। यह पाली की धम्मपद है। शारदा तथा देवनागरी लिपियों में भोजपत्र पर लिखी लगभग डेढ़ हजार साल पुरानी पुस्तकें कश्मीर में मिली हैं। कशगर (चीन) में एक बौद्ध-स्तूप में भोजपत्रों पर लिखी एक पोथी मिली है जो 'बाबर पांडलिपि' के नाम से प्रसिद्ध है। यह लगभग ४५० ईसवी के बाद भारतीय गुप्तलिपि में लिखी गयी थी। हिंदू पर्यटकों द्वारा यह कशगर ले जायी गयी थी। देश-

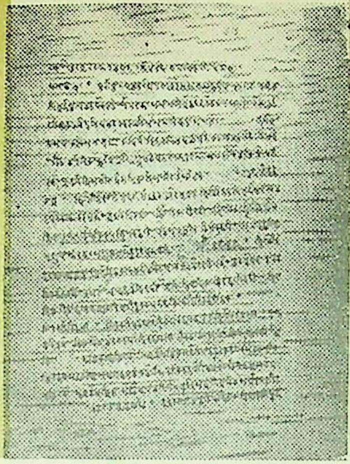
विदेश के संग्रहालयों में भोजपत्र पर लिखी अनेक पुस्तकें सुरक्षित हैं।

कालिदास ने हिमालय में रहने वाले आदिवासियों को इस की छाल को लिखने के काम में लाते देखा था। वे लिखते हैं—'हाथी की त्वचा पर बने लाल बिंदुओं के समान लाल रंग की भूर्ज-त्वचाओं के ऊपर सिंदूर से लिखे प्रेम-पत्र विद्याधर सुंदरियाँ अपने प्रेमियों को भेजती थीं।' उर्वशी अप्सरा ने अपनी दैवी शक्ति से एक भोजपत्र उत्पन्न कर उस पर अपना प्रेम-संदेश लिख कर राजा पुरुरवा को भेजा था। चितकबरे भोजपत्र को देख विदूषक ने उसे साँप की केंचुली समझ लिया था। तब राजा ने उसे बताया था कि यह तो लिखा हुआ भोजपत्र है। उर्वशी को देखने में विदूषक इतना बेसुध हो गया था कि उसे यह भी पता न चला कि उस के हाथ में भोजपत्र कब निकल कर गिर पड़ा। विदूषक मन ही मन डरने लगा कि कहीं महाराज भोजपत्र न माँग बैठें। इतने में ही राजा को ध्यान आ जाता है और वे भोजपत्र माँग उठते हैं। उसे ढूँढ़ता हुआ विदूषक कहता है—'हाय, हाय! वह तो मिलता ही नहीं। मित्र! वह भोजपत्र तो स्वर्ग का था न, इसलिए वह भी उर्वशी के साथ ही उड़ गया होगा।' हवा के साथ उड़ता हुआ फटे कपड़े के टुकड़े-जैसा वह भोजपत्र तब रानी भट्टिनी के बिछुए में आ कर अटक जाता है। राजा को व्याकुल देख कर देवी उस भोजपत्र को दे देती है।

हिमालय के पर्यटन में मैं ने फूलों की



घाटी भ्यूँधार जाते हुए घंघरिया के वनों में भोजवृक्ष के जंगल देखे, जो बड़े सुंदर लगते हैं। इन के तनों और मोटी शाखाओं पर से अपने आप पुरानी छाल उतरती रहती है। भारी परिमाण में इस की छाल जंगलों में पड़ी रहती है और प्रयोग आये बिना ही नष्ट हो जाती है। जून के अंतिम सप्ताह में भी भूर्ज वनों के साथ के पर्वत हिमाच्छादित थे। हेमकुंड (समुद्रतल से लगभग १४,२५० फुट ऊँचा) और फूलों की घाटी जाते हुए मार्ग में पड़ने वाली हिमानियों (ग्लेशियर्स) को हम ने भूर्ज की सहायता से पार किया था। हमारे पथ-प्रदर्शक ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए भूर्ज की दो-दो लाठियाँ काट दी थीं, जिन्हें बर्फ में गाड़-गाड़ कर हम बर्फ पर बढ़ रहे थे। कपड़े के मामूली बूट उन को पार करने के लिए अनुपयक्त थे, इसलिए भोजपत्रों को पैरों और टाँगों पर मोटी-मोटी तहों में लपेट कर अच्छी तरह बाँध लिया था। भोजपत्रों को नीचे बिछा कर मोटा गद्दा बना लिया था



भोजपत्र की छाल उतारी जा रही है (बायें पृष्ठ पर) भोजपत्र पर लिखे ग्रंथ का एक पन्ना (इस पृष्ठ पर)

और उस पर सोने में हमें आराम मिला था। आग सुलगाने के लिए भी भोजपत्र हमारे काम आये थे।

भोजवृक्ष (बिटुला युटिलिस) हिमालय के ठंडे प्रदेशों में कश्मीर से सिक्किम तक और भूटान में भी मिलता है। कश्मीर में सात हजार फुट से बारह हजार फुट तक और सिक्किम में नौ हजार से चौदह हजार फुट तक यह मिलता है। भोजपत्र की दूसरी जाति 'बिटुला एलनौयडिस' कम ऊँचाई के पर्वतों पर भी उग जाता है।

भोजपत्र उत्तर हिमालय में जून में पुष्पित होता है। फूल छोटी शाखाओं के सिरे पर लगते हैं।

भोजपत्र का वृक्ष बड़ा होता है और खूब ठंडी जगह में भी स्थिर रहता है। इसी विशेषता के कारण इसे संस्कृत में 'भर्ज' (भूः ऊर्जः अस्य, ऊर्ज बलप्राणनयोः) कहते हैं। अँगरेजी में इसे 'बर्च' तथा जरमनी में "बर्चा' या 'बर्क' कहते हैं। ये संस्कृत के 'भर्ज' शब्द से मिलते हैं। इस की छाल लंबी चादरों में उतरती है। छाल नरम होती है और आसानी से उतर जाती है।

हिमालयवासियों के जीवन में भोजपत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छातों में कपड़े के स्थान पर वे भोजपत्र लगाते हैं। मकानों की छतों को भोजपत्र से पाटते हैं। बिछावन के लिए यह घरों में प्रयुक्त होता है। पहले जमाने में तपस्वी लोग वस्त्र के रूप में इस का प्रयोग करते थे। पर्वतों पर विशाल शिलाओं के ऊपर मैनसिल का लेप किये हुए, नमेरु फूलों का श्रृंगार किये हुए और भूर्जवल्कल के कोमल वस्त्रों को धारण किये हुए शिवजी के गणों को कालिदास ने देखा था।

कनाडा के राष्ट्रीय संग्रहालय में भोजपत्र की सब से बड़ी नौका १९६० में रखी गयी। भूतकाल की लुप्त नौकाओं का यह हूबहू नमूना साढ़े छत्तीस फुट लंबा और तीन फुट ऊँचा है। पिछली शताब्दियों में इंडियन लोग (आदिवासी) इस प्रकार की नौकाओं को बनाया करते थे। उन की यह

कला सभ्यता के नये-नये आविष्कारों के साथ समाप्त हो गयी। ओटावा से सौ मील दूर गोल्डन लेक रिजर्वेशन में केवल एक चिपेवा इंडियन बचा था जो भूर्ज-नौकाओं के बनाने में माहिर था। १९५७ में सरकारी अधिकारियों ने यह नौका बनवाने का निश्चय किया। ८२-वर्षीय उस बूढ़े माट्ट बर्नार्ड को यह काम सौंपा गया। किश्ती के लिए जरूरी सामान जुटाना इतना दुर्लभ था और इस में इतनी पेचीदगियाँ थीं कि इसे पूरा करने में तीन बरस लग गये। निर्माण-कार्य शुरू करने से पहले माट्ट और उस के लड़के माइक को कई महीनों तक उपयक्त सामग्री की तलाश के लिए जंगलों में भटकना पड़ा था।

आश्चर्यजनक रूप से हलकी और मजबूत ऐसी नौकाओं पर कनाडा के आदिवासी चिपावा इंडियनों के पुरखे प्राचीन काल में अतलांतक से उत्तर-ध्रुव-वृत्त तक यात्रा करते थे। जब गोरे वहाँ पहुँचे तो उन के लिए ये उसी तरह उपयोगी थीं जैसे आजकल मोटरें। इंडियनों का धर्म-परिवर्तन करने के लिए इन भोजपत्र की नौकाओं के जरिये मिशनरियों ने मार्गरहित जंगलों के भीतर दुर्गम स्थलों में प्रवेश किया था। मांट्रियल तथा अन्य पूर्वी केंद्रों के व्यापारी इन पर निर्भर करते थे। सुदूर उत्तर-ध्रुवीय चौकियों पर वे हजारों टन फर इस के द्वारा पहुँचाते थे। कनाडा के अंतर्देशीय जलमार्गों की यह 'रानी' थी।

इस की लकड़ी मजबूत होती है। उत्तर हिमालय के लोग भूर्ज की लकड़ी को खराद कर बड़े सुंदर पात्र बनाते हैं। भूर्ज से मिलता-जुलता एक अन्य काष्ठ ऊस्त भी है।

केदार-बदरी के दर्शन करने जाने वाले यात्री अपने साथ भोजवृक्ष की लाठी अवश्य घर ले जाते हैं।

सोवियत संघ के सुदूर पूर्वी क्षेत्र में समुद्र के किनारे के दक्षिण भाग में एक प्रकार का भोजवृक्ष होता है जिसे 'श्मित बर्च' कहते हैं। ऐसे वृक्ष उत्तरी कोरिया में तथा उस के पार्श्ववर्ती चीनी इलाके में भी पाये जाते हैं। स्थानीय लोग इसे 'लौह भूर्ज' के नाम से पुकारते हैं। यह भूर्ज इतना मजबूत होता है कि यदि इस पर गोलियाँ भी दागी जायें तो इस पर दाग तक नहीं पड़ता। इस की लकड़ी इतनी भारी होती है कि पानी में डूब जाती है। देर तक पानी के अंदर पड़ी रहने से इस में और भी मजबूती आ जाती है।

सुश्रुत इसे कुष्ठनाशक और मेह, पांडु, कफ तथा मेद को दूर करने वाला बताते हैं। हिस्टीरिया में भोजपत्र की छाल का फाण्ट पिलाया जाता है। भोजपत्र की छाल का फाण्ट कृमिनाशक है। पुराने भोजवृक्षों पर एक काई (फंगस) लगती है, जिसे गढ़वाल-हिमालय क्षेत्रों के निवासी दवा-दारू में बरतते हैं। ●

झनकू जब कोई जासूसी उपन्यास पढ़ना चाहते हैं तो हमेशा बीच से ही शुरू करते हैं—ताकि न सिर्फ अंत का बल्कि शुरू का रहस्य भी बना रहे।

● गुणाकर मुले

अगर आप से शून्य का अर्थ पूछा जाये तो आप कहेंगे—कुछ नहीं । पर इस 'कुछ नहीं' को गणित से निकाल दें तो गणित कुछ भी नहीं रहेगा

शून्य और अनंत

यदि कोई बाजार में जा कर शून्य वस्तु माँगे तो लोग उसे पागल समझेंगे। शून्य का स्पष्ट अर्थ है—कुछ नहीं। पर इस 'कुछ नहीं' को गणित से निकाल दें तो गणित भी कुछ नहीं रह जायेगा ।

शून्य की तरह 'अनंत' शब्द का भी खूब इस्तेमाल होता है । गणितशास्त्र में तो अनंत की धारणा इतने अधिक महत्त्व की है कि इस ने पिछले सात-आठ दशकों में गणितशास्त्र में एक नये सशक्त उपांग को जन्म दिया है । फिर भी, सत्य यह है कि इस संसार में कोई भी चीज अनंत नहीं है । समस्त प्राणियों की संख्या अनंत नहीं है । सारे पेड़-पौधों की सारी पत्तियों की संख्या अनंत नहीं है । यहाँ तक कि ब्रह्मांड के अणु-परमाणुओं की संख्या भी अनंत नहीं है।

तो फिर अनंत क्या है ? शून्य क्या है ? शून्य तथा अनंत कोई भौतिक सत्ताएँ नहीं हैं । ये अमूर्त धारणाएँ हैं । पर मानवी बद्धि की ये दोनों धारणाएँ अब ज्ञान-विज्ञान में इतनी अधिक रूढ़ हो गयी हैं कि इन के बिना आज का विकसित विज्ञान पंगु बन जायेगा । पर एक समय ऐसा भी रहा है जब गणित में शून्य तथा अनंत के लिए कोई स्थान नहीं था । अतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में यदि इन दोनों धारणाओं को देखा जाये, तो इन का यथार्थ स्वरूप अधिक स्पष्ट होगा ।

आज का बालक जब अंक-लेखन सीखता है तो संभवतः शून्य के गोलाकार संकेत से ही शुरूआत करता है । पर लगभग दो हजार वर्ष पहले स्थिति एकदम भिन्न थी । तब शून्य के संकेत का कहीं कोई अस्तित्व नहीं था । सम्राट अशोक (२७२–२३२ ई०पू०) के शिलालेखों में कुछ अंक-संकेत मिलते हैं, पर इन में शून्य के लिए कोई संकेत नहीं है । असल में उस समय आज की दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति अस्तित्व में नहीं आयी थी ।

आज सारे संसार में शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का प्रयोग

होता है । शून्य पर आधारित इस अंक-पद्धति का आविष्कार भारत में ही हुआ है। वैदिक आर्यों को शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का ज्ञान नहीं था । प्राचीन मिस्र तथा सुमेर-बेबीलोन के गणितज्ञों को भी शून्य का ज्ञान नहीं था। यूक्लिद, आर्कमिडीज, पाइथागोरस - जैसे महान यूनानी गणितज्ञ भी शून्य की खोज नहीं कर सके । वस्तुतः ईसा की दसवीं शताब्दी तक यूरोप का सारा गणित शून्य-रहित था ।

हमारे देश में शून्य की धारणा तथा इस का संकेत ठीक किस समय अस्तित्व में आया, यह बताना कठिन है । ईसा के पहले की दो-तीन शताब्दियों से शून्य के अस्तित्व के साहित्यिक प्रमाण मिलने लग जाते हैं । पर उस समय के किसी भी अभिलेख में हमें शून्य संकेत देखने को नहीं मिलता । गणितशास्त्र से संबंधित जो 'भक्षाली हस्तलिपि' मिली है उस में शून्य के लिए बिंदु के आकार का एक चिह्न है। पर इस हस्तलिपि के काल के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है । कोई इसे तीसरी शताब्दी का मानता है, तो कोई छठी शताब्दी का ।

इतना निश्चित है कि केवल दस अंक-संकेतों के आधार पर जब स्थानमान अंक-पद्धति का आविष्कार हुआ, तभी शून्य अस्तित्व में आया। साहित्यिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि ईसा की पहली शताब्दी के पहले भारत में स्थानमान अंक-पद्धति अस्तित्व में आ चुकी थी । पर इस स्थानमान पद्धति का जो प्राचीनतम अभिलेख-प्रमाण मिलता है, वह ५९४ ई० का है। यह है संखेड़ा से प्राप्त गुर्जरों का एक दानपत्र । इस में चेदि-संवत ३४६ दाशमिक स्थानमान संकेतों में दिया गया है। इस दानपत्र के अंक-संकेतों में शून्य संकेत तो नहीं है, पर इतना निश्चित है कि इस समय तक शून्य-संकेत अवश्य अस्तित्व में आ चुका था ।

पुरालेखों में पहली बार शून्य-संकेत मिलता है आठवीं शताब्दी में । इस काल के जयवर्द्धन द्वितीय के राघोली के एक दानपत्र में संख्या ३० में शून्य के लिए एक लघुवृत्त देखने को मिलता है । इस के बाद बहुत-से अभिलेखों में शून्य के लिए बिंदु या वृत्त के संकेत मिलने लग जाते हैं। दसवीं शताब्दी के बाद हमारे देश में प्रायः सर्वत्र शून्ययुक्त अंक-पद्धति का व्यवहार देखने को मिलता है ।

सातवीं-आठवीं शताब्दी में भारतीय अंक-पद्धति अरब देशों में पहुँची । वहाँ से यह अंक-पद्धति स्पेन पहुँची । तब यूरोप के देशों में रोमन अंक-पद्धति का व्यवहार था । सर्व विदित है कि रोमन-अंक-पद्धति में शून्य नहीं है । इसलिए इस अंक-पद्धति में अनेक दिक्कतें थीं । यूरोप के गणितज्ञों को जब भारतीय शून्य तथा इस पर आधारित अंक-पद्धति का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने इसे बेहद पसंद किया । बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध इतालवी गणितज्ञ लियोनार्दो फिबोनकी ने भारतीय अंक-पद्धति पर एक पुस्तक लिखी और इस नयी

अंक-पद्धति का खूब प्रचार किया। फिर भी सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप के देशों में भारतीय अंक-पद्धति को पूरा समर्थन नहीं मिल पाया था। यूरोप के कुछ शहरों के बैंकों ने भारतीय अंकों के खिलाफ प्रचार किया। तर्क यह पेश किया गया कि ० को केवल एक-एक मात्रा जोड़ने से ६ तथा ९ अंक बन जाते हैं! पर गणितज्ञों का समर्थन प्राप्त होने से १७०० ई० के बाद यूरोप में सर्वत्र भारतीय अंक-पद्धति स्वीकार कर ली गयी।

आज सारे संसार में शून्य पर आधारित भारतीय अंक-पद्धति का व्यवहार होता है। पर इस का यह अर्थ नहीं है कि शून्य की खोज करने का श्रेय भारत को ही है। मध्य-अमरीका की मय या माया-सभ्यता वालों ने भी शून्य की खोज की थी। हमारी अंक-पद्धति दस पर इसलिए आधारित है कि दोनों हाथ की अँगुलियाँ दस हैं। हाथ की दस अँगुलियों के साथ पैरों की दस अँगुलियों को मिला कर मय-सभ्यता वालों ने २० पर आधारित एक स्वतंत्र अंक-पद्धति को जन्म दिया था। उन की इस अंक-पद्धति में शून्य की धारणा के लिए एक कौड़ीनुमा चिह्न था। १६वीं शताब्दी तक यह सभ्यता यूरोप-एशिया के संपर्क में नहीं आयी थी, इसलिए तब तक किसी को भी उन के इस शून्य-संकेत का ज्ञान न हो सका।

भारतीय गणितज्ञों ने कई प्रकार से शून्य की परिभाषा की है। पर इन की परिभाषाओं में जो बात एक-जैसी पायी जाती है, वह है--अ--अ = ०। भारतीय गणितज्ञों ने शून्य पर गहराई से विचार किया था, इसीलिए हमें गणित के प्राचीन ग्रंथों में शून्य परिकर्म का विवेचन भी देखने को मिलता है।

भारतीय गणितज्ञों ने शून्य की तरह अनंत पर भी गहराई से विचार किया था। भास्कराचार्य (११५० ई०) ने अनंत को 'ख-हर राशि' का नाम दिया। ख अर्थात शून्य जिस के हर स्थान में है वह है ख--हर राशि। इस ख--हर अर्थात अनंत राशि के बारे में भास्कर कहते हैं--

जिस प्रकार अनंत और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत-से भूतगणों का प्रवेश होने से अथवा सृष्टि के समय उन के निकल जाने से, कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस शून्य हर वाली (ख--हर) राशि में बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने अथवा घटाने से कोई परिवर्तन नहीं होता।

भास्कर के उपर्युक्त कथन का आशय यह है कि किसी भी संख्या को शून्य से भाग देने पर फल मिलता है अनंत। उसी प्रकार, अनंत के साथ चाहे कितनी भी बड़ी संख्या मिलायी जाये, लब्धि अनंत ही होगी।

प्रारंभिक गणित में आज भी भास्कर की इस व्याख्या का इस्तेमाल होता है, पर उच्च गणित के कई ऐसे उपांग हैं जिन में अनंत की यह धारणा बड़ी महत्त्व-पूर्ण है। अत: अनंत की धारणा को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करना जरूरी था। अनंत को यह सुदृढ़ आधार प्रदान किया

जरमन गणितज्ञ जार्ज कैंटर (१८४५–१९१८) ने । कैंटर ने अनंत के आधार पर गणितशास्त्र में एक नये उपांग की सृष्टि की ।

भौतिक जगत में कहीं भी अनंत के दर्शन भले ही न होते हों, पर विशुद्ध गणित में पग-पग पर हमें इस अनंत के दर्शन होते हैं । प्राकृतिक संख्याओं के क्रम १, २, ३, ४, . . . को ही लीजिये । क्या इस क्रम का कोई अंत है ? इस क्रम में बड़ी-से-बड़ी संख्या लीजिये । उस बड़ी-से-बड़ी संख्या से भी बड़ी संख्या प्राप्त करना हमेशा संभव है । उस बड़ी संख्या में १ जोड़ देने पर उस से बड़ी संख्या प्राप्त हो जायेगी । और यह सिलसिला चलता ही रहता है । अतः प्राकृतिक संख्याओं के इस क्रम का कोई अंत नहीं, यह अनंत है। प्राकृतिक संख्याओं का यह क्रम अनंत की धारणा का मूलाधार है ।

अब प्राकृतिक संख्याओं के इस क्रम में से केवल विषम संख्याओं का चुनाव कीजिये और इन विषम संख्याओं को प्राकृतिक संख्याओं के क्रम के नीचे निम्न प्रकार से रखते चलिये––

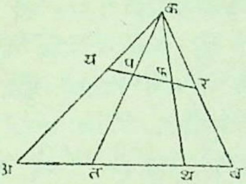
१	२	३	४	५	६	७	८
१	३	५	७	९	११	१३	१५

ऊपर प्राकृतिक संख्याओं के साथ विषम संख्याओं का एक-एक संबंध (एकैकी संबंध) स्थापित किया गया है। थोड़ा विचार करने पर स्पष्ट हो जायेगा कि इस संबंध का कोई अंत नहीं । प्राकृतिक संख्याओं के साथ विषम संख्याओं को एक-एक करके जोड़ने का यह सिलसिला अनंत तक चलता रह सकता है । पर ये विषम संख्याएँ क्या हैं ? ये विषम संख्याएँ प्राकृतिक संख्या-समूह में से ही चुनी हुई संख्याए हैं । अन्य शब्दों में कहें तो विषम संख्याओं का समुदाय प्राकृतिक संख्याओं के समुदाय का एक अंश है । लेकिन ऊपर के एकैकी संबंध से यह जाहिर है कि प्राकृतिक संख्याओं का समदाय अनंत है, तो विषम संख्याओं का समदाय भी अनंत है । चूंकि विषम संख्याएँ प्राकृतिक संख्या-समदाय का एक अंश है, इसलिए उपर्यक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि अनंत का एक अंश भी अनंत होता है । उपर्यक्त एकैकी संबंध में विषम संख्याओं के स्थान पर सम संख्याएँ या वर्ग-संख्याएँ ली जायें, तो परिणाम यही निकलेगा । अतः अनंत की नयी परिभाषा दी जा सकती है–**अनंत एक ऐसा समुदाय है जिस का एक अंश इस के पूर्ण के बराबर होता है ।**

यह हुई अनंत की अंकगणितीय व्याख्या। इसी प्रकार ज्यामिति के आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है कि अनंत का एक अंश इस के पूर्ण के बराबर होता है । एक सीधी रेखा खींचिये । कितने बिंदु हैं इस इस रेखा में ? अनंत बिंदु । रेखा यदि एक सेंटीमीटर भी लंबी हो, तब भी उस में अनंत बिंदु है। असल में, छोटी-से-छोटी रेखा में अनंत बिंदु खोजे जा सकते हैं । मान

लीजिये कि रेखा एक सेंटीमीटर लंबी है और इस के दो सिरों के बिंदु हैं अ तथा ब । तब अ और ब के बीच अनंत बिंदु रहेंगे । ० और १ के बीच १।२,१।३, १।४,१।५,१।६ के क्रम के अनंत बिंदु हैं ।

अब नीचे की आकृति देखिये--



अबक एक त्रिकोण है और अब रेखा इस त्रिकोण का आधार है । जाहिर है कि यर रेखा अब रेखा से छोटी है । पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि यर रेखा में में भी उतने ही बिंदु हैं जितने कि अब रेखा में । त्रिकोण के शिरोबिंदु क से अब रेखा पर कत तथा कथ की तरह की रेखाएँ खींचते चले जाइये । चूंकि, अब रेखा में अनंत बिंदु हैं, इसलिए इस प्रकार की अनंत रेखाएँ खींची जा सकती हैं । ये सारी रेखाएँ यर रेखा पर प तथा फ-जैसे बिंदुओं को काटेंगी । अर्थात, अब रेखा के प्रत्येक बिंदु के लिए यर रेखा पर भी बिंदु मिलते चले जायेंगे । अतः यह सिद्ध हो जाता है कि अनंत के संदर्भ में, छोटी रेखा भी बड़ी रेखा के बराबर होती है ।

रेखा एक आयाम वाली आकृति है । इसी प्रकार एक वर्ग-सेंटीमीटर दो आयामों वाली आकृति होगी और एक घन-सेंटीमीटर तीन आयामों वाली । आधुनिक गणित पर आधारित अनंत विवेचन से यह सिद्ध किया जा सकता है कि एक सेंटीमीटर लंबी रेखा में उतने ही बिंदु होते हैं जितने कि एक वर्ग-सेंटीमीटर क्षेत्र में या एक घन-सेंटीमीटर आयतन में हो सकते हैं । इस व्याख्या को आगे बढ़ा कर अनंत का आधुनिक गणित यह सिद्ध करता है कि एक सेंटीमीटर या इस से भी छोटी रेखा में उतने ही बिंदु हैं जितने कि तीन आयामों वाले समस्त ब्रह्मांड में हो सकते हैं ।

लेकिन अनंत के गणित की यह केवल शुरुआत ही है । अनंत का आगे का गणित अधिक कठिन है और इस की बहुत-सी बातें आज भी गणितज्ञों को उलझन में डाले हैं । आधुनिक गणित अनंत को भी कई क्रमों में बाँटता है, पर यह उच्च गणित का विषय है ।

तो यह है शून्य और अनंत का थोड़ा-सा परिचय । बोलचाल की भाषा में ये दोनों ही शब्द काफी अधिक इस्तेमाल होते हैं । पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि इन का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। ये शुद्ध अमूर्त धाराणाएँ हैं और आधुनिक गणित में इन दोनों धारणाओं के अपने विशेष अर्थ हैं । ●

रजनी: तुम ने रमा के मँगेतर को देखा ?
शीला: हाँ, बिलकुल पाँच पैसे वाला मोहर-लगा टिकट मालूम होता है। उसे तो चाहिए कि अपने माता-पिता से हर्जाना वसूल करे।

क़िस्सा एक पावरफुल

वैसे वे रहते सीलन-भरी वदबूदार गली में हैं, पहनते मार्कीन का कुरता-पायजामा हैं, खाते सीधी-साधी दाल-रोटी हैं, सिगरेट चार मीनार की पीते हैं, फिर भी कलमवालों के बीच उन्होंने अपने आप को चाहे-अनचाहे एक पावरफुल बुद्धिजीवी के रूप में मनवा लिया है । बुद्धिजीवी वे केवल इसीलिए नहीं हैं कि अपनी बुद्धि के बल पर उम्दा से उम्दा नाश्ता करते हैं, कड़क कॉफी पीते हैं, बल्कि इसलिए भी कि लोकप्रिय साहित्यिक प्रतिभाओं का नया रूप दर्शा कर उन्होंने नये सिलसिले से लिखने वालों को एक नया दिशाबोध दिया है ।

चरित्र-अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हें 'स्रोतजी' कहेंगे । उन का असली नाम ले कर बिला वजह बैठे-ठाले हम उन की ज्ञानधारा से वंचित रह कर, अपने को ठूँठ नहीं बनाना चाहते । मिलने को 'स्रोतजी' टूटी-टपकती टीन वाले होटलों में कुंडे-टूटी प्याली में गुड़ की चाय सुड़पते भी मिल जायेंगे । समाज-वाद उन की घुट्टी में मिला है । पर उन का क्रीड़ास्थल मुख्य रूप से नगर का प्रसिद्ध कॉफी-हाउस है । उन्हें पहचानने के लिए गुप्तचर कुत्तों को छोड़ने की कोई जरूरत नहीं । बेंत की कुरसी पर आराम से अधलेटा यदि कोई व्यक्ति धड़ल्ले से नयी दिशाएँ, कुंठा, फ्रस्ट्रेशन, त्रस्त, मुखौटा, संत्रास आदि शब्दों का प्रयोग कर रहा हो तो वह 'स्रोतजी' के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता।

उन से हमारी पहली भेंट एक मित्र के मित्र ने करायी थी । उस समय 'स्रोतजी' फुलस्पीड छूटे हुए थे और डा० नगेन्द्र के स्मृति -चित्रों के संकलन 'चेतना के बिम्ब' की बखिया उधेड़ रहे थे । बीच में क्षण भर रुके और सिगरेट सुलगायी । हम अभी तक एक कोने में ऐश-ट्रे-जैसे उपेक्षित पड़े थे । मित्र के मित्र ने मौका गनीमत जान कर हमें मिलवाया । सिर को हलका-सा झटका दे कर उन्होंने हमें स्वीकारा और इतना कह कर 'हाँ, हाँ, कादम्बिनी-वादम्बिनी में आप की कुछेक चीजें नजर से गुजरी हैं । ठीक ही हैं !', वे पुनः अपने टूटे विवाद की कड़ी जोड़ने लगे । भक्तगण सारा शरीर कान बनाये उन की ज्ञानगंगा से तर हो रहे थे । भक्तों में दो-तीन तो छात्र लगते थे और कुछेक दफ्तर के बाबुओं-जैसे थे । अलग बैठे हुंकारी भरते एक को मैं पहचानता था। ये सज्जन अमीनाबाद (लखनऊ) में

बुद्धिजीवी का

हास्य-व्यंग्य

फाउंटेनपेन बेचते हैं । चूँकि इन की भी जीविका 'लेखनी' द्वारा ही थी, सो वे बहस में बैठने के हकदार थे। 'स्रोतजी' अचानक इसी बीच हमारी तरफ क्षण भर को झपटे और बोले--"यह फलों-वलों के बारे में लिखना छोड़ दो ! साहित्य का अपमान होता है । लेकिन लिखते रहो... चल निकलोगे !" हम काठ हो गये ।

उस के बाद 'स्रोतजी' से काफी मिलना हुआ । धीरे-धीरे मैं ने उन के रग-रेशे छुए । सार्त्र, फ्रायड, कामू, काफ्का, पास्तरनेक वगैरा उन के नाखूनों में थे । बातचीत के दौरान कई मरतबा उन्होंने नयी नस्ल के यादव, कमलेश्वर, राकेश आदि को 'कल का छोकरा' कह दिया । नयों को हिप्नोटाइज करके मिनट भर में मुर्गा बना लेना 'स्रोतजी' खूब जानते हैं । बड़े-बड़े धाँसू साहित्यकारों से अपना लँगोटिया नाता जोड़ते हैं और खुद को बैठे-बैठे ही इतना ऊँचा उठा लेते हैं कि



भक्तों की गरदन दर्द करने लगती है। अपने घनिष्ठ संबंध का बखान वे कुछ इस लहजे में करते हैं—"चाय पीने का मजा तो भई जैनेन्द्र के यहाँ आता है!" या "इस बात को मैं ने गहराई से परखा है" या "फिर किसी हद तक अमृतलाल (नागर) ने!" या "भगवती बाबू को एक टुकड़ा सुझा दिया था एक दिन! वरना 'सीधी-सच्ची बातें' ठस्स हो कर रह जातीं!" बाहर का बखान वे कुछ इस रंग में सजाते हैं—"दिल्ली में था उन दिनों! एक बात पर राकेश को वह फटकारा कि छींकें आने लगीं उसे!" या—"चीज-पकौड़ा बंबई में धर्मवीर (भारती) के वहाँ खाया था। वैसी चीज यहाँ बनती ही नहीं!" भक्तों का तन-मन इन ऊँची एप्रोचों का बखान सुन कर हिलोरें लेने लगता है। अभी पिछले दिनों एक शाम सात प्याले कॉफी और तीन डबल दोसे नीचे उतार कर 'स्रोतजी' ने सिद्ध कर दिया कि वियतनाम-झगड़े की पेशीनगोई का संकेत एजरा पाउंड ने अपनी कविताओं में बरसों पहले ही दे दिया था। लोग समझे नहीं, वह दूसरी बात है। बीटिल कविता पर जब बहस चली तो उन्होंने बम छोड़ा—"क्या बीटिल-बीटिल लगा रखी है! हमारे यहाँ अरसा पहले 'मीर' और 'इंशा' ने काफी बीटिल कलाम लिखा था।" इलियट और इक़बाल को वे एक-दूसरे का अनुवाद मानते हैं। 'काफ्का' को वे बच्चों के कहानीकार का दर्जा देते हैं—"लो भला! 'मेरा-मारफोसिस' भी कोई कहानी है? आदमी रात भर में गोजर बन गया!"

इधर मैं ने बहुत बारीकी से 'स्रोतजी' में एक शोध की है। प्याला खाली होने या प्लेट साफ होने पर उन का चेतन मन घनघोर अदबी बसवारी के बावजूद बैरे के प्रति बहुत सजग रहता है। बिल लाते हुए बैरे के पास आने से पूर्व ही वे 'टेंपो' बहुत तेज कर देते हैं और पास खड़े बैरे के वजूद से अपने को 'डिटैच' कर लेते हैं। अब तक भक्तजनों में से कोई भुगतान कर चुका होता है। सब उठ कर बाहर पान खाने जाते हैं। तभी अचानक 'स्रोतजी' भुगतान करने वाले भक्त को मीठी झिड़की देते हैं—"भई, यह तुम ने बिल क्यों पे किया? हम लोगों के रहते यह अच्छा नहीं लगता।" और कुरते की जेब की ओर हाथ बढ़ायेंगे। यह पता लगने पर कि पैसे दिये जा चुके हैं, वे शिकायत करेंगे—"भई तुम लोग यह अच्छा नहीं करते! अभी नये लिखने वाले हो, पारिश्रमिक ही क्या मिलता होगा!"

'स्रोतजी' हर लिहाज से ग्रेट हैं। साहित्य-क्षेत्र में उन का लिखित योगदान सिफर ही है, पर मौखिक बहुत अधिक है। छपने के नाम पर उन की पिछली रचना दो महीने पहले 'संपादक के नाम' पत्रों में छपी थी। गोष्ठियों के ब्योरे में उन का नाम अकसर छपता रहता है। और क्या चाहिए? नये लिखने वालों को 'स्रोतजी'-जैसे पावरफुल बुद्धिजीवियों से बड़ी आशाएँ हैं। वे रहनुमा हैं, मशाल हैं! ●



वृंदावनलाल वर्मा

कुछ प्रसंग

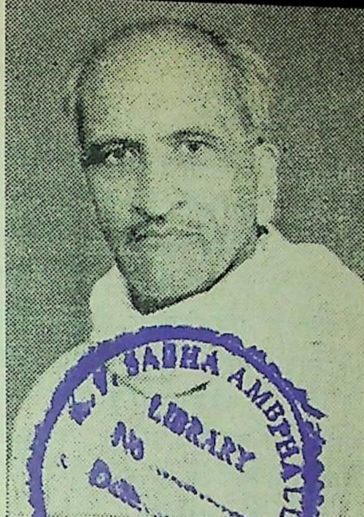
• आनंदनारायण शर्मा

झाँसी से लगभग चालीस मील दक्षिण मऊरानीपुर नाम का एक छोटा-सा कस्बा। चार साल के छोटे बालक को उस की माँ ने खाना खिला कर बिछावन पर सोने के लिए भेज दिया। खटिया के पास ताक पर दिया टिमटिमा रहा था। बालक ने पाटी पर चढ़ कर देखा कि ताक पर तांबे के दो मोटे बालासाही पैसे पड़े थे। उस ने पैसे चुपचाप उठा कर अपनी जेब के हवाले किये। रात में वह सपना देखता है कि माता-पिता के साथ मऊरानीपुर से झाँसी रेलगाड़ी से जा रहा है। झाँसी पहुँच कर माँ अचानक गायब हो जाती है। डब्बे से सामान उतारे जाने पर एक बोरी मिलती है, जिस में मृत माँ के शरीर के टुकड़े भरे हुए हैं। बालक नींद में 'मताई' (माँ के लिए संबोधन) कह चीख पड़ता है और बगल में सोयी माँ की छाती से लग कर बहुत देर तक सिसकता रहता है। सिसकते-सिसकते वह माँ को सारी बातें बता देता है और उस का शरीर छू कर प्रतिज्ञा करता है कि अब कभी चोरी नहीं करेगा; क्योंकि उस का विश्वास है कि उस ने पैसे चुराये थे, इसीलिए ऐसा

भक्तों की गरदन दर्द करने लगती है। अपने घनिष्ठ संबंध का बखान वे कुछ इस लहजे में करते हैं—"चाय पीने का मजा तो भई जैनेन्द्र के यहाँ आता है !" या "इस बात को मैं ने गहराई से परखा है" या "फिर किसी हद तक अमृतलाल (नागर) ने !" या "भगवती बाबू को एक टुकड़ा सुझा दिया था एक दिन ! वरना 'सीधी-सच्ची बातें' ठस्स हो कर रह जातीं !" बाहर का बखान वे कुछ इस रंग में सजाते हैं—"दिल्ली में था उन दिनों ! एक बात पर राकेश को वह फटकारा कि छींकें आने लगीं उसे !" या—"चीज-पकौड़ा बंबई में धर्मवीर (भारती) के वहाँ खाया था। वैसी चीज यहाँ बनती ही नहीं !" भक्तों का तन-मन इन ऊँची एप्रोचों का बखान सुन कर हिलोरें लेने लगता है। अभी पिछले दिनों एक शाम सात प्याले कॉफी और तीन डबल दोसे नीचे उतार कर 'स्रोतजी' ने सिद्ध कर दिया कि वियतनाम-झगड़े की पेशीनगोई का संकेत एजरा पाउंड ने अपनी कविताओं में बरसों पहले ही दे दिया था। लोग समझे नहीं, वह दूसरी बात है। बीटिल कविता पर जब बहस चली तो उन्होंने बम छोड़ा—"क्या बीटिल-बीटिल लगा रखी है ! हमारे यहाँ अरसा पहले 'मीर' और 'इंशा' ने काफी बीटिल कलाम लिखा था।" इलियट और इकबाल को वे एक-दूसरे का अनुवाद मानते हैं। 'काफ्का' को वे बच्चों के कहानीकार का दर्जा देते हैं—"लो भला ! 'मेरा-मारफोसिस' भी कोई कहानी है ? आदमी रात भर में गोजर बन गया !"

इधर मैं ने बहुत बारीकी से 'स्रोतजी' में एक शोध की है। प्याला खाली होने या प्लेट साफ होने पर उन का चेतन मन घनघोर अदबी बमबारी के बावजूद बैरे के प्रति बहुत सजग रहता है। बिल लाते हुए बैरे के पास आने से पूर्व ही वे 'टेंपो' बहुत तेज कर देते हैं और पास खड़े बैरे के वजूद से अपने को 'डिटैच' कर लेते हैं। अब तक भक्तजनों में से कोई भुगतान कर चुका होता है। सब उठ कर बाहर पान खाने जाते हैं। तभी अचानक 'स्रोतजी' भुगतान करने वाले भक्त को मीठी झिड़की देते हैं—"भई, यह तुम ने बिल क्यों पे किया ? हम लोगों के रहते यह अच्छा नहीं लगता।" और कुरते की जेब की ओर हाथ बढ़ायेंगे। यह पता लगने पर कि पैसे दिये जा चुके हैं, वे शिकायत करेंगे—"भई तुम लोग यह अच्छा नहीं करते ! अभी नये लिखने वाले हो, पारिश्रमिक ही क्या मिलता होगा !"

'स्रोतजी' हर लिहाज से ग्रेट हैं। साहित्य-क्षेत्र में उन का लिखित योगदान सिफर ही है, पर मौखिक बहुत अधिक है। छपने के नाम पर उन की पिछली रचना दो महीने पहले 'संपादक के नाम' पत्रों में छपी थी। गोष्ठियों के ब्योरे में उन का नाम अकसर छपता रहता है। और क्या चाहिए ? नये लिखने वालों को 'स्रोतजी'-जैसे पावरफुल बुद्धिजीवियों से बड़ी आशाएँ हैं। वे रहनुमा हैं, मशाल हैं ! ●



वृंदावनलाल वर्मा

कुछ प्रसंग

● आनंदनारायण शर्मा

झाँसी से लगभग चालीस मील दक्षिण मऊरानीपुर नाम का एक छोटा-सा कस्बा । चार साल के छोटे बालक को उस की माँ ने खाना खिला कर बिछावन पर सोने के लिए भेज दिया । खटिया के पास ताक पर दिया टिमटिमा रहा था । बालक ने पाटी पर चढ़ कर देखा कि ताक पर ताँबे के दो मोटे बालासाही पैसे पड़े थे । उस ने पैसे चुपचाप उठा कर अपनी जेब के हवाले किये । रात में वह सपना देखता है कि माता-पिता के साथ मऊरानीपुर से झाँसी रेलगाड़ी से जा रहा है । झाँसी पहुँच कर माँ अचानक गायब हो जाती है । डब्बे से सामान उतारे जाने पर एक बोरी मिलती है, जिस में मृत माँ के शरीर के टकड़े भरे हुए हैं । बालक नींद में 'मताई' (माँ के लिए संबोधन) कह चीख पड़ता है और बगल में सोयी माँ की छाती से लग कर बहुत देर तक सिसकता रहता है । सिसकते-सिसकते वह माँ को सारी बातें बता देता है और उस का शरीर छू कर प्रतिज्ञा करता है कि अब कभी चोरी नहीं करेगा; क्योंकि उस का विश्वास है कि उस ने पैसे चुराये थे, इसीलिए ऐसा

बुरा सपना देखा ।

ग्यारह साल का बालक अपने चाचा बिहारीलाल के पास ललितपुर पढ़ने के लिए भेज दिया गया है। उस के पाठ्यक्रम में ई. मार्सडन की लिखी 'भारत का इतिहास' नाम की पुस्तक भी है। उस में एक जगह लिखा है–"हिंदुस्तान गरम मुल्क है। गरमी की वजह से यहाँ के रहने वाले कमजोर हो गये हैं । इसीलिए सर्द मुल्क के लोगों ने यहाँ आ-आ कर हिंदुस्तानियों को हराया और सताया । . . .लेकिन अब हिंदुस्तान किसी से नहीं हारेगा, क्योंकि सर्द मुल्कवाले अँगरेज यहाँ आ गये हैं ।" लड़के को यह इबारत बुरी तरह खलती है और वह इसे पेंसिल से काट-कूट देता है । उस पर भी संतोष न होने पर वह पन्ना ही फाड़ देता है । चाचा बारह आने की किताब की यह दुर्गति देख कर झल्ला उठते हैं और मार-पीट तक बात बढ़ जाती है । वे बिगड़ कर पूछते हैं–"पन्ना क्यों फाड़ डाला ?"

बालक उत्तर देता है–"उस में गलत लिखा था ।"

चाचा का गुस्सा कम नहीं होता–"झूठ तो जरूर लिखा है, मगर सच कौन लिखेगा ?"

"मैं लिखूँगा," लड़का निधड़क जवाब देता है ।

छोटे बच्चे का महत्त्वाकांक्षापूर्ण उत्तर सुन कर चाचा चुप हो जाते हैं।

सन १९०७ ई.। लड़का अठारह वर्ष का हो गया है और उस ने प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल की परीक्षा पास की है । बंग-भंग हो चुका है और बंगाल से पंजाब तक सशस्त्र क्रांति की चिनगारियाँ छिटक चुकी हैं। वृंदावन का संपर्क भी कुछ क्रांतिकारियों से हो जाता है । अलीपुर बम-केस में कुछ लोग पकड़े गये हैं । मुखबिर नरेन्द्रनाथ गोसाईं को कन्हाईलाल दत्त द्वारा गोली मार दी जाती है । इसी घटना से प्रेरित हो कर वृंदावन ने 'सेनापति ऊदल' नामक एक नाटक लिखा है, जिस में उस ने दिखाया है कि देशद्रोहियों की हत्या पाप नहीं, पुण्य-कार्य है । नाटक प्रकाशित होने से पहले जब्त कर लिया जाता है और एक दिन झाँसी के तत्कालीन कलेक्टर सी. ए. सिल्बरेड के यहाँ लेखक की तलबी होती है । सिल्बरेड ने डाँट कर पूछा, "क्या तुम अँगरेजी जानते हो ?"

"जी हाँ, " संक्षिप्त-सा उत्तर था ।

"'सेनापति ऊदल' नाम की किताब तुम ने लिखी है ?"

"जी ।"

"जानते हो, इस कसूर के लिए तुम्हें जेल भेजा जा सकता है । मगर यह सजा मैं तुम्हें नहीं दूँगा, क्योंकि मैं तुम्हें शहीद बनने का सम्मान नहीं देना चाहता । हाँ, दोबारा कभी ऐसी किताब लिखी तो सीधे कालापानी भेज दिये जाओगे ।"

किशोर लेखक ने समझा सस्ते छूटे । लेकिन जब वह लौट कर घर पहुँचा तो

वहाँ पुलिस पहले से मौजूद थी। पुलिस की यह निगरानी पूरे दो साल चलती रही।

वृंदावनलाल वर्मा ने अपना छात्र-जीवन समाप्त कर गार्हस्थ्य में प्रवेश ही किया था। एक पंजाबी मित्र के यहाँ विवाह था। अतिथियों में अधिकतर पंजाबी ही थे। उन में बुंदेलखंड और वहाँ के निवासियों के जीवनक्रम के संबंध में चर्चा चल रही थी। एक ने कहा, "बड़ा कमबख्त इलाका है जी यह!"

"आदमी बड़े मरियल। हाँ, औरतें कुछ मजबूत मालूम होती हैं," दूसरे ने जोड़ा।

"यहाँ जंगल, पहाड़, झील और नदियों के सिवा और है ही क्या!" तीसरे ने बात आगे बढ़ायी।

इस तरह बुंदेलखंड के जीवन पर छींटा-कशी चलती रही और वर्माजी भीतर-ही-भीतर छिदते रहे। उसी समय उन्होंने निश्चय किया कि यदि लिखने की सहूलियत मिली तो सब से पहले इस सड़ियल इलाके बुंदेलखंड और इस के मरियल लोगों की ही कहानी लिखूँगा।

सन १९१९ ई.। वर्माजी वकालत शुरू कर चुके थे और एक मुकदमे की पैरवी के सिलसिले में झाँसी से माणिकपुर जा रहे थे। उन दिनों झाँसी का स्टेशन आज की तरह भव्य और गुलजार नहीं था। साँझ घिर आयी थी। स्टेशन पर मिट्टी के तेल के लैंप जला दिये गये थे। उसी समय एक तरुणी, जो वेशभूषा से बुंदेल-खंडी लगती थी, स्टेशन पर आयी। उस के पीछे एक गुंडा लगा था। मौका देख कर गुंडे ने तरुणी का हाथ पकड़ लिया। वर्माजी कुछ दूर थे। जब तक वे उस की सहायता को लपके तब तक जैसे पल भर में तरुणी ने गुंडे को जमीन पर गिरा दिया और उस की अच्छी तरह मरम्मत की। गुंडा बड़ी मुश्किल से जान छुड़ा-कर भाग सका। इस घटना ने वर्माजी को एक नयी दृष्टि दी। उन की आँखों के सामने बुंदेलखंड की नारी-जाति का पराक्रम कौंध गया। बाद में जब उन्होंने लेखनी उठायी तो बड़ी ही विश्वसनीयता और मार्मिकता से नारी के शौर्य और पराक्रम की गाथा लिखी।

वर्माजी का व्यक्तित्व 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क' का प्रखर उदाहरण था। अपनी जवानी में चार-पाँच सौ दंड और इतनी ही बैठकें निकाल लेना उन का प्रतिदिन का नियम था। व्यायाम का यह क्रम साठ वर्षों की अवस्था तक चलता रहा। भोजन में भी वे विशिष्टाद्वैतवादी थे। घटना १९२२ ई. की है। एक मुकदमे के सिलसिले में उन्हें देवगढ़ के जैनतीर्थ का निरीक्षण करना था। वहाँ के मुनीम को जैन-समाज की ओर से वर्माजी के समुचित स्वागत-सत्कार का आदेश दे दिया गया था। वर्माजी के पहुँचने पर मुनीम ने भोजन के संबंध में उन से पूछा। वर्माजी ने कहा, "झंझट की जरूरत

नहीं। दूध पी लूँगा ।"

"सेर भर लाऊँ ?" मुनीम ने पूछा।

"ज्यादा न मिले तो इतने से भी काम चल जायेगा।"

"कितना ज्यादा ?" मुनीम ने जानना चाहा।

"क्या कहूँ, यही पाँच-छह सेर ।"

मुनीम एक छोटे घड़े में पाँच सेर दूध और पाव भर जलेबी ले आया। वर्माजी देखते-देखते सारी सामग्री उदरस्थ कर गये। जब वे चलने लगे तो मुनीम ने गिड़गिड़ा कर कहा, "हुजूर, रसीद बना दीजिये कि आप ने इतना सामान मँगवाया था, नहीं तो लोग मुझ पर शक करेंगे कि मैं ने आप के नाम पर पैसे दाब लिये।"

जिला-परिषद के अध्यक्ष की हैसियत से एक बार उन्हें छपरट गाँव जाना पड़ा। साथ में परिषद के सचिव रायसाहब जगदीशसहाय भी थे। गाँव पहुँच कर सहायजी ने पूछा, "वर्माजी, क्या लेंगे ?"

"जो मिल जाये," वर्माजी ने अन्यमनस्क-सा उतर दिया।

सहाय साहब वर्माजी की भोजनवीरता से कुछ-कुछ परिचित थे। वे गाँव से दो सेर दूध और बयालीस अंडे ले आये। वर्माजी ने अंडों को फोड़ कर दूध में घोला और एक ही साँस में लोटा खाली !

सन १९६७ में वृंदावनलाल वर्मा को 'सोवियत भूमि' का पुरस्कार मिला। उस के साथ पंद्रह दिन की रूस-यात्रा की व्यवस्था भी थी। उनासी वर्ष के वर्माजी जब बिना किसी निजी सहायक के यात्रा के लिए तैयार हो कर पालम हवाई अड्डे पर पहुँचे तो उन का साहस देख न केवल उन के मित्र, बल्कि रूसी दूतावास के अधिकारी भी आश्चर्यचकित थे। उन्होंने अकेले ही यह सारी यात्रा निर्विघ्न संपन्न की।

विगत २३ फरवरी, ६९ को प्रातःकाल इस कृती कथाकार ने अपनी अंतिम साँसें लीं। उन का निजी जीवन भी एक रोचक ऐतिहासिक उपन्यास से कम न था।

रामकृष्ण परमहंस के बचपन की बात है। उन के गाँव में एक व्यक्ति के परिवार की महिलाओं को सख्त परदा करना पड़ता था। उसे यह घमंड था कि मेरे परिवार की महिलाओं को कोई देख ही नहीं सकता। अतः उस व्यक्ति के अनुचित गर्व का खंडन करने के लिए रामकृष्ण ने एक साड़ी पहनी और अपने को सूत बेचने वाली स्त्री बता कर उस व्यक्ति के साथ उस के घर में प्रवेश किया। काफी देर तक वे वहीं रहे।

रामकृष्ण को खोजते हुए उन के मँझले भाई रामेश्वर उधर आ निकले और जोर से पुकारने लगे।

पुकार सुनते ही रामकृष्ण ने कहा, "आया भैया।" इस पर उस व्यक्ति के परिवार वाले आश्चर्यचकित रह गये।

एक और हड़प्पा

● विष्णु भटनागर

उज्जैन के निकट कायथा की खुदाई में हड़प्पा-कालीन सभ्यता के चिह्न मिले हैं। चित्र में कुछ वृषभ-मूर्तियों के अवशेष हैं, जो ३८०० वर्ष पुराने हैं



उज्जयिनी का भू-क्षेत्र अति प्राचीन तथा सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्राचीनतम ग्रंथों में भी इस का उल्लेख है। ख्यातिप्राप्त पुरातत्त्वविद श्री वाकणकर ने गत दो वर्षों में उज्जयिनी के विस्तृत भू-भाग का उत्खनन किया है। उन के द्वारा किया गया प्रसिद्ध कायथा-उत्खनन बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन का कथन है कि यह बात सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि हड़प्पा-सभ्यता 'नागरी' है। सभ्यतांतर्गत मूल नगर के आसपास फैले निम्नस्तर के सांस्कृतिक जीवन का भी उस में समावेश है। इस का कालमान १९५० ई० पूर्व से २१०० ई० पूर्व है।

कायथा की सभ्यता हड़प्पा के चरमोत्कर्ष के समकालीन है। उज्जैन से बारह मील दूर कायथा ग्राम के उत्खनन से अनेक महत्त्वपूर्ण बात सामने आयी हैं। प्रथम भाग, जिस में सुंदर गृहरचना के सूत्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हुए हैं, कुषाण-शुंगकालीन है। संभवत: यह लकड़ी द्वारा निर्मित था। वहीं एक पक्की नाली (गटर) प्राप्त हुई है। एक कक्ष से प्राप्त सिल-बट्टे भंडारगृह तथा रसोईघर का अस्तित्व

प्रकट करते हैं ।

शुंग एवं मौर्यकालीन मकानों में नीले काँच के त्राटक-चक्र, हाथी-दाँत की कुप्पियाँ, सुंदर मणियों तथा काले राजित पात्रों के अतिरिक्त भूरे पात्र भी उपलब्ध हुए हैं । भूरे पात्रों का काल, कार्बन-१४ के आधार पर ४७५ से १०० ई० पूर्व तक तथा चित्रित ताम्र-पात्र का काल ३३०० ई० पूर्व से ३६०० ई० पू० तक है ।

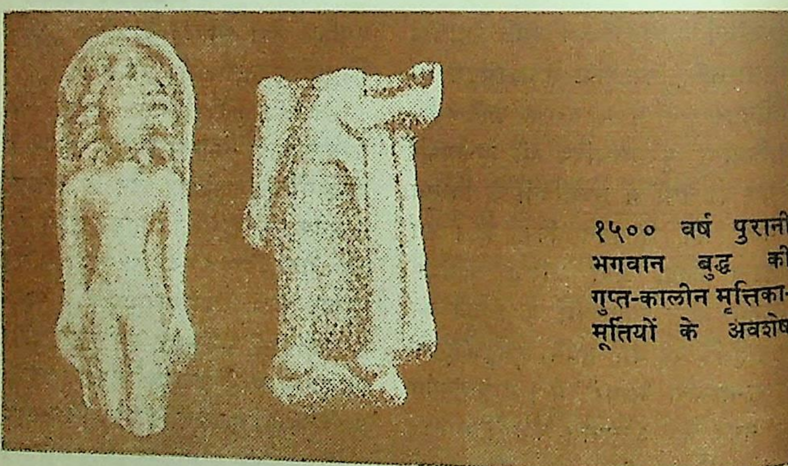
कृषि के प्रमाणस्वरूप यहाँ से ३,६०० वर्ष पूर्व का जला हुआ गेहूँ भी पर्याप्त मात्रा में मिला है । यहाँ के पात्रों पर सुंदर रंगों से चित्रित वृषभ, मृग, श्वान, उड़ते पक्षी आदि कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

यहाँ आहाड़-सभ्यता के अवशेष भी मिले हैं। उस काल में मातृदेव की उपासना हुआ करती थी । मातृदेवता के अतिरिक्त बड़ी खंदार का वृषभ भी पूजनीय था ।

प्रख्यात पुरातत्त्वविद श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर, जिन के तत्त्वावधान में कायथा-उत्खनन हुआ है, 'हरिभाऊ' के नाम से भी जाने जाते हैं। १९५३ में आप ने उज्जैन में चित्रकला महाविद्यालय की स्थापना की, जहाँ से कला, संस्कृति एवं पुरातत्त्व-संबंधी खोजें हुई हैं।

१९६१ में प्रागैतिहासिक एवं पुरातात्त्विक खोजों के सिलसिले में आप इंगलैंड, फ्रांस, स्पेन, इटली, यूनान, मिस्र आदि गये। दो वर्ष तक आप ने अनेक गुफाओं का अवलोकन किया तथा शिलालेखों आदि

पर्याप्त जलवृष्टि एवं कृषि-क्षेत्र की प्रगति का अनुमान यहाँ से प्राप्त चावल से लग जाता है, जो १६०० ई० पू० से १९५० ई० पू०



१५०० वर्ष पुरानी भगवान बुद्ध की गुप्त-कालीन मृत्तिका-मूर्तियों के अवशेष

की खोज की। मालवा के अतिरिक्त भारत की छह सौ से अधिक चित्रित गुफाओं का आप ने अध्ययन किया। भारतीय प्रागैतिहासिक चित्र-कला पर आप के लेखों का प्रकाशन देश-विदेश की पत्रिकाओं में हुआ है।

१९६६ में अमरीका ने आप को कोलंबस-पूर्व अवशेषों के गवेषणार्थ आमंत्रित किया था। वहाँ आप ने भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला तथा कायथा - उत्खनन पर भी व्याख्यान दिये।

आप अनेक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के ज्ञाता हैं। इस समय



विक्रम विश्वविद्यालय में पुरातत्त्व -विभाग के अध्यक्ष हैं।

तक का है।

भौमितिक आलेखनों में बादामी रंग पर लाल तथा काले रंग का चित्रण किया गया है और अक्षर भी खुदे हुए हैं।

एक जगह से प्राप्त बहुमूल्य लोटों में स्टीएटाइट (सेलखड़ी) और अकीक की १६० तथा १८० मणियों की मालाएँ संपत्ति एवं ऐश्वर्य की सूचक हैं। अन्य वस्तुओं में १६ कांस्य-कंकण भी मिले हैं। यह सभी सामग्री हड़प्पा की समकालीन-सभ्यता का बोध कराती है। पकी हुई मिट्टी की मूर्तियाँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई हैं, जिन में वृषभाकार अधिक हैं। ऐसी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिन से पुरातन भारतीय सभ्यताओं की सूक्ष्म जानकारी मिल सकती है।

अस्तित्व

बर्फ के
टुकड़ों की भाँति
बंद हो गया हूँ मैं
स्वतंत्रता के
थरमस में
शून्य के बीचोंबीच
रक्षित है
मेरा जीवित रहने का
अधिकार
लाचार

—मुकुट सक्सेना

मैं हूँ जब तक...

लंबी बीमारी के बाद पूरी तरह आराम कर लेने के बाद जगदीश पहली बार बाहर आया था। उस ने अनेक बार बहुत-से व्यक्तियोंको एक ही बात कहते हुए सुना था—'जब तक तुम हो तभी तक है, बाद में तो होने से रहा!' क्या होने से रहा और क्यों होने से रहा, इस बात पर कोई विचार नहीं करता था, परंतु कहते सभी यही थे।

पड़ोस में एक बुढ़िया रहती थी। उसे जब कोई लिवाने के लिए आता और उसे ले कर जाता तो यही बात कहता—'तुम हो तब तक ही है, बाद में तो होने से रहा!'

और भी बहुत-से व्यक्ति जगदीश से अपना काम कराने के लिए यही बात कहते। इस प्रकार इस वाक्य का पूरा-पूरा असर उस के जीवन पर पड़ गया था।

वह भी इस बात पर विश्वास करने लगा था कि वह है तब तक ही यह है, पीछे तो होने से रहा।

इन तीन महीनों के दौरान जो तीन



चीजें जहाँ रहती थीं, वे तीनों वहाँ नहीं थीं। उस की दृष्टि बाहर गयी, वहाँ पर भी वही हालत थी। जो व्यवस्था उस ने की थी वह सब की सब उलट-पलट गयी थी। एक कुरसी, जो बाहर आने वालों के बैठने के लिए वहाँ रहती थी, वहाँ नहीं थी। उस ने अपने लड़के नटवर को बुलाया और पूछा, "नटवर, जो कुरसी मैं यहाँ रखता था वह कहाँ गयी ?"

"वह तो उठा दी गयी। बेकार हो गयी

गुजराती कहानी

सारा संसार चल रहा था। सभी अपनी-अपनी धुन में लगे थे। हँसी-खुशी, चिंता, घबराहट, उतावली और व्यग्रता भी थी . . .

● धूमकेतु

थी न, इसलिए हटा दी।"

'अरे ! लेकिन वह कुरसी . . . कैसे..." इस के बाद वह कुछ बोला नहीं, लेकिन उस का मन जोर-जोर से बोलता रहा कि—'मैं हूँ जब तक ही है, मेरे पीछे तो . . .'

इतने में तीन पिल्ले खेलते हुए आये। उस ने देखा कि पिल्ले तीन ही हैं, लेकिन जब वह बीमार पड़ा था तब तो चार थे। पिल्लों की माँ मर गयी थी। उस ने ही उन को दूध पिला-पिला कर बड़ा किया था।

उस ने फिर नटवर से पूछा, "कुरसी गयी तो गयी, लेकिन एक पिल्ले को कौन ले गया ? चार थे न !"

"चार थे, लेकिन एक पिल्ला पड़ोसी की कुतिया के साथ चला गया था, फिर पता नहीं कहाँ चला गया ?"

"ठीक है जा, मै हूँ . . . जब तक ही है . . ." और आगे का वाक्य वह मन में ही कहता रहा।

"नटवर, मेरा कोट और बेंत लाओ, मुझे बाहर जाना है।"

जगदीश कोट पहन कर बेंत ले बाहर घूमने निकला।

उसे आज की सुबह सुंदर लग रही थी, घूमने में आनंद आ रहा था।

वह बाहर निकला। एक जगह फुटपाथ पर मोची बैठा-बैठा पुराने जूते सी रहा था। उस के पैर उधर ही बढ़ गये।

लेकिन जा कर देखा तो जो मोची वहाँ बैठा था, यह वह नहीं था जिसे वह पहचानता था। कोई दूसरा ही बैठा था। जगह वही थी, लेकिन आदमी बदल गया था। जगदीश ने उस से पूछा, "यहाँ पर जो बैठता था सबजी भाई, वह अब कहाँ बैठता है ?"

मोची ने जूता सीते-सीते बिना निगाह ऊपर उठाये ही कहा, "उसे भगवान ने बुला लिया भाई ! अहंकार किसी का रहा है क्या ?"

"भगवान ने बुला लिया ?"

"सिपाही को पैसे दे कर वह किसी दूसरे को आसपास बैठने ही नहीं देता था और मन में बड़ा अहंकार रखता था कि मैं हूँ तब तक तो कोई दूसरा आ कर यहाँ

बैठने वाला नहीं, लेकिन अब देखो, आज कितने लोग बैठे हैं! इसीलिए सबजी भाई को भगवान ने बुला लिया।"

जगदीश आगे बढ़ा। उसे सब नया-नया ही दिखायी दिया। बाजार में काफी भीड़-भाड़ थी। सभी लोग जैसे उतावली में थे। उस ने देखा कि बाजार में से अनेक पुराने चेहरे गायब हो गये थे।

वह तीन महीने पीछे आज पहली बार घूमने निकला था, अपने सभी जान-पहचान-वालों से मिलने-जलने के लिए। लेकिन जाने-पहचाने बहुत-से चेहरे गायब थे।

उस की जानी-पहचानी एक दुकान थी। उस दुकानदार की एक विशेषता यह थी कि वह अपनी दुकान में तीन घड़ियाँ रखता था और तीनों का समय अलग-अलग रखता था। उसे इस तरह अपने आदमियों से पाव या आध घंटे अधिक काम लेने में आत्मसंतोष मिलता था। जगदीश उस से मिलना चाहता था। वह दुकान के पास जा कर खड़ा रहा। दुकान में भीड़भाड़ तो उतनी ही थी, लेकिन वह दुकानदार वहाँ नहीं था। उस ने अंदर देखा—एक छोटा-सा लड़का बैठा हुआ था और उस के सामने बैठा एक अधेड़ उम्र का आदमी हिसाब मिला रहा था।

जगदीश ने तीनों घड़ियों को देखने के लिए अंदर की तरफ निगाह डाली कि घड़ी हैं या नहीं, लेकिन देखा कि घड़ियाँ वहाँ नहीं थीं।

उस ने पूछा, "अनूप भाई क्या घर पर हैं? कैसे नहीं आये? तबीयत तो ठीक है न? मैं उन से मिलने आया हूँ।"

ग्राहकों की भीड़भाड़ को सँभालते हुए आदमी ने उतावली से जबाव दिया, "अनूप भाई को तो गये ढाई महीना होने आया।"

"कहाँ गये हैं यात्रा करने?"

"नहीं, नहीं, वे तो बड़ी यात्रा पर गये।"

जवाब सुन कर तो वह धक्क से रह गया। उन के बिना यह दुकान एक दिन भी नहीं चल सकती, ऐसा अनूप भाई ने उस से अनेक बार कहा था। लेकिन उन के बिना यह दुकान खूब चल रही है। वैसी ही ग्राहकों की भीड़भाड़ है, वैसी ही बिक्री। केवल अनूप भाई वहाँ नहीं हैं, बाकी सब कुछ वैसा ही है।

'जब हम न रहेंगे तो यहाँ कोई नहीं रहेगा', यह बात उग्र असंतोष के साथ कहने वाले अनूप भाई उस की आँखों के सामने उभर आये। वह विचार करते-करते वहाँ से आगे बढ़ गया।

उस ने अपनी घड़ी में देखा—नौ बज कर पैंतीस। अचानक उस ने एक बात सूझी। इस बात को तो ठीक एक वर्ष बीत गया था, लेकिन अभी वह बात याद आ गयी। नौ बज कर पैंतीस। उस के पैर सामने एक बस-स्टैंड की ओर बढ़ गये।

बस-स्टैंड पर निरंतर नौ बज कर पैंतीस पर, बिलकुल ठीक घड़ी की तरह चलने वाली, अदाओं वाली युवती उसे याद हो आयी। उस की अदाएँ देखने के लिए आठ-दस युवक ठीक नौ बज कर पैंतीस पर

वहाँ आ जाते थे, यह भी उसे याद हो आया। देखने आने वाले उन युवकों की कोई अगली बस चूक गयी होती थी तो कोई पिछली बस में जाना अधिक उचित समझता था, तो कोई युवक उस युवती को ठीक नौ बज कर पैंतीस का समय ही मानता था।

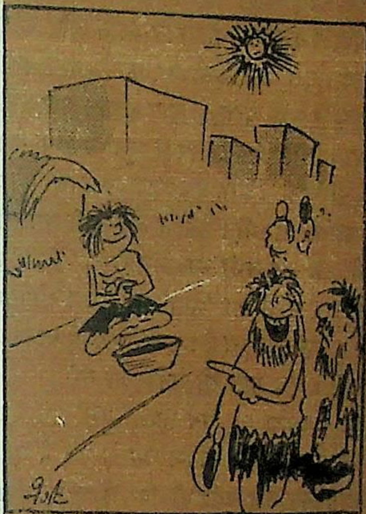
लेकिन आज उस ने उस अदाओं वाली युवती से अदाओं को एक बात कहते सुना कि जब तक हम हैं तब तक सभी आने वाले हैं अन्यथा फिर कोई नहीं।

वही पुरानी बात सुन कर उस के पैर अचानक ही नौ बज कर पैंतीस का समय देखने के लिए उस बस-स्टैंड पर जा कर खड़े हो गये।

वह वहाँ खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद वहाँ एक औरत आयी। वह तो उस की ओर देखता ही रह गया!

वह उस के पास गया और उसे पहचान गया। वह तो वही अदाओं वाली युवती थी, जिस की अदाएँ एक समय मेले लगाया करती थीं। लेकिन आज तो ऐसा लग रहा था मानो कोई विशाल महल खँडहर हो जाये और उस के बीते वैभवशाली जीवन की छाया भी न दिखायी दे! अदाओं से भरा वह शरीर आज तो केवल हाड़-पिंजर दिखायी दे रहा था!

इतने में एक दूसरी सुंदर, आकर्षक, मानो समुद्र-मंथन से निकली मोहिनी-जैसी युवती दिखायी पड़ी। उस की भी वही अदाएँ, वही आकर्षण और वही रूप! और जाने-अजाने हवा में वही अपरिचित आवाज कि 'मैं हूँ जब तक...'



"यह मेरा लड़का है। मैं ने कहा था न कि मैं इस नुक्कड़ पर अपनी कंपनी की एक ब्रांच खोल रहा हूँ!"

तैर गयी।

आज वह हर एक चेहरे पर लिखा एक ही वाक्य देखता—'मैं हूँ जब तक...'

उस ने बस-स्टैंड से विदा ली। उस ने अपनी जानी-पहचानी सभी दुकानें देखीं, स्टोर और आफिस देखे। वह बैंकों में भी गया। सभी जगह वही, सब कुछ वैसे ही, चल रहा था। बहुत-सी जगह उसे नये चेहरे ही दिखायी दिये। तीन महीने में बहुत-सी हेरफेर हो गयी थी। उस ने सभी जगह एक बात देखी कि किसी के जाने की,

किसी के होने न होने की लेशमात्र किसी को कोई खबर नहीं। कोंपलें कब खिलीं और कब झर गयीं, कौन आया और कौन गया, इस का किसी पर कोई असर नहीं उस ने नहीं देखा। सारा संसार चल रहा था। सभी अपनी-अपनी धुन में लगे थे। हंसी-खुशी, चिंता, घबराहट, उतावली और व्यग्रता भी थी। लेकिन जैसे सभी समझते थे कि इन सभी का भार ले कर ही इस संसार में दौड़ना होगा और संसार दौड़ता है। जीवन चलता है। कहीं भी कोई रुकावट नहीं। एक गया तो अनेक आ गये।

जगदीश यह सब देखते हुए अब घर की तरफ मुड़ा, लेकिन उस के मन में एक बात घर कर गयी थी कि 'मैं नहीं रहूँगा तो...' इस बात का कोई अर्थ ही नहीं है।

उस ने जो-जो अपने परिचित देखे थे उन में बहुत-से अदृश्य हो गये थे, लेकिन कोई असर नहीं था, गाड़ी वैसे ही चल रही थी।

जब वह घर आया तब उस को अपनी बीमारी से पहले का कुत्ते का वह पिल्ला याद आया जिसे उस ने दूध पिला-पिला कर पाला-पोसा था। उस की माँ मोटर से कुचल कर मर गयी थी और उस के बाद उस के पिल्लों को उस ने संभाल लिया था।

जब वह बीमार पड़ा था तब भी उस ने उन पिल्लों की चिंता की थी। तब सभी ने यही कहा था कि वे उस की देखभाल कर रहे हैं। बीमारी के बाद पता चला कि चार में से एक गायब हो गया।

अब बाकी तीनों को सँभाल लेने का उस ने निर्णय किया और वह घर लौट आया।

लेकिन जब घर आ कर देखा तो वह तीनों पिल्ले भी गायब हो चुके थे।

उस ने नटवर को बुला कर पूछा, "नटवर, पिल्ले कहाँ गये?"

नटवर ने जवाब दिया, "तीनों पिल्ले एक दूसरी कुतिया के पिल्ले के साथ चले गये। उन का दूध यह रखा हुआ है।"

उस ने कुत्तों को दूध दिखा कर बुलाया, लेकिन नयी हवा फैल गयी थी न, इसलिए उन्होंने उधर देखा भी नहीं। काफी इंतजार के बाद वह उठ खड़ा हुआ और वही कहा कि 'मैं हूँ जब तक...' वाक्य 'मैं नहीं रहूँगा तब भी...' में बदल गया।

उस ने चारों तरफ नजर दौड़ायी। यदि वह बीमार न पड़ता तो यह सब क्यों होता—वह इसी चिंता में पड़ गया। उस ने देखा कि आज पवन वैसे ही बह रहा है, सूर्य वैसे ही चमक रहा है, आदमी वैसे ही जी रहे हैं, कहीं कोई व्यवधान नहीं।

वह विचार कर ही रहा था, इतने में हवा के एक झोंके से उस के पैर के पास से थोड़ी धूल उड़ गयी और वह उसे उड़ती हुई देखता रहा।

—अनु॰ जगदीश चतुर्वेदी

"बेचारी कमला रमेश से विवाह कर मुसीबत में पड़ गयी।"
"क्यों, क्या रमेश गरीब है?"
"नहीं, रमेश तो खूब पैसेवाला है। दिक्कत यह है कि कमला समझती थी कि वह रमण्टिक स्वभाव का है, पर है वह [illegible]।"

● उपेन्द्रराय जयचंदभाई सांडेसरा

महाभारत के प्रथम श्लोक में 'जय' शब्द का अर्थ

भांडारकर प्राच्य शोध-संस्थान, पूना से प्रकाशित महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण के प्रारंभिक श्लोक का पाठ इस प्रकार है--

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

अर्थात--नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर और देवी सरस्वती को नमस्कार करके 'जय' (महाभारत जिस में मन्यु पर धर्म की विजय वर्णित है) का प्रारंभ करना चाहिए (अर्थात, महाभारत का वाचन या पाठ आरंभ करना चाहिए।)

'धर्म' का अर्थ है पुण्य, नैतिकता, शुभ कर्म, कर्त्तव्य, न्याय, सदाचार आदि और 'मन्यु' का आशय है क्रोध, रोष, अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या तथा उस के परिणामस्वरूप होने वाले दुख, शोक, व्यथा और दैन्य।

स्वयं महाभारत में कहा गया है--

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुश्शासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणश्च।।

--आदिपर्व, १।६५;६६

अर्थात--दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्ष है, कर्ण उस का तना, शकुनि उस की शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-फूल है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही उस के मूल हैं। युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष, अर्जुन उस का तना, भीमसेन उस की शाखा और माद्रीपुत्र नकुल एवं सहदेव उस के समृद्ध फल-फूल हैं। कृष्ण, वेद और ब्राह्मण उस के मूल हैं।

नमस्क्रिया विषयक उपर्युक्त श्लोक महाभारत के दाक्षिणात्य संस्करण में उपलब्ध नहीं होता। अतः अनुमान है कि

किसी के होने न होने की लेशमात्र किसी को कोई खबर नहीं। कोपलें कब खिलीं और कब झर गयीं, कौन आया और कौन गया, इस का किसी पर कोई असर कहीं उस ने नहीं देखा। सार संसार चल रहा था। सभी अपनी-अपनी धुन में लगे थे। हँसी-खुशी, चिंता, घबराहट, उतावली और व्यग्रता भी थी। लेकिन जैसे सभी समझते थे कि इन सभी का भार ले कर ही इस संसार में दौड़ना होगा और संसार दौड़ता है। जीवन बहता है। कहीं भी कोई रुकावट नहीं। एक गया तो अनेक आ गये।

जगदीश यह सब देखते हुए अब घर की तरफ मुड़ा, लेकिन उस के मन में एक बात घर कर गयी थी कि 'मैं नहीं रहूँगा तो . . ' इस बात का कोई अर्थ ही नहीं है।

उस ने जो-जो अपने परिचित देखे थे उन में बहुत-से अदृश्य हो गये थे, लेकिन कोई असर नहीं था, गाड़ी वैसे ही चल रही थी।

जब वह घर आया तब उस को अपनी बीमारी से पहले का कुत्ते का वह पिल्ला याद आया जिसे उस ने दूध पिला-पिला कर पाला-पोसा था। उस की माँ मोटर से कुचल कर मर गयी थी और उस के बाद उस के पिल्लों को उस ने सँभाल लिया था।

जब वह बीमार पड़ा था तब भी उस ने उन पिल्लों की चिंता की थी। तब सभी ने यही कहा था कि वे उन की देखभाल कर रहे हैं। बीमारी के बाद पता चला कि चार में से एक गायब हो गया।

अब बाकी तीनों को सँभाल लेने का उस ने निर्णय किया और वह घर लौट आया।

लेकिन जब घर आ कर देखा तो वह तीनों पिल्ले भी गायब हो चुके थे।

उस ने नटवर को बला कर पूछा, "नटवर, पिल्ले कहाँ गये ?"

नटवर ने जवाब दिया, "तीनों पिल्ले एक दूसरी कुतिया के पिल्ले के साथ चले गये। उन का दूध यह रखा हुआ है।"

उस ने कुत्तों को दूध दिखा कर बलाया, लेकिन नयी हवा फैल गयी थी न, इसलिए उन्होंने उधर देखा भी नहीं। काफी इंतजार के बाद वह उठ खड़ा हुआ और यही कहा कि 'मैं हूँ जब तक . . .' वाक्य 'मैं नहीं रहूँगा तब भी . . .' में बदल गया।

उस ने चारों तरफ नजर दौड़ायी। यदि वह बीमार न पड़ता तो यह सब क्यों होता--वह इसी चिंता में पड़ गया। उस ने देखा कि आज पवन वैसे ही बह रहा है, सूर्य वैसे ही चमक रहा है, आदमी वैसे ही जी रहे हैं, कहीं कोई व्यवधान नहीं।

वह विचार कर ही रहा था, इतने में हवा के एक झोंके से उस के पैर के पास से थोड़ी धूल उड़ गयी और वह उसे उड़ती हुई देखता रहा।

--अनु० जगदीश चंद्रिकेश

"बेचारी कमला रवींद्र से विवाह कर मुसीबत में पड़ गयी।"
"क्यों, क्या रवींद्र गरीब है ?"
"नहीं, रवींद्र तो खूब पैसेवाला है। दिक्कत यह है कि कमला समझती थी कि वह पचपन साल का है, पर है वह पैंतीस साल का।"

उपेन्द्रराय जयचंदभाई सांडेसरा

महाभारत के प्रथम श्लोक में 'जय' शब्द का अर्थ

भांडारकर प्राच्य शोध-संस्थान, पूना से प्रकाशित महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण के प्रारंभिक श्लोक का पाठ इस प्रकार है--

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

अर्थात--नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर और देवी सरस्वती को नमस्कार करके 'जय' (महाभारत जिस में मन्यु पर धर्म की विजय वर्णित है) का प्रारंभ करना चाहिए (अर्थात, महाभारत का वाचन या पाठ आरंभ करना चाहिए।)

'धर्म' का अर्थ है पुण्य, नैतिकता, शुभ कर्म, कर्त्तव्य, न्याय, सदाचार आदि और 'मन्यु' का आशय है क्रोध, रोष, अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या तथा उस के परिणामस्वरूप होने वाले दुख , शोक, व्यथा और दैन्य।

स्वयं महाभारत में कहा गया है--

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः
शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुश्शासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा
धृतराष्ट्रोऽमनीषी ।।
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो
भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो
ब्रह्म च ब्राह्मणश्च।।

--आदिपर्व, १।६५;६६

अर्थात--दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्ष है, कर्ण उस का तना, शकुनि उस की शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-फूल है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही उस के मूल हैं। युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष, अर्जुन उस का तना, भीमसेन उस की शाखा और माद्रीपुत्र नकुल एवं सहदेव उस के समृद्ध फल-फूल हैं। कृष्ण, वेद और ब्राह्मण उस के मूल हैं।

नमस्क्रिया विषयक उपर्युक्त श्लोक महाभारत के दाक्षिणात्य संस्करण में उपलब्ध नहीं होता। अतः अनुमान है कि

यह मूल पाठ में सम्मिलित नहीं था, तथापि एक प्राचीन मंगल-श्लोक के रूप में इसे आलोचनात्मक संस्करण में स्थान दिया गया है। (आदिपर्व, पृ. ९८३)।

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'जय' इस ग्रंथ का अपेक्षाकृत प्राचीन नाम है, किंतु कुछ 'महाभारत' को ही 'जय' कहते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि महाभारत के विदुरापुत्रानुशासन आख्यान की संज्ञा 'जय' है--

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति।।
--उद्योगपर्व, १३४।१७

अर्थात--यह 'जय' नामक इतिहास है, विजयाभिलाषी पुरुष को इस का श्रवण करना चाहिए। इसे सुन कर (युद्ध में जाने वाला राजा) शीघ्र ही पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है और शत्रुओं का नाश करता है।

यह आख्यान कुंती द्वारा श्रीकृष्ण से--पांडवों को सुनाने के लिए--कहा गया है। इस का उद्देश्य है उन की क्षात्र-भावना को जाग्रत करना। इस में वीर क्षत्राणी विदुरा अपने पराजित और हताश पुत्र संजय को प्रोत्साहित करने के लिए विजय-प्राप्ति के उपायों का वर्णन करते हुए अत्यंत स्फूर्तिमय उपदेश देती है। परिणामस्वरूप संजय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है। महाभारत मन्यु पर धर्म की विजय का विराट आख्यान है और स्वयं महाभारत में ही उसे यह 'जय' संज्ञा प्रदान की गयी है--

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते सर्वां शत्रूंश्चापि पराजयेत्॥
--आदिपर्व, ५६।९

और भी,

आकर्ण्य भक्त्या सततं
जयाख्यं भारतं महत्।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या
भवन्ति सहिताः सदा॥
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता॥

बंबई-संस्करण, स्वर्गारोहण पर्व, ५।४९,५१

अर्थात--जो 'जय' नामक इस महाभारत इतिहास को सदा भक्तिपूर्वक सुनता है उस के यहाँ श्री, कीर्ति और विद्या तीनों साथ-साथ रहती हैं। मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्राह्मण को, राजा को और गर्भिणी स्त्री को इस 'जय' नामक इतिहास का श्रवण करना चाहिए।

शांतिपर्व में रुद्र और नारायण के युद्ध की कथा है, जिस का नाम भी 'नारायण-जय' है (२३०।६७)।

शांतिपर्व के नारायणीय प्रकरण (अध्याय ३२१--३४०) के अध्ययन से यह धारणा बनती है कि '**नारायणं नमस्कृत्य**' आदि श्लोक में प्राप्त होने वाले 'जय' शब्द का अर्थ है--अनिष्टकारी तत्त्वों पर नारायण की विजय।

पांचरात्र संप्रदाय के तीन प्रमुख ग्रंथों में से एक का नाम 'जय' अथवा 'जयाख्य संहिता' है, जिस के प्रणयन का

समय गुप्तकाल में ईसा की चौथी या पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। इस संप्रदाय की अन्य दो प्रमुख संहिताएँ सात्वत और पौष्कर संहिताएँ हैं।

निष्कर्ष यह है कि 'जय' संज्ञा का प्रयोग उन अनेक ग्रंथों और आख्यानों के लिए सामान्य रूप से किया जाता था जिन में या तो विजय-कथा होती थी अथवा विजय-प्राप्ति के साधनों का वर्णन होता था। यह 'जय' सांसारिक अथवा आध्यात्मिक, अथवा दोनों ही प्रकार की, हो सकती थी। महाभारत के उपर्युक्त प्रारंभिक श्लोक में 'जय' शब्द स्पष्टतया सांसारिक विजय-कथा के ढाँचे में आध्यात्मिक विजय की ओर संकेत करता है।

'जय' शब्द के उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि हिंदू परंपरा से भी होती है। यहाँ तक कि मार्कण्डेय-पुराण का एक अंश सप्तशतीपाठ भी --जो शक्तिपूजा से संबंधित है--सदैव नारायण और नर आदि को नमस्कार के साथ प्रारंभ होता है। देवी की विजय 'जय' है और उस का पाठ 'नारायणं नमस्कृत्य' आदि श्लोक के उच्चारण के पश्चात होना चाहिए। 'धर्मसिन्धु' (निर्णयसागर प्रेस १९२६) में पृ. ९० पर कहा गया है--

अथ चण्डीपाठप्रकारः । . . . हस्तलिखितपुस्तकं स्थापयित्वा नारायणं नमस्कृत्येतिवचनात् ॐ नारायणाय नमः नराय नरोत्तमाय नमः देव्यै सरस्वत्यै नमः व्यासाय नमः इति नमस्कृत्य प्रणवमुच्चार्य सर्वपाठान्ते प्रणवं पठेत्।

भट्ट नीलकंठ अपने 'समय' या 'कालमयूख' (पृ. १२) में 'नवरात्रकृत्यम्' और 'चण्डीपाठफल' का वर्णन करते हुए कहते हैं--

पाठश्च नारायणादीन्नमस्कृत्य कार्यः।
"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥"
इति वचनात्।
जयशब्दार्थश्च भविष्यपुराणे--
अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा।
विष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्च भारत॥
कार्ष्णं च पञ्चमो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम्।
शैवाश्च धर्मा राजेन्द्र मानवोक्ता महीपते।
जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥

अर्थात, भविष्यपुराण में 'जय' शब्द का अर्थ--

अठारहों पुराण, राम का चरित, विष्णुधर्मादि धर्मशास्त्र, शैव धर्मशास्त्र, कृष्णद्वैपायन द्वारा रचित महाभारत जिसे पंचमवेद कहा जाता है और शिव द्वारा कहे गये धर्म--विद्वानों के अनुसार इन सब को 'जय' कहा जाता है।

--रूपा० ओमप्रकाश अग्रवाल

सत्य में ही ज्ञान निहित है। जिस के द्वारा प्राणियों का अत्यंत हित हो वही परम सत्य है।

--महाभारत

शिकार

● डा० रमेश

घूरती आँखें

उत्तरप्रदेश का मिर्जापुर जिला शेर के शिकार के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारत के प्रसिद्ध शिकारी महाराजकुमार विजयनगरम का तो यह कई वर्षों तक शिकारगाह रहा।

१९५९ में मुझे चोपन के इलाके से एक शेर के ऊधम मचाने की खबरें मिलीं। कई व्यक्ति उस के शिकार हो चुके थे।

१५ अप्रैल को जिले के कलक्टर का मुझे एक पत्र मिला, जिस में इस आदमखोर शेर के आतंक को समाप्त करने का आग्रह किया गया था। दूसरे दिन ही मैं और पुलिस-कप्तान खरे स्थिति का अध्ययन करने के लिए रवाना हो गये। साठ मील का पक्का रास्ता तो हम लोगों ने ढाई घंटे में तय कर लिया, पर चोपन से आगे का छब्बीस मील का रास्ता बड़ा कष्टप्रद रहा। यह मार्ग बहुत ऊँचा-नीचा, कच्चा एवं सँकरा है। प्रायः हमें स्पेशल गिअर में गाड़ी उतारनी-चढ़ानी पड़ती। रास्ते में सोन एवं कन्हर नदी को भी पार करना पड़ा, जिन का पानी करीब-करीब सूख गया था, केवल रेत ही रेत रह गयी थी। गरम हवा के थपेड़े खाते, धूल में लथपथ हम सालाडीह गाँव पहुँचे। गाँववालों ने कई व्यक्तियों के शेर द्वारा मारे जाने का हाल बताया। तीन-चार दिन पहले शेर ने दोपहर को चरते हुए जानवरों में से एक गाय को मार दिया था और जिस रास्ते से हम आये थे उसी पर से घसीटते हुए जंगल की तरफ ले गया था। उड़ते चील-गिद्धों को देख कर उन्होंने अनुमान लगा लिया था कि वह स्थान सड़क से ज्यादा दूर नहीं है। हम ने उस स्थान को देखने की इच्छा प्रकट की। पहले तो वे आनाकानी करने लगे, किंतु समझाने-बुझाने के बाद दो ग्रामीण हमें रास्ता दिखाने को तैयार हुए। कुछ दूर तक मैं और खरे सड़क-सड़क आये। जहाँ से शेर ने रास्ता पार किया था, वहाँ कुछ खून के सूखे धब्बे मिले और एक जगह सड़क के किनारे शेर के पंजों के निशान भी। हम सतर्कता से अपनी-अपनी राइफल सँभाले आगे बढ़े। जंगल भीतर की ओर घना होता गया था। अब हमें कुछ दुर्गंध आने लगी और हम उसी के सहारे उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ मरी हुई गाय का कुछ अंश तथा ढाँचा पड़ा हुआ था। यह स्थान सड़क से कोई डेढ़-सौ गज रहा होगा।



यहाँ भी शेर के पंजों के काफी निशान थे। इस जगह से पूर्व की तरफ का जंगल और घना होता गया था। वहीं एक पहाड़ी नाला भी बहता था, जिस में कहीं-कहीं थोड़ा पानी था। हमारे खयाल में शेर किसी गहरे पानी वाले स्थान पर होना चाहिए था। कहने पर गाँववाले हमें उस जगह ले गये जहाँ सब से ज्यादा पानी रहता है। यहाँ हमें शेर के पंजों के निशान, जो बहुत पुराने नहीं थे, दिखायी दिये। अब हम ने वहाँ ज्यादा रुकना उचित नहीं समझा और जंगल के बाहर आ गये। हम ने जंगल के उस टुकड़े की परिक्रमा की और स्थिति का अध्ययन कर शाम को गाँव लौटे।

अब हम लोगों के सामने प्रश्न था कि इस नरभक्षी को कैसे मारा जाये? मैं ने यह विचार प्रकट किया कि इस के शिकार के लिए मौके की जगहों पर, खास तौर से जहाँ पानी हो, पड्डे (भैंसे) बँधवाये जायें और जब शेर उन्हें मार ले तब दिन को जंगल का हाँका करवाया जाये या रात को मचान पर बैठा जाये। मेरी इस योजना पर ग्रामीण हँस पड़े और बोले, "साहब, पड्डे बँधवाने जंगल में जायेगा कौन?" वास्तव में उन का प्रश्न ठीक था। उस दिन तो हमारे साथ दो ग्रामीण किसी तरह चले गये थे, लेकिन शाम को जानवर बँधवाने तथा सुबह वापस लाने कौन जायेगा? आखिर हम ने तय किया कि दो बंदूकधारी सिपाही तथा एक दरोगा को पड्डे बँधवाने का काम सौंपा जाये। ८–१० पड्डों का इंतजाम

करवा कर और उचित आदेश दे कर हम लोग मिर्जापुर के लिए रवाना हुए। योजनानुसार सशस्त्र पुलिस तथा एक जीप दूसरे दिन भेज दी गयी और पड्डे बँधवाने का काम शुरू हो गया।

अली कदीर उन दिनों बनारस रेंज के डी. आई. जी. थे। उन के दोस्त इब्राहीम मिर्जापुर में कलेक्टर थे। इब्राहीम स्वयं शिकारी हैं और कई शेर मार चुके हैं। कदीर प्रायः मिर्जापुर आते रहते थे और यहीं मेरा उन से परिचय हुआ था। कदीर मशहूर शिकारी हैं। कई शेर इन्होंने भी मारे हैं और मैं इन की शोहरत सुन चुका था। प्रायः हम तीनों तीतर-हिरन के शिकार पर साथ जाया करते थे। मैं ने सोचा इस शेर को मारने में यदि अली कदीर का साथ हो जाये तो अच्छा रहेगा। अतः उन से फोन पर बातचीत की और अपनी योजना भी बतायी। इस शेर के आतंक की सूचना उन्हें पहले ही मिल चुकी थी। मैं ने उन से कहा कि यदि हम लोग उसी इलाके में कुछ दिन कैंप करें तो गाँववालों को कुछ राहत भी मिल जायेगी और उसे मारने में भी शायद कामयाबी हो जाये। कदीर मेरे प्रोग्राम से सहमत हो गये और अपने बड़े भाई के साथ मिर्जापुर आ गये। शाम को ही हम लोग चोपन के लिए रवाना हो गये। रात डाकबँगले में रुके और सुबह सालाडीह पहुँच कर वहाँ से छह मील के फासले पर कैंप करने लगे।

हम लोग रोज सुबह चार बजे जीप में बैठ कर ३०–४० मील का चक्कर लगाते। यही क्रम शाम से ११– १२ बजे रात तक रहता। रोज उम्मीद करते कि आज शेर पड्डा मारेगा, पर कुछ नहीं हुआ। कई दिन गुजर गये।

हम ने तय किया कि पड्डे दिन में भी बँधवाये जायें, क्योंकि वह कुछ दिन पहले एक गाय दिन में मार चुका था और शायद आदमी भी इस ने दिन ही में पकड़े होंगे। अब पड्डे चौबीस घंटे बँधे रहने लगे। लोग सुबह-शाम जा कर जंगल में ही उन्हें घास-पानी दे आते। २७ अप्रैल की शाम को जब लोग पड्डों को घास-पानी डालने गये तो देखा कि शेर एक पड्डे को मार कर कुछ खा भी चुका है। ये लोग उलटे पैर लौटे और कैंप में जब हम रात को ११ बजे के करीब लौटे तब इत्तला दी। हम ने दूसरे दिन हाँका कराने का निश्चय किया, लेकिन आदमखोर का हाँका भी तो आसान नहीं है—हर कदम पर खतरा! पर धन्य है ग्रामीणों की हिम्मत! कहने लगे, "साहब, एक-दो को और मार लेगा तो मार लेने दो, बाकी तो निश्चित हो जायेंगें।" हम लोगों की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। कदीर बोले, "यदि हाँके में खाली फायर पीछे से होते रहें तो शेर की हिम्मत हाँकेवालों पर टूटने की न होगी। सलाह विचारणीय थी, पर मैं ने सोचा कि कभी-कभी इस से शेर ज्यादा भड़क भी जाते हैं और गोली चलाने का मौका नहीं मिल पाता है। आखिर यही निश्चय किया कि हाँका सिर्फ ढोल-बाजे और आवाज से ही हो और हाँके में चार सौ

आदमियों से कम न हों।

जंगल के दक्षिण की तरफ दो मचान बाँधे गये– एक पर हम और खरे बैठे और दूसरे पर कदीर तथा उन के भाई। ग्यारह वजे के करीब हाँका शुरू हुआ। ४०–४५ मिनट तक हाँका चला होगा कि शेर की दहाड़ सुनायी दी और हाँके-वालों में कोहराम-सा मच गया। मैं ने खरे से कहा कि शेर आगे बढ़ने से अड़ रहा है, ऐसा न हो कि हमला कर बैठे। मैं सत-र्कता से देखने लगा। इतने में एक आदमी मेरी तरफ भागता दिखायी दिया।

मेरा माथा ठनका, सोचा कोई न कोई अनहोनी बात हो गयी है। उस ने चिल्ला कर कहा कि शेर एक आदमी के सीने पर चढ़ा बैठा है। मैं बिना जूते पहने ही उस के साथ भागा। खरे से कह गया कि वे मचान पर ही बैठे रहें। पहुँच कर देखा कि दो आदमी खून से लथपथ पड़े कराह रहे हैं। बाकी हाँकेवाले भी वहीं इकट्ठे हो गये। २५–३० आदमी आसपास के पेड़ों पर चढ़े हुए थे। मालूम हुआ कि शेर नाले पर पानी के पास लेटा हुआ था। जब हाँकेवाले करीब पहुँचने लगे तो वह गुर्राया, लेकिन जब उस ने देखा कि गुर्राहट के बावजूद लोग उसी तरफ चले आ रहे हैं तो वह उन पर लपक पड़ा। हाँके-वाले चिल्ला कर इधर-उधर भागने लगे। उस ने एक आदमी की पीठ पर पंजा मार कर नीचे गिरा दिया और उसे मुँह मारने ही वाला था कि दूसरे व्यक्ति ने अपनी लाठी शेर को फेंक कर मारी। शेर ने पड़े हुए व्यक्ति की बाँह मुँह से पकड़ कर उसे कुछ दूर फेंक दिया और लाठी फेंकने वाले पर कूद कर उस का कंधा पकड़ कर उसे नीचे गिरा दिया। तब तक काफी आदमी इकट्ठे हो चुके थे। उन की चीख-पुकार से घबरा कर शेर ने लंबी छलाँग भरी और चिल्लाता हुआ पीछे भाग गया। पेड़ों पर चढ़े लोग चिल्लाये कि शेर उन के पास ही झाड़ी में घुस गया है। यह उस स्थान से, जहाँ घायल व्यक्ति पड़े थे, मुश्किल से १०० गज रहा होगा।

जल्दी से घायल लोगों को उठा कर हम लोग जंगल के बाहर आ गये। गाँव से कुछ दूर हमारी जीपें खड़ीं थीं। वहाँ हम ने डेटोल से घायलों के घाव साफ किये। घायलों के घरवाले और रिश्तेदार वहाँ इकट्ठे हो चुके थे और रो-धो रहे थे। करीब डेढ़-दो घंटे लग गये। उधर पेड़ों के ऊपर टँगे लोग गरमी और लू के मारे पानी के लिए चिल्ला रहे थे। आखिर कदीर ने सोचा कि यदि शेर के छिपने के स्थान से थोड़ी दूर पर हवाई फैर कर दिये जायें तो शेर वहाँ से भाग जायेगा और कम-से-कम पेड़ों पर फँसे लोग तो नीचे उतर सकेंगे।

हम ने कैंप का सामान ढोने के लिए एक हाथी मँगवाया था जो बिना हौदे का और बिलकुल अनाड़ी था। महावत को किसी तरह समझा-बुझा कर कदीर और उन के बड़े भाई उस पर बैठे और शेर की झाड़ी की तरफ रवाना हुए। झाड़ी के दो-ढाई सौ गज दूर से उन लोगों ने छह हवाई

फैर किये, पर वह जिद्दी शेर टस से मस न हुआ। अतः ये लोग निराश हो कर वापस आ गये। हम ने सोचा यदि शेर शाम के पहले मारा नहीं गया तो लोग रात भर पेड़ों पर टँगे रह जायेंगे और बिना पानी के तड़पेंगे। आखिर तय किया कि हाथी को किसी तरह झाड़ी तक ले चलें और हर खतरे के बावजूद शेर पर गोली चलायी जाये। हम सावधानी से आगे बढ़े। पेड़ों पर चढ़े आदमी अब हमें साफ दिखायी दे रहे थे। हम ने शेर का स्थान पूछा जो उन्होंने इशारे से दिखा दिया। वहाँ हम लोगों को कुछ नजर नहीं आया। चूँकि झाड़ी सघन थी, इसलिए हाथी को आगे बढ़वाया। अब हम झाड़ी से करीब ५० गज की दूरी पर आ गये थे। मैं ने हाथी को आड़ा खड़ा करवाया ताकि हाथी की नजर शेर पर न पड़े। मैं ने दूरबीन से झाड़ी में देखा, फिर भी कुछ नजर न आया। हाथी को और आगे बढ़वाया। गौर से देखने पर कुछ पीला-काला-सा दिखायी दिया, पर सिर या सीना साफ नहीं दिखायी दिया। अब हम झाड़ी से लगभग तीस गज पर थे। हाथी और आगे ले जाना उचित नहीं था। इतना सब होने पर भी शेर खामोश था। हम पसोपेश में पड़ गये कि मारें या ना मारें, क्योंकि मर्म-स्थान नहीं नजर आ रहा था। आखिर तय हुआ कि मैं पहली गोली चलाऊँ और जब वह झाड़ी के बाहर आये तो कदीर दूसरी गोली मारें।

महावत से हाथी को स्थिर रखने के लिए कहा और मैं ने अपनी राइफल से उस पर गोली चलायी। शेर उलट-सा गया। गोली उस के फेफड़े को फाड़ती हुई निकल गयी थी, पर वह एकाएक खड़ा हो दहाड़ कर झाड़ी से निकला और हमारी तरफ झपटा। सामने उस के सूखा नाला था। ज्यों ही उस ने पार करने की कोशिश की कदीर ने दूसरा फायर किया। गोली उस की अगली बायीं टाँग पर लगी। उस की टाँग लचक-सी गयी और वह आगे बढ़ने के बजाय नाले ही नाले बायीं तरफ भागा। शेर की दहाड़ सुनते ही हाथी चंचल हो उठा और उसे काबू में रखना मुश्किल हो गया। पेड़ पर चढ़े लोगों में कुछ तो शेर को भागते देख पाये, कुछ ने डर के मारे आँखें बंद कर लीं और डाल से चिपट गये। शेर दक्षिण की तरफ जा कर लेट गया और उस तरफ के लोग उसे देख पा रहे थे। हम फौरन जंगल के बाहर आ गये। पानी पीया और तय किया कि अब घंटे भर बाद दक्षिण की तरफ जा कर शेर को ढूँढ़ा जाये। तब तक उस का काफी खून निकल जायेगा और वह कमजोर भी हो जायेगा।

अब हम और कदीर दक्षिण की तरफ से जंगल में घुसे। हाथी धीरे-धीरे जा रहा था। हमारा अनुमान था कि वह स्थान दूरी पर होगा। फिर भी हम झाड़ियों को सतर्कता से देखते चले जा रहे थे कि हाथी चंचल हो उठा। अचानक हमारी नजर बायीं तरफ पंद्रह गज पर बैठे शेर पर पड़ी। वह उठ कर बैठ चुका था और हम पर कूदने

की तैयारी में था। हमारी आँखें उस की जलती हुई क्रुद्ध आँखों से मिलीं और तभी कदीर की राइफल गरज उठी। गोली उस के अगले पंजे को छेदती हुई जमीन में धँस गयी। शेर की हिम्मत पस्त हो गयी और वह पीछे भागा। कदीर ने दूसरा फैर किया, जो उसे नहीं लगा। वह भाग कर फिर उसी सूखे नाले के अंदर, जिस में आस-पास झाड़ियाँ थीं, छिप गया।

पेड़ों पर चढ़े लोगों ने उसे नाले में छिपते देख लिया था और उस पर नजर जमाये हुए थे। अब इस तरफ से आगे जाने लायक रास्ता नहीं था। अतः हम जंगल से बाहर आ गये और दूसरी तरफ से नाले की तरफ गये। अब महावत की भी हिम्मत बढ़ गयी थी और उस ने हाथी नाले के करीब ले जा कर खड़ा करने में कोई आपत्ति नहीं की। हम ने लेटे हुए शेर पर एकसाथ एक-एक गोली मारी। उस के मुँह से एक हलकी और आखिरी आवाज ही निकल सकी। करीब साढ़े पाँच बज रहे थे। हम कुछ देर शांत बैठे रहे, फिर उतर कर शेर पर पत्थर फेंके। जब कोई प्रतिक्रिया न हुई तो लिबलिबी पर हाथ रखे उस के नजदीक गये। जब हम ने उस पर पैर रखा तब कहीं पेड़ों पर से लोग नीचे उतर कर आये। यह ९ फुट १० इंच का नर शेर निकला। देखने पर इस के बायें जबड़े के नीचे का दाँत आधा टूटा हुआ था। उस का मसूड़ा सूजा हुआ और मवाद से भरा हुआ थे। १ छर्रा, जो बक-शाट मालूम होता था,



उस के बायें पंजे में धँसा हुआ मिला।

मेरे शिकारी जीवन में कई खतरनाक मौके आये हैं और अच्छे-अच्छे शिकारी मेरे साथ रहे हैं। ऐसे समय में प्रायः लोग अपना धैर्य और मानसिक संतुलन खो देते हैं, पर शेर के हमले के वक्त कदीर-जैसी गंभीरता और साहस मैं ने विरले शिकारियों ही में पाया है। जब कभी मझे इस शेर की घूरती हुई क्रुद्ध आँखें याद आ जाती हैं तो मैं सोचता हूँ कि यदि मेरे साथ कदीर की जगह कोई दूसरा होता तो शायद यह कहानी भी दूसरी होती और इसे लिखता भी कोई और। ●

"यह कहना गलत है कि वह शराब पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता—वह हिचकियाँ भी लेता है।"



मोहन रानाडे

पंडारा रोड (दिल्ली) पर श्री गंगाधर इन्दुरकर के घर की छत। संध्या के साढ़े सात का समय। लंबे कद का एक युवक चुपचाप आ कर पास के सोफे पर बैठ गया। वह अभी-अभी दिल्ली महानगर परिषद के स्वागत-समारोह से लौटा है। चेहरे पर एक विचित्र सादगी है। जब उस ने रुक-रुक कर बोलना प्रारंभ किया तो पता लगा कि हम किसी राजनीतिज्ञ से बात नहीं कर रहे हैं।

साढ़े तेरह वर्ष की पुर्तगाली जेलों की कठोर साधना ने उस के शब्दों में वह संतुलन ला दिया है जिस में छिपाने की कोई बात नहीं है। जो भी प्रश्न पूछे गये उन के उत्तर हार्दिक थे। शंका का सवाल ही नहीं उठता। आज के युग में जब देश एक भोगकाल में हो कर गुजर रहा है एक ऐसा तपस्वी हमारे सामने था जिस ने अनिर्वचनीय कष्ट झेले थे, जिसे देशभक्ति के 'अपराध' में अट्ठाइस वर्ष की कठोर कैद मिली थी। हम ने उन से पुर्तगाली जेल-जीवन के बारे में पूछा, उत्तर बड़ा मार्मिक था––

"साढ़े तेरह वर्ष के जेल-जीवन में मुझे साढ़े पाँच वर्ष बिलकुल अकेले काटने पड़े। पहरेदार तक मुझ से नहीं बोल सकते थे। दो पहरेदारों को मुझ से बोलने के अपराध में नौकरी से हटा दिया गया।

जब मैं साढ़े पाँच वर्ष बाद एक ऐसी कोठरी में लाया गया जहाँ और भी कैदी थे तो मैं बोलना भूल गया था। मेरी समझ में ही नहीं आया कि मैं क्या कहूँ और कैसे कहूँ!"

हम ने पूछा, "जेल में आप को पढ़ने-लिखने की सुविधा थी?"

"इतिहास, अर्थशास्त्र या समाज-शास्त्र-संबंधी कोई भी पुस्तक मुझे नहीं मिल सकती थी—यहाँ तक कि पुर्तगाली में लिखा पुर्तगाल का इतिहास भी नहीं। हाँ गणित, रेखागणित या बीजगणित पढ़ने के लिए मैं स्वतंत्र था। पर मैं उस के प्रश्न हल कर बाहर नहीं भेज सकता था। पुर्तगालियों को डर था कि 'कोड' शब्दों में मैं बाहर कोई संदेश न भेज दूँ।"

"क्या आप घर पत्र लिख सकते थे?"

"तीन वर्ष तक तो मुझे कोई पत्र नहीं लिखने दिया गया। कहने को मैं रिश्तेदारों को पत्र लिख सकता था, पर मुझे लेखन-सामग्री ही नहीं दी गयी। तीन वर्ष बाद मैं पुर्तगाली में लिख सकता था। १९६१ में जब मेक्सिको के राजदूत मुझ से मिलने आये तो मुझे अँगरेजी में भी पत्र लिखने की अनुमति मिली। ये पत्र सेंसर हो कर जाते थे।"

"क्या आप को जेल में समाचार-पत्र मिलते थे?"

"केवल पुर्तगाली भाषा का एक पत्र मिलता था। बाद में भारतीय दूता-वास द्वारा भेजे गये अँगरेजी के कुछ पत्र भी कभी-कभी मिलने लगे।"

"गोवा-मुक्ति के समय पुर्तगालियों की क्या प्रतिक्रिया थी?"

"पुर्तगाली समाचारपत्रों ने भारतीयों को और ज्यादा गालियाँ देना प्रारंभ कर दिया। मेरे साथ व्यवहार भी पूर्ववत ही रहा। उस समय हम ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया जब हम ने देखा कि जिन लोगों ने हमारी माँ-बहिनों की इज्जत लूटी थी, जिन्होंने निहत्थे सत्याग्रहियों को गोली का निशाना बनाया था वे ससम्मान घर लौट रहे थे; और जो देश की स्वाधीनता के लिए लड़े थे वे जेल में सड़ रहे थे। हमें छुटाने का अवसर खो दिया गया और मेरे जीवन के नौ वर्ष बेकार गये, जिन में मैं राष्ट्र की कोई सेवा नहीं कर सका।"

"आप को क्रांतिकारी कार्य की प्रेरणा किस ने दी?"

"मैं ने सन १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास से प्रेरणा ली। सरदार भगतसिंह के जीवन ने मुझे प्रेरणा दी। दादा बसंतराव पाटिल के जेल तोड़ कर भागने और बंदूकों द्वारा उन का पीछा किये जाने की घटना ने भी प्रेरणा दी।"

"जब आप को पुर्तगाली सेना ने पकड़ा और आप को सजा हुई तो आप की मनोदशा क्या थी?"

"मैं हर परिस्थिति के लिए तैयार था। मैं ने जब यह काम हाथ में लिया था तो मुझे मालूम था कि इस के दो ही परिणाम हैं—मृत्यु अथवा जेल। मुझे मालूम था कि मैं ने कुछ किया है—एक

व्यक्ति की जान ली है—मुझे सजा होगी ही। पर डा. मेकफरनास ने तो कुछ नहीं किया। वे बंबई से एक पत्र निकालते थे और आकाशवाणी से उन्होंने कुछ समाचार पढ़े थे। हथियार उन्होंने छआ तक नहीं था। इस के बावजूद उन्हें चौबीस वर्ष की सजा दी गयी। इतनी सजा तो पुर्तगाल में सशस्त्र क्रांति करनेवालों को भी नहीं दी गयी।"

रानाडे मेकफरनास की रिहाई के लिए अत्यंत चिंतित थे, इसलिए उन्होंने राष्ट्रपति एवं विदेशमंत्री से भेंट की। प्रधानमंत्री की बीमारी तथा उन से भेंट के लिए नियत समय के स्वागत-समारोह से टकराव के कारण उन्हें भेंट न होने का दुख था। राष्ट्रपति से मिल कर वे संतुष्ट थे। उन्होंने कहा, "मैं आशावान हो कर गया था और आशावान ही लौटा। हमेशा ऐसा होता नहीं है। लोग आशाएँ ले कर जाते हैं और निराश लौटते हैं।"

जब उन से पूछा गया कि क्या आप उप-प्रधानमंत्री से भी मिले तो उन्होंने तमक कर कहा, "नहीं, मुझे कोई पेंशन नहीं लेनी है।"

भारत सरकार ने रानाडे के साथ कोई बड़ा अच्छा व्यवहार नहीं किया, इस की उन्हें टीस है। उन्होंने कहा कि मुझे यह बताया नहीं गया कि भारत सरकार ने मेरी रिहाई के लिए क्या किया।

श्री रानाडे ने आगे कहा—"शायद आप को पता नहीं है कि जब मैं १९५५ में गोवा की सीमा से बाहर भारतीय क्षेत्र में आया तो मुझे भारतीय पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और मेरी पिस्तौल छीन ली। न जाने क्यों मुझे मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया और सीमा पर ले जा कर छोड़ दिया गया! मैं वापस गोवा चला गया, जहाँ पुर्तगालियों ने मुझे गिरफ्तार कर लिया।"

ये शब्द बता रहे थे कि अगर मोहन रानाडे को भारतीय पुलिस ने पकड़ा न होता और सीमा पर वापस न भेज दिया होता तो शायद उन्हें पुर्तगाली जेलों में साढ़े तेरह वर्ष न काटने पड़ते, या कम-से-कम उन की पिस्तौल ही न छीनी होती तो शायद वे बच निकलते। फिर भी रानाडे को भारत से अगाध प्रेम है।

रानाडे एक शिक्षक थे। जब उन से पूछा गया कि अब आप का क्या कार्यक्रम है तो उन्होंने कहा कि मैं अपने पुराने स्कूल में जाऊँगा और गोवा में रहूँगा। उन्होंने यह भी कहा कि मेरा इरादा किसी राजनीतिक दल में शामिल होने का नहीं है। वे पहले स्थिति का अध्ययन करना चाहते हैं।

कार्यक्रम के बारे में ही प्रश्न किये जाने पर वे हँस कर बोले, "बेकार हूँ। क्या कार्यक्रम बताऊँ?"

—भेंटकर्ता : जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

मैनेजर ने विलायतीराम की तनख्वाह बढ़ा दी है, क्योंकि उन के खुर्राटे दफ्तर में और लोगों को जगाये रखते हैं।

आसमान में छेद क्यों?

कुछ लोग जन्मजात विरोधी होते हैं, यानी विरोध करना उन का स्वभाव बन जाता है। इन के विरोध की कोई चिंता भी नहीं करता, पर विरोध करने वाले यदि प्रबुद्ध हों तो जरा सोच-विचार करना पड़ता है, क्योंकि प्रबुद्धजन किसी बात का दुराग्रहवश विरोध नहीं करते ।

'अंतरिक्ष-अन्वेषण' एक वैज्ञानिक कार्यक्रम है, जो जटिल तकनीकी प्रक्रियाओं के कारण औसत बुद्धि के व्यक्तियों की पकड़ से बाहर है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मौसम का अध्ययन, सुदूर ग्रहों की यात्रा और भू-मंडल का अध्ययन-जैसे विषय आते हैं। स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम में बहुत बड़ी धनराशि व्यय हो रही है। इस व्यय को ले कर ही कुछ वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ अपना विरोध प्रकट कर रहे हैं। नोबुल-पुरस्कार-विजेता भारतीय वैज्ञानिक श्री चंद्रशेखर वेंकट रामन की राय में 'जब पृथ्वी पर असंख्य व्यक्ति रोग, भूख और अशिक्षा के कारण पशुओं से बदतर जीवन बिता रहे हों तो सुदूर ग्रहों की यात्रा या उन के वातावरण के अध्ययन में इतना धन व्यय करना गंभीर अपराध है।' पर युग बदलने के साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ और रुचियाँ भी बदला करती हैं। बीसवीं शताब्दी में अंतरिक्ष का अन्वेषण प्रगति का एक सारभूत अंग बन गया है। यह सही है कि विश्व-रहस्यों की खोज तथा अन्य ग्रहों की जानकारी के प्रयास के कारण ऐसी संभावनाओं के द्वार खुल गये हैं जो कल तक कल्पनातीत ही थीं।

अंतरिक्ष-अन्वेषण के बहुत-से व्यावहारिक लाभ हैं। आज जितना व्यय अंतरिक्ष-अन्वेषण में किया जा रहा है वह एक नये ग्रह पर पहुँच जाने पर मय सूद-व्याज के वसूल हो जायेगा। जटिल यंत्रों से सज्जित कृत्रिम उपग्रहों और राकेटों की सहायता से संपन्न किया जाने वाला अंतर्ग्रहीय अंतरिक्ष-अन्वेषण हजारों नये अनुसंधानों और प्रौद्योगिक विकास को जन्म देता है। इन में कई का हमारे दैनिक जीवन में व्यावहारिक उपयोग है। औषध, उद्योग, भवन - निर्माण और यातायात में भी अंतरिक्ष-अन्वेषण का उपयोग है।

चालकयुक्त अंतरिक्ष-यानों की उड़ानों के समाचार हम ज्यादा रुचि से पढ़ते हैं, पर चालकहीन यान भी बहुत उपयोगी जानकारी जुटाते हैं। स्वचालित अंतरिक्ष - यानों द्वारा प्रदत्त जानकारी ने दुनिया के बारे में हमारी रूढ़िगत कल्पना को बदल दिया है। उदाहरणार्थ, कृत्रिम उपग्रहों की सहायता से हम अपनी पृथ्वी का सही आकार निर्धारित कर सके हैं। पृथ्वी की परिधि को नापने तथा विभिन्न महाद्वीपों के बीच की दूरी को निश्चयात्मक रूप से जानने में भी उपग्रहों ने हमारी सहायता की है।

यही नहीं, हम ने यह भी अब जान लिया है कि पथ्वी से प्रतिदिन १०० टन कारबन समाप्त हो जाता है। इन्हीं जानकारियों से वैज्ञानिक पृथ्वी के गर्भ में होने वाली हलचलों और विश्व के परिवर्तनों के संबंध में सही धारणाएँ बना सके हैं।

पृथ्वी पर स्थित वेधशालाओं में केवल स्थानीय और अल्पकालिक ऋतु-परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सकता है, पर कृत्रिम-उपग्रह ऋतुओं की अवस्था और बादलों की गति का चित्र सहज समझ में आने वाले ढंग से बना लेता है। वह धरती के विकिरण-संतुलन की छाया ले सकता है और बर्फ और हिमपात की परतों तथा वायु की गति और तूफानों के उठने के संबंध में जानकारी एकत्र कर सकता है। अंतरिक्ष से हमें भयंकर तूफानों, मौसम के रुखों तथा अन्य संकटों से सावधान रहने के लिए चेतावनी मिल जाती है।

ऋतु-संबंधी सही भविष्यवाणी के बाद एक दिन हम मौसम पर नियंत्रण करना भी सीख लेंगे। हम सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पानी बरसाने, कुहरे को नष्ट करने और तूफानों को रोकने में सफल हो सकेंगे। हम यह भी तय कर सकेंगे कि कब कौन-सी फसलें बोना चाहिएँ और कब कौन-सी फसलें काटना चाहिएँ।

अंतरिक्ष-अन्वेषण से हमें यह भी पता चला है कि पृथ्वी के चारों ओर प्रभूत विकिरण-पट्टियाँ हैं। ऊपरी वातावरण के अध्ययन से तथा उपग्रहों के ट्रांसमिटरों द्वारा भेजी गयी रेडियो-तरंगों के अवलोकन से अयन-मंडल की रचना और उस में रेडियो-संकेतों की गतिविधियों के बारे में नयी सूचनाएँ मिली हैं।

वह दिन भी अब दूर नहीं है जब अंतरिक्ष का नये डाक-मार्ग के रूप में उपयोग किया जायेगा और संचार–उपग्रह पारसल और पत्रों को पहुँचाया करेंगे। इन उपग्रहों का उपयोग समुद्र, उस की लहरों तथा उस के उथले भाग का विस्तृत अध्ययन करने, भौगोलिक मानचित्रों की परिभाषा करने और उन का संशोधन करने में भी किया जा सकेगा। पथ्वी की पपड़ी में विविध पदार्थों के सम्मिश्रण का अध्ययन करने के लिए भी कृत्रिम उपग्रह सहायक होंगे। यह जानकारी पृथ्वी की संरचना के रहस्य को समझने तथा उस की प्राकृतिक संपदा का उपयोग करने की कुंजी समझना चाहिए। नौका-उपग्रहों

से जलयानों और वायुयानों को अपनी स्थिति ठीक-ठीक निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

अनेक विशेषज्ञ इस समय ब्रह्मांड-किरणों की संरचना का अध्ययन कर रहे हैं। संभव है कि इन किरणों में रहस्यपूर्ण ऐंटी-मैटर हो। वास्तव में धरती का वातावरण इस तत्त्व को निस्सृत नहीं होने देता। वातावरण के साथ अंतर्क्रिया करते हुए ऐंटी-मैटर नष्ट हो जाता है और विभिन्न विकिरणों में बदल जाता है। यह भी संभव है कि बाह्य अंतरिक्ष में उल्का-निर्मित 'गर्द' से भरे कुछ ऐसे क्षेत्र हों और उन से पृथ्वी का संपर्क हितकर न हो।

इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर अंतरिक्ष-यात्रा के स्वचालित यानों और चालकयुक्त यानों से ही मिलेगा।

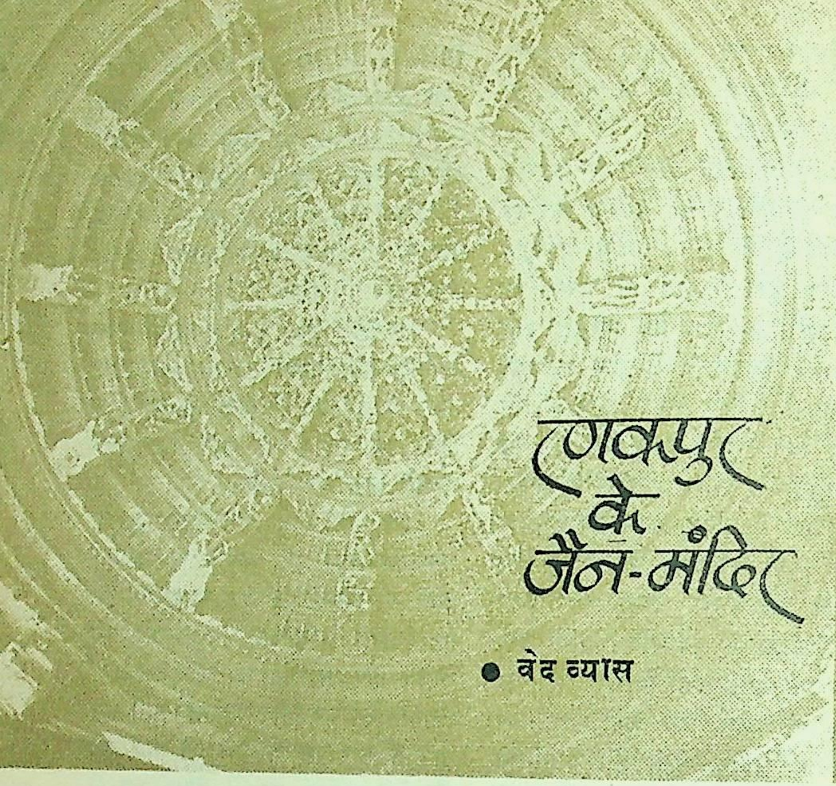
दूसरे नक्षत्र भी हमें बहुत-सी संभावनाएँ प्रदान करते हैं। वैज्ञानिकों की ऐसी धारणा है कि उन नक्षत्रों में भी जीवधारी हैं। अलबत्ता यह हो सकता है कि वे उस नक्षत्र के विभिन्न भागों के वातावरण आदि के अनुसार हों। उदाहरणार्थ, बुध ग्रह के उस हिस्से में जिस का रुख सूर्य की ओर है, ४०० अंश सेंटीग्रेट से ज्यादा उष्णता है और सुदूर प्लूटो में यह उष्णता शून्य से २६० अंश सेंटीग्रेट से कम है। कुछ नक्षत्रों में वातावरण होता ही नहीं है और वे प्रत्यक्ष रूप से अंतरिक्ष द्वारा प्रभावित होते हैं। इस के विपरीत दूसरे नक्षत्र वातावरण से घिरे हैं। हो सकता है कि कुछ नक्षत्र ऐसे भी हों जिन का वातावरण हमारी धरती-जैसा ही हो।

दस वर्ष से कुछ ज्यादा समय के भीतर अंतरिक्ष-यात्रा-विज्ञान ने जो सफलताएँ प्राप्त की हैं, उन की वजह से वह दिन निकट आ गया है जब दूसरे नक्षत्रों पर आदमी अपने पाँव रखेंगे।

हम कभी-कभी ऐसा सुनते हैं कि अंतरिक्ष-यात्राएँ उस स्थिति का सामना करने की तैयारी है जब हमारी धरती पर जिंदगी के हालात अनुकूल नहीं रह जायेंगे और आदमियों को दूसरे नक्षत्रों में स्थानांतरित कर दिया जायेगा। क्या इस बात में कोई सच्चाई है? जी नहीं, इस में कोई सच्चाई नहीं। हमारी पृथ्वी मानव-जाति के लिए हमेशा अन्य नक्षत्रों से बेहतर रहेगी। कारण यह है कि आदमी इस धरती की जिंदगी के हालातों के साथ अटूट और मानवीय बंधनों से जुड़ा हुआ है। ऐसे अनगिनत नक्षत्र हो सकते हैं जिन पर जीवधारी मौजूद हों, लेकिन आदमी अपनी पृथ्वी को कभी नहीं छोड़ेगा। ●

मित्र ने झनकू से पूछा, "तुम ने अपना घर बेचने का इरादा क्यों छोड़ दिया?"

"दलाल ने हमारे मकान का जो विज्ञापन छपवाया था उसे पढ़ कर लगा कि यह तो ठीक वैसा ही मकान है जैसे की हमें अब तक तलाश थी," झनकू ने जवाब दिया।

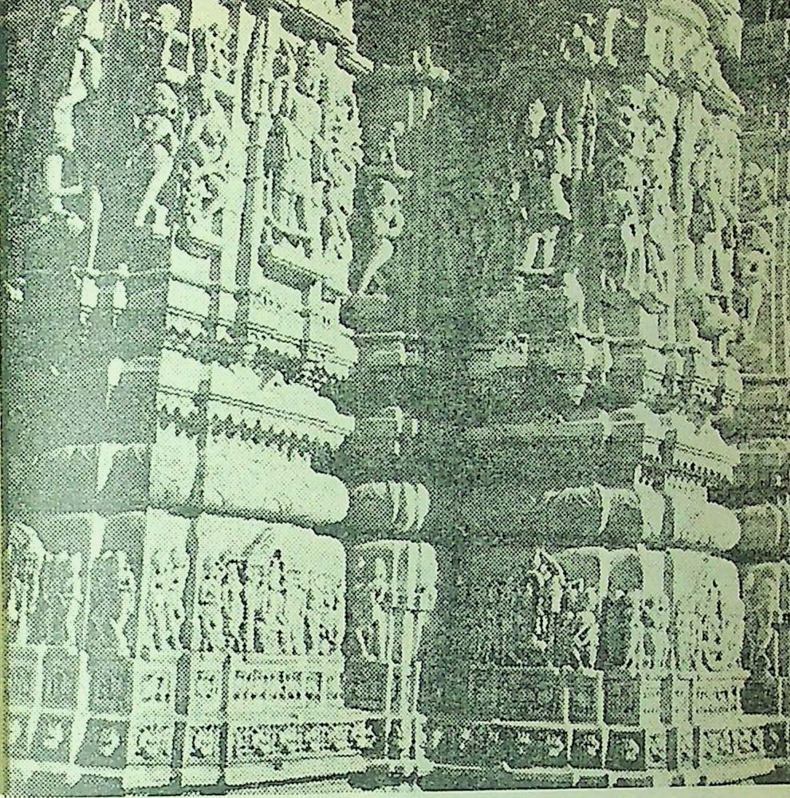


रणकपुर मंदिर की छत पर नक्काशी

रणकपुर के जैन-मंदिर

● वेद व्यास

भारतीय संस्कृति के कलात्मक धर्मोत्थान में जैन आचार्यों की प्रेरणा उल्लेखनीय विषयवस्तु रही है। रणकपुर के जैनमंदिर इस संदर्भ में युग-विशेष की परिचयधारा के मूल हैं। राजस्थान की बहुरूपी झाँकियों के इस प्रसंग से शासक और शासित एक सूत्र में बँधे लगते हैं। रणकपुर गाँव, राजस्थान के पाली जिले में अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य दिल्ली-अहमदाबाद रेल-लाइन पर फालना स्टेशन से लगभग २२ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 'वीरविनोद' के अनुसार विक्रम संवत १४९० में मेवाड़ के महाराणा कुंभकुण अर्थात कुंभा का इस क्षेत्र पर अधिकार था, लेकिन आगे चल कर रणकपुर गाँव मारवाड़ राज्य के अधीन रहा। राणकपुर, राणपुर और रणकपुर के नाम से परिचित यह मंदिरमय गाँव महाराणा कुंभा की कलारुचि का श्रेष्ठतम उदाहरण है। चित्तौड़ का कीर्तिस्तंभ, कुंभलमेर का किला, कुंभश्यामजी



रणकपुर मंदिर की शिल्पकला का नमूना

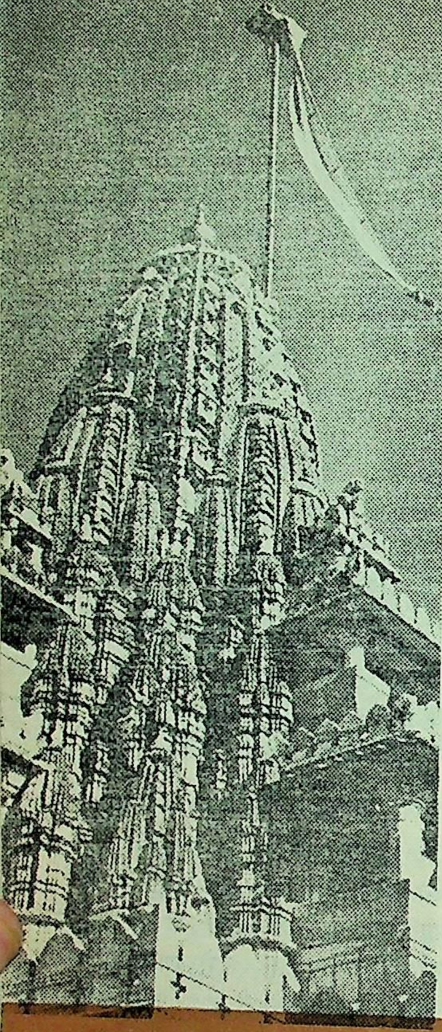
का मंदिर, अचलगढ़, वसंतगढ़ का किला तथा एकलिंगजी का जीर्णोद्धार कुंभा की जीवन-यात्रा के ऐसे बोलते पड़ाव हैं, जहाँ मूर्तियों के माध्यम से संस्कृति को जीवित रखा गया। संगीत, कला और साहित्य के पारखी महाराणा कुंभा द्वारा प्रेरित एवं निर्मित सभी मंदिर प्रस्तर के हैं।

नागर शैली से अलंकृत, ऊँची पीठ पर अवस्थित तथा सोनाणा और सेवाड़ी के पत्थर से निर्मित इन मंदिरों में गर्भ-गृह, सभामंडप, अर्धमंडप, प्रदक्षिणा-पथ एवं आमलक शिखर की प्रधानता है। जैन-मंदिरों के निर्माण की दृष्टि से भी यह समय बहुत ही रोचक रहा। संवत १४९६ की बात है। जब पोरवाल-जातीय संघपति धरणाशाह ने ९९ लाख की लागत से एक तिमंजले चतुर्मुख जिन-प्रासाद का निर्माण करवाया था। धरणाशाह भूतपूर्व सिरोही राज्य में नंदीपुर गाँव के थे। वे समसामयिक राजनीतिक परस्थितिवश बाद में 'मेदपाट प्रदेश' के अंतर्गत मालगढ़ नामक गाँव में रहने

लगे थे। जब महाराणा कुंभा ने यह सुना कि धारणाशाह सपरिवार मालगढ़ में आ बसे तो उन्होंने विश्वासपात्र सामंतों के माध्यम से धरणाशाह को रोज सभा में बुला कर अच्छा मान-सम्मान दिया।

कहते हैं जिनेश्वर उपासक धरणाशाह ने एक रात स्वप्न में 'नलिनीगुल्म' विमान देखा, तभी उस ने इस आकृति का जिनप्रासाद बनवाने की प्रतिज्ञा की। दूर-दूर से चतुर शिल्पियों को बुलवाया गया और प्रारंभिक चित्र तैयार किये गये। इन में से मुंडारा गाँव के देपाक नामक शिल्पी ने 'त्रैलोक्यदीपक' नामी इस मंदिर का सही स्वप्नचित्र तैयार किया, अतः उसे ही धरणाशाह ने प्रमुख कारीगर बनाया। धरणाशाह ने धूमधाम से धरण-विहार नामक चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय की संवत १४९५ में नींव डाली। संवत १४९८ में यह पूरा हुआ।

सेवाड़ी प्रस्तरों से बना इस मंदिर का चतुष्क ४८ हजार वर्गफुट का है जिस पर २४ रंगमंडप, १८४ भूगृह, ८५ शिखर और १४४४ सुंदर स्तंभ हैं। चार दिशाओं में प्रवेश के चार विशाल दरवाजे हैं, जिन से करीब २५ सीढ़ियाँ



रणकपुर मंदिर (बायें)
मंदिर की कुछ सुंदर मूर्तियाँ (सामने)

चढ़ कर मंदिर की प्रथम भूमिका आती है। आदिनाथ त्रैलोक्यदीपक मंदिर के चारों द्वारों के साथ एक बड़ा मंदिर है। इस प्रकार यहाँ के मंदिर समुदाय में ८४ देवकुलिकाएँ (मठियाँ) हैं, जिन की निर्माण-कला देखने दूर-दूर से अनेक भक्त और पर्यटक आते हैं। 'सोमसौभाग्य काव्य' से पता चलता है कि रणकपुर के इस मंदिर-प्रतिष्ठान में धरणाशाह की कुमकुम-पत्रियाँ पा कर कोई ५२ बड़े संघ और ५०० साधु आये थे। मंदिर के मध्य भाग में चतुर्मुख देवकुलिका है, जिस की जंघा पर बनी मूर्तियाँ बड़ी मनोरम हैं। स्त्री-मूर्तियाँ प्रायः नृत्यमय हैं तथा कानों में कुंडल एवं हाथों में कंगन पहने हैं। छह हाथवाली भैरव की मूर्ति के साथ-साथ यहाँ नग्न देवी-प्रतिमाएँ और शृंगाररत नर्तकियों के रूप भी देखे जा सकते हैं। देवकुलिका के चारों तरफ रंग-मंडपों में बाँसुरी टेरती, घुँघरू बजाती, नृत्य करती आठ पुतलियाँ और १६ नर्तकियाँ हैं। स्तंभों पर हाथी, सिंह, घोड़े और फूल-बेल अंकित हैं तथा इस 'त्रैलोक्यदीपक' मंदिर के पूर्वी कोण में धर्मानुरागी धरणाशाह की, हाथ में माला, सिर पर पाग (पगड़ी) और गले में उत्तरीय पहने मूर्ति है। रणकपुर के इस विशाल मंदिर-समूह में देव-प्रतिमाओं के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण शिलालेख भी हैं जिन से तत्कालीन इतिहास को जानने में मदद मिलती है। इतिहासज्ञ फर्ग्युसन के अनुसार--'उत्तरी भारत में कोई अन्य मंदिर ऐसा नहीं देखा गया है जो इतना सुंदर और सज्जित हो।' कर्नल जेम्स टाड ने अपने पश्चिमी भारत के यात्रा-वर्णन में स्पष्ट रूप से 'रणकपुर के कला-वैभव को देखने की तीव्र लालसा' व्यक्त की है। ऐसा सर्वमान्य रणकपुर तीर्थ राजस्थान में गोडवाड़ क्षेत्र के पंच-तीर्थों (घाणेराव, नाडलाई, नकाडोल, वरकाँठा और रणकपुर) में एक है। १७ वीं शताब्दी की 'हीर-विजयसूरि,' नामक कृति में तो यहाँ तक कहा गया है--

गढ़ आबू नवि फरसियो, नु सुणियो हीर नो रास।
राणकपुर नर नवि गयो, तिण्ये गर्भावास।।

अर्थात, जिस ने रणकपुर की यात्रा नहीं की उस का जन्म लेना ही व्यर्थ है। इसी तरह समयसुंदरजी के 'यात्रा-स्तवन' के अंतर्गत वर्णन मिलता है कि रणकपुर आदिनाथ प्रभ का पावन धाम है--

राणपुरइ रलि आमणऊ रे लाल, श्री



आदीसर देव। मन मोहयऊ रे। उत्तंगतोरेण देहराउ रे लाल, निरखी-जइ नितमेव। मन मोहयऊ रे। चन्द्र वीस मंडप चिहु दिसइ रे लाल, चहुमुख प्रतिभा चार। मन मोहयऊ रे। त्रैलोक्यदीपक देहराउ रे लाल, समवड़ि र्नाहि को संसार। मन मोहयऊ रे। भगवान आदिनाथ का यह चौमखा त्रैलोक्य-दीपक मंदिर पहले सात मंजिल में बनने वाला था, पर कारणवश न बन सका। यहाँ यह भी उल्लेखनीय होगा कि मंदिर में विभिन्न जैन तीर्थ, तीर्थंकर और कला-साहित्य-संबंधी चित्रांकन के साथ-साथ मिथन-युग्म मूर्तियाँ भी हैं।

इस भव्य मंदिर के निर्माता धरणा-शाह के संबंध में एक रोचक कथा सुनने में आती है। कहा जाता है कि एक दिन धरणाशाह ने घी में पड़ी मक्खी निकाल कर जूती पर रख ली। यह कृत्य किसी शिल्पी ने देख लिया। शिल्पियों को शंका हुई कि ऐसा कंजूस भला इतना बड़ा जिना-लय कैसे बनवायेगा। परीक्षा के लिए शिल्पियों ने नींव खोदते समय धरणाशाह से कहा कि नींव पाटने में सर्वधातुओं का प्रयोग होगा, नहीं तो इतना विशाल मंदिर केवल प्रस्तर की दीवारों पर नहीं ठहर पायेगा। धरणाशाह ने देखते-देखते अतुल मात्रा में 'सर्वधातु' एकत्रित करवा दी। इस पर शिल्पियों ने सोचा कि 'मक्खी' वाली घटना कृपणता की परिचायक नही अपितु बुद्धिमता की द्योतक थी।

रणकपुर का यह मंदिर चतुर्मुख-प्रासाद भी कहलाता है, क्योंकि इस के चार कोणों में चार शिखरबद्ध देवकुलि-काएँ हैं। चतुष्क ठीक बीचोंबीच बना है, चार दिशाओं में चार मेघमंडप चार रंगमंडप और प्रत्येक वेदिका पर चतु-र्मुखी श्वेत प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं, या यों कहें कि इस मंदिर की हर प्रतिमा और खंड चतुर्मुखी है।

रणकपुर के इस मुख्य मंदिर से कुछ दूरी पर प्रसिद्ध सूर्य-मंदिर है जिस में सर्वत्र सूर्य सात घोड़ों पर सवार है। इसे महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित माना जाता है (पर इतिहास इस संबंध में मौन है)। मंदिर में सूर्य के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश और गणेश की मूर्तियों के साथ-साथ युद्धरत हाथी भी दर्शाये गये हैं।

इस प्रकार रणकपुर का यह अलौ-किक मंदिर-समूह महाराणा कुंभा-जैसे कलाप्रेमी और धरणाशाह-जैसे धर्मा-नुरागियों की यश-गंगा का पुण्यतीर्थ है, जिस पर भारत के धर्मजगत को ही नहीं कला, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्रों को भी गर्व है।

प्रमोद : मैं जो भी काम करता हूँ तो कमाल होता है।
अरविंद : तुम कोई काम करते हो, यही क्या कम कमाल है !





दीवार पर कोयले से लिखा दुखड़ा

● कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

मुझ पर 'प्लूरिसी' (फेफड़े की झिल्ली का रोग) का दूसरा आक्रमण था।

'विकास'-संस्था का लगभग पाँच वर्ष लंबा भयानक मोर्चा लड़ने के बाद साँस भी न ली थी कि वीर पत्नी श्रीमती रामकली 'प्रभा' की मृत्यु हो गयी। परिवार के बिखरे भवन की ईंटें समेट ही रहा था कि १९४२ की अगस्त-क्रांति आ गयी। मुझे तो जेल जाना ही था, पर 'डिफेंस आफ इंडिया रूल्स' के राक्षसी पंजे ने 'विकास'-संस्था के कामों पर ताला लगा दिया।

नादिरशाही स्वभाव के कलक्टर लायड को इस से भी संतोष न हुआ। उस ने 'डिफेंस आफ इंडिया रूल्स' की राक्षसी तलवार का दूसरा वार किया और सेनाओं के लिए अनाज का गोदाम बनाने के नाम पर 'विकास'-संस्था का मकान भी खाली करा लिया। मेरा पुत्र अखिलेश तब चौदह-पंद्रह साल का था। उस ने जाने कैसे 'विकास'-प्रेस का सामान उठवाया और इधर-उधर रखा। स्वयं, अपनी छोटी बहिन और बूढ़ी ताई के साथ एक संबंधी के घर आश्रय लिया। इस सब की सूचना मुझे जेल में मिली।

मेरा मन, संकट में स्थिरता जिस का सहज संस्कार है, अँधेरे में राह खोज ही रहा था कि मैं जेल से छूट गया। सीखचों से बाहर आ कर हमेशा दुनिया बहुत बड़ी दिखायी दिया करती थी, पर इस बार मुझे यही मालूम न था कि मेरा घर कहाँ है! गलियों के चक्कर काटता घर पहुँचा। यह बड़े-बड़े कमरों का बँगला नहीं था, कोठरी थी। कोठरी भी कबाड़ी की दुकान हो रही थी। उस में सामान सजा न था, लगा न था, भरा न था, ठुँसा था।

अखिलेश मुझे वे स्थान दिखाने ले चला जहाँ उस ने प्रेस की मशीनें, टाइप-रैक और दूसरी चीजें रखी थीं। मशीन की भारी बॉडी किसी कृपालु मित्र की



● कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

दीवार पर कोयले से लिखा

मुझ पर 'प्लूरिसी' (फेफड़े की झिल्ली का रोग) का दूसरा आक्रमण था।

'विकास'-संस्था का लगभग पाँच वर्ष लंबा भयानक मोर्चा लड़ने के बाद साँस भी न ली थी कि वीर पत्नी श्रीमती रामकली 'प्रभा' की मृत्यु हो गयी। परिवार के बिखरे भवन की ईंटें समेट ही रहा था कि १९४२ की अगस्त-क्रांति आ गयी। मुझे तो जेल जाना ही था, पर 'डिफेंस आफ इंडिया रूल्स' के राक्षसी पंजे ने 'विकास'-संस्था के कामों पर ताला लगा दिया।

नादिरशाही स्वभाव के कलक्टर लायड को इस से भी संतोष न हुआ। उस ने 'डिफेंस आफ इंडिया रूल्स' की राक्षसी तलवार का दूसरा वार किया और सेनाओं के लिए अनाज का गोदाम बनाने के नाम पर 'विकास'-संस्था का मकान भी खाली करा लिया। मेरा पुत्र अखिलेश तब चौदह-पंद्रह साल का था। उस ने जाने कैसे 'विकास'-प्रेस का सामान उठवाया और इधर-उधर रखा। स्वयं, अपनी छोटी बहिन और बूढ़ी ताई के साथ एक संबंधी के घर आश्रय लिया। इस सब की सूचना मुझे जेल में मिली।

मेरा मन, संकट में स्थिरता जिस का सहज संस्कार है, अँधेरे में राह खोज ही रहा था कि मैं जेल से छूट गया। सीखचों से बाहर आ कर हमेशा दुनिया बहुत बड़ी दिखायी दिया करती थी, पर इस बार मुझे यही मालूम न था कि मेरा घर कहाँ है! गलियों के चक्कर काटता घर पहुँचा। यह बड़े-बड़े कमरों का बँगला नहीं था, कोठरी थी। कोठरी भी कबाड़ी की दुकान हो रही थी। उस में सामान सजा न था, लगा न था, भरा न था, ठुँसा था।

अखिलेश मुझे वे स्थान दिखाने ले चला जहाँ उस ने प्रेस की मशीनें, टाइप-रैक और दूसरी चीजें रखी थीं। मशीन की भारी बॉडी किसी कृपालु मित्र की

दहलीज में एक तरफ पड़ी थी तो उस का पहिया किसी दूसरे मित्र की छत पर रखा था। कुछ टाइप कहीं था, कुछ कहीं। मैं जहाँ भी गया, बच्चे टाइप के अक्षरों से खेल रहे थे। उन का खेल टाइप को बेमेल कर रहा था, पर उपाय क्या था !

हाँ, उपाय कुछ न था–'मेरी दुनिया लुट रही थी और मैं खामोश था !!' मेरी आठ वर्षों की कठोर साधना रद्दी के टुकड़ों की तरह मेरे सामने बिखरी पड़ी थी। मुझे लगा कि मेरी पसलियाँ बिखर गयी हैं। क्या मैं इन बिखरी पसलियों को फिर से समेट सकूँगा ? मेरी आत्मा के गुंबद में यह प्रश्न चीखा और अपने ही प्रतिघोष में गूँज कर रह गया, उस का कोई उत्तर मुझे नहीं मिला।

मुझ पर 'प्लूरिसी' का यह दूसरा आक्रमण था ! 'प्लूरिसी' का मुझे पहली बार का अनभव था और मैं ने जीवन के आनंद-प्रवाह की एक बूँद बिना लटाये उस से टक्कर ली थी, उसे पछाड़ा था; पर इस बार कुछ और ही बात थी। यह क्या बात है ? रोग-शय्या पर पड़े-पड़े मै इस प्रश्न का विवेचन-विश्लेषण करता रहा। कई दिन बाद मुझे जो उत्तर मिला उस ने मुझे अवसन्न कर दिया। इस बार मेरे विचार भी बीमार हो गये थे। अपनी भाषा में कहूँ–मेरे शिव-संकल्प सो गये थे। प्रयत्न करने पर भी भविष्य का कोई आशामय स्वप्न उन में जागता ही न था।

चिकित्सा ठीक-ठीक हो रही थी। आहार और विश्राम की व्यवस्था ठीक थी। निवास भी बदल गया था और अकेलापन भी न था, पर विचारों की शून्यता-अस्वस्थता इतनी गहरी थी कि उस में कलेजे की धड़कनें बेजान हो गयी थीं। जीवन के सब स्वप्न गहरी नींद में सो गये थे। मेरे बौद्धिक प्रयत्नों की आवाज उन तक पहुँचती ही न थी। मेरी हर साँस मत्यु का टाइमटेबिल बन रही थी। मेरे मन में मृत्यु अब निश्चित थी। डाक्टर आते, मुझे देखते, फिर एक-दूसरे को अर्थ-भरी आँखों से ताकते, जैसे कह रहे हों–दवा का कुछ भी असर नहीं ?

वे सोचते, आपस में सलाह करते, दवा बदलते, मुझे बहलाते और चले जाते, पर स्थिति में अंतर न आता। मैं इलाज बंद कर देने का आग्रह करता, क्योंकि मेरे मन में बात पूरी तरह बैठ गयी थी कि जो होना था हो चुका, अब कुछ नया होना-जाना नहीं है। मेरे लिए जीवन का सब से बड़ा सत्य यही था कि मैं मर रहा हूँ।

यों ही महीनों बीत गये। वजन काफी घट गया और शक्तिहीनता इस हद तक आ गयी कि पलंग पर बैठने के लिए भी किसी का सहारा लेना पड़ता था। मेरी मूल वृत्ति जीवन है–संकट से न घबराना, उस से जम कर पंजा लड़ाना और अपनी विजय के विश्वास से भरपूर रहना। यह वृत्ति अब इतनी ही शेष थी कि मृत्यु के प्रति मैं निश्चित था, उस से परेशान न था, उस के लिए बिना दुख के प्रस्तुत था। सब कुछ जैसे टूट गया

था। मेरे विचार बीमार थे। नाश ही नाश उन में भर गया था।

एक दिन शाम को मैं पलंग पर अधमरा-सा पड़ा था कि मेरा पुत्र अखिलेश बाहर से आया। उस के दो साथी भी साथ थे। समय की बात, तभी पास के घर से बेटी शारदा और कुसुम जैन भी आ गयीं। अखिलेश ने कहा, "डाक्टर विश्वास ने कहा है कि कल सुबह वे आप को देखने आयेंगे और शहर के दो प्रमुख डाक्टरों को भी साथ लायेंगे!" डाक्टर ए० एम० विश्वास मेरे प्रति आत्मीयता रखते हैं और एक आत्मीय की तरह ही वे मेरी चिकित्सा कर रहे थे। उन के लिए मेरे मन में आदर है। अपने स्वभाव, विशेषज्ञता और चरित्र के कारण वे हैं ही आदरणीय। उन से मिल कर मुझे सदा मानसिक सुख मिलता है पर विचार इतने जर्जर थे कि उन के आने की बात सुन मुँह से निकला—"क्या करेंगे वे आ कर, उन्हें मना कर देना।" अखिलेश ने मेरी तरफ देखा और दुख में डूब गया। शारदा और कुसुम भी आहत हुई दुख से।

मेरे मन की एक कोमल वृत्ति है कि मैं किसी को दुखी नहीं देख सकता। मैं सतर्क हुआ कि वातावरण बदलूँ। सब की ओर देखा। अखिलेश के हाथ में एक पत्र था—'जयाजी प्रताप' साप्ताहिक। मुझे दुख का वातावरण बदलना था, इसलिए कहा—"शारदा बेटी, कोई बढ़िया-सा लेख सुनाओ।"

वह एक लेख पढ़ने लगी। मेरी कृतज्ञता में पगा यह नाम मुझे युगों के बाद भी स्मरण है—डाक्टर रमण बसा। यह लेख डाक्टर बसा के एक भाषण का सार था। इस में विद्यार्थियों का संगठन किस आधार पर हो, इस विषय में एक अनुभवपूर्ण सुझाव था। मुँह से सहसा निकला—"जरा स्वस्थ हो जाऊँ, तो मैं भी अपने नगर में इसी आधार पर विद्यार्थियों का संगठन करूँगा।"

यह क्या हुआ कि मेरे लैंप की रोशनी बढ़ गयी! यह क्या हुआ कि कहीं दूर से खुशबूदार हवा का झोंका आ गया! यह क्या हुआ कि घनी अँधेरी रात में उषा की चमक फैल गयी! मेरे अवसन्न मन में महीनों बाद मृत्यु के सघन कुहरे को चीर कर जीवन की यह नन्ही किरण कहाँ से आ गयी? मुझे बहुत अच्छा-अच्छा लग रहा था। मेरी साँस बदल गयी थी—वह अब उतनी बोझिल न थी।

लड़के-लड़कियाँ मेरे पलंग के पास बैठे-खड़े आपस में बात कर रहे थे। किसी के बोलने से मुझे कुढ़न होती थी, पर उस समय की बातों में प्रभाती चिड़ियों की चहक मुझे सुनायी दी। उन्हें सुनने से मेरे कानों में मिश्री घली। मैं बातें सुनने लगा। अखिलेश अपने किसी साथी से विवेकानंद का नाम ले कर कोई बात कह रहा था, पर बात बंगभंग की थी और विवेकानंद उस से पहले मुक्त हो चुके थे। मैं बिना सहारा लिये पलंग पर बैठ गया। कहा, "अखिलेश, तुम लोगों का सामान्य

ज्ञान बड़ा अधूरा है । मैं जरा स्वस्थ हो जाऊँ, तो चालीस दिन की एक क्लास लूँगा । तुम अपने सब साथियों को उस में बुलाया करना ।"

मुझे लगा कि मेरे रोग का किला टूट गया है; मृत्यु दूर जाने के लिए अपना सामान बाँध रही है और मेरे आसपास अँधेरा नहीं, प्रकाश ही प्रकाश फैला है । कितनी विचित्र बात कि अभी कुछ क्षण पहले मेरा जो शरीर तड़के हुए काँच की तरह था, वह लोहे की मजबूती अनुभव कर रहा था। अवसाद और गिरावट मुझ से दूर थे और मैं अपने शरीर में, मन में, मस्तिष्क में एक अजीब स्फूर्ति अनुभव कर रहा था।

यह स्फूर्ति किस दर्जे की थी ? बिना किसी का सहारा लिये ही नहीं, लगभग कूद कर मैं पलंग से नीचे उतरा। झपट कर पलंग से सात-आठ गज दूर अपनी रसोई में गया । चूल्हे से एक कोयला उठा कर झपटा-झपटा पलंग तक आया । लगभग उछल कर पलंग पर चढ़ा और खड़े ही खड़े पास की दीवार पर मैं ने कोयले से लिखा--'**मृत्योर्मामृतं गमय**'--मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चल मेरे प्रभु !

सब स्तब्ध थे, विस्मित थे, पर मैं भी विस्मित था अपनी स्थिति पर कि यह क्या हुआ पलक झपकते ! क्या रोग घेरा बिना तोड़े ही टूट गया ? कैसे टूटा वह अभेद्य दुर्ग ? प्रश्न ही प्रश्न थे चारों ओर और समाधान यही था कि मैं अपने को मृत्यु के जबड़े से बाहर अनुभव कर रहा था । सचमुच वह खौफनाक जबड़ा, जिस में महीनों से दबा हुआ था, पिस रहा था, टूट गया था !

रात में मुझे और ही तरह की नींद आयी । हाँ, और ही तरह की--बीमार-जैसी नहीं कि शरीर का हर अंग अलग मालूम दे--एक जीवित व्यक्ति की नींद। मैं सुबह उठा तो मुझे बहुत दिनों के बाद सुबह महसूस हुई, महकती सुबह, चहकती सुबह कि सब कुछ जीवित, सब कुछ जाग्रत, सब कुछ प्रसन्न ।

कोई नौ बजे डाक्टर विश्वास मुझे देखने आये--हर चौथे दिन आते थे। मुझ में इतनी ताजगी थी कि बैठने से पहले ही उन्हें वह दिखायी दी । बोले, "एलेक्सिर निगोडीन खूब काम कर रही है । अब आप जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे ।"

"निगोड़ी निगोडीन मैं अब नहीं पिऊँगा डाक्टर साहब !" मैं ने उत्फल्लता से कहा, तो वे चौंके--"क्यों ?"

मैं गंभीर बन गया--"मैं ने एक दूसरे डाक्टर से नस्खा ले लिया है।"

डाक्टर विश्वास गंभीर हो गये--"देखूँ वह नुस्खा ?"

मैं ने अँगुली के इशारे से उन की निगाह दीवार पर टिका दी । उन्होंने देखा, पढ़ा--**मृत्योर्मामृतं गमय** ! डाक्टर विश्वास खूब खिलाखिला कर हँसे। उन्होंने मेरी देह-परीक्षा की, विस्मित हुए कि मैं रात भर में बदल गया हूँ। "डाक्टर साहब, मैं अब कोई दवाई नहीं लूँगा, क्योंकि मैं नहीं, मेरे विचार बीमार थे

और वे दीवार पर कोयले से लिखे इस नुस्खे से ठीक हो गये है ।" जब-तब मेरा ध्यान दीवार पर जा टिकता, मैं जोर से पुकारता–**मृत्योर्मामृतं गमय**– और अनुभव करता कि मैं ने दवा की एक और खुराक पी ली है। ज्यादा नहीं, कुछ ही सप्ताहों के बाद मैं पूर्ण स्वस्थ था।

क्या यह कोई चमत्कार था? हाँ, यह चमत्कार था–– विचारों के जादू का चमत्कार। यह विचारों की पैगंबरी थी, विचारों का टोटका था।

टोटका? मुझे अपनी माँ याद आयी। मुझे एक बार तैया (तीसरे दिन चढ़ने वाला बुखार) आने लगा। इलाज किया, पर नहीं छूटा। माँ ने बारू सयाने को बुलाया। उस ने बताया–"बुखार चढ़ने के समय से एक घंटा पहले पलंग पर एक मूसल इस के हाथ से लिटा कर उसे लिहाफ उढ़ा देना। यह लड़का मूसल से कहे कि ले भाई, तू मेरी जगह लेट जा और तू ही मेरे मेहमान की खातिर करना।" मैं ने अपने बिस्तर पर मूसल लिटा दिया और वह बात मसल से कह दी। माँ ने पूरे आत्म-विश्वास के साथ कहा, "तू पलंग के पास मत जाना। बुखार आयेगा तो मूसल को लिपट जायेगा।" पता नहीं, बेचारे मूसल का क्या हुआ, पर सचमुच मुझे उस दिन बुखार नहीं चढ़ा। यह क्या बात हुई? यह बात भी वही विचारों की पैगंबरी थी। माँ के अंध-विश्वास से मुझ में आत्म-विश्वास पैदा हो गया था कि मैं जब बुखार के आने पर वहाँ होऊँगा ही ही नहीं तो वह मुझे चढ़ेगा कैसे?

हम क्या हैं? हम कैसे हैं? हम वह हैं जैसा अपने को मानते हैं-**यों यच्छ्रद्धः सः एव सः**-जिस की जैसी श्रद्धा है, वह वही है। जो मानता है, विश्वास करता है कि मैं अभागा हूँ, उसे भाग्यवान कौन बना सकता है? सफलता कर्म को तभी मिलती है, जब कर्त्ता में सफलता का अखंड विश्वास हो। सूक्ति है–**विश्वास फलदायकः**।

ईसाई धर्म-ग्रंथ में हम पढ़ते हैं कि ईसा ने बीमार के सिर पर हाथ फेरा और वह चंगा हो गया। यह क्या बात है? विश्वास का चमत्कार है, विचारों की पैगंबरी है। ईसा की सफलता यह नहीं है कि उन्होंने रोग भगा दिया। उन की सफलता यह है कि वे रोगी में यह विश्वास पैदा कर सके कि महात्मा ईसा के हाथ रखने से मैं अच्छा हो जाऊँगा।

आप बीमार हो गये, यह कोई बीमारी नहीं है, क्योंकि विचार और विश्वास की स्वस्थता से आप उसे समय पर सह लेंगे, पर सावधान रहिये कि कभी भी आप के विचार और विश्वास अस्वस्थ न हों– उन्हें हमेशा स्वस्थ रखिये। बीमार होता है शरीर और हम शरीर नहीं हैं–सदा स्वस्थ, सबल, निर्मल आत्मा हैं हम। ●

आशा सूरज की तरह है। जब हम उस की ओर बढ़ते हैं तो हमारी मुसीबतों की परछाईं हमारे पीछे की ओर ही रहती है।

––सेम्युअल स्माइल्स

मोतियों की माला

● ब्रह्मदेव

जगतनारायण को दो बातों पर गर्व था। प्रथम तो यह कि जगत ऐंड कंपनी उसी के हाथों एवं मस्तिष्क के कारण आज संसार में हीरों-जवाहरातों की प्रमख संस्था थी। दूसरी बात यह कि आज तक उसे कोई धोखा नहीं दे पाया था। जगतनारायण कद में ठिगना था और शायद इसीलिए कोई यह अनुमान नहीं कर पाता था कि उस की पचपन वर्ष की उम्र हो गयी है।

मई की एक दोपहरी में जगतनारायण के एक सहायक ने एक रईस का विजिटिंग-कार्ड ला कर दिया, जिस पर सुनहरी शब्दों में छपा था : रईस कपूरचंद। फौरन जगतनारायण ने उन्हें अपने अंदर के कमरे में बुलवाया और पूछा, "कहिये, मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

रईस कपूरचंद लंबे-तगड़े थे और उन के व्यक्तित्व पर विदेशी टेरीलीन की चमक थी। सोफे पर बैठते हुए बोले, "मेरी लड़की का विवाह होने वाला है।"

जगतनारायण बोले, "तो आज्ञा दीजिये।"

कपूरचंद बोले, "हम बीस वर्ष से सिंगापुर में हैं और वहाँ मैं अपने काम में इतना उलझा रहा कि अपने परिवार को समय ही नहीं दे पाया। अतः, मैं चाहता हूँ कि बेटी को विवाह के समय ऐसा उपहार दूँ जो संसार में सर्वश्रेष्ठ हो। इसीलिए आप का नाम सुन कर आया हूँ। अब मुझे फिर काम के सिलसिले में तीन मास के लिए आस्ट्रेलिया जाना है। मैं ने सोचा कि एक मोतियों की माला उसे भेंट में दूँ, ऐसी माला जिस का हर दाना बराबर हो, तराशा हुआ और खूबसूरत।"

जगतनारायण चश्मे के मोटे शीशे से झाँकते हुए बोले, "क्यों नहीं, क्यों नहीं ! मैं हर प्रकार की सेवा को तैयार हूँ।"

कपूरचंद बोले, "बेहतरीन होना चाहिए। लागत की कोई बात नहीं, चार लाख रुपये तक उस में लग जायें। मेरा खयाल है कि ऐसी चीज जुटाने में आप को तीन महीने का वक्त काफी होगा !"

फिर कपूरचंद ने चेकबुक निकाली और लिखने लगे। चेक जगतनारायण को देते हुए वे बोले, "यह रहा बयाना, पचास हजार रुपये। मैं तीन महीने बाद आ कर मोतियों की माला ले लूँगा।" इतना कह कर कपूरचंद उठे। जगत-



नारायण भी खड़े हो गये। दोनों ने हाथ मिलाये। फिर कपूरचंद अपनी लंबी-चौड़ी कार में चले गये।

तीन महीने बाद कपूरचंद फिर उसी कमरे में लाये गये। जगतनारायण ने एक बढ़िया मलमल का डब्बा सेफ में से निकाल कर उन के सामने रख दिया।

"सुंदर, अति संदर" के अतिरिक्त कपूरचंद कुछ बोल ही न पा रहे थे। जगत-नारायण ने इतना ही कहा, "सुंदर ही नहीं, सर्वश्रेष्ठ मोतियों की माला है यह!"

कपूरचंद बोले, "मेरी पत्नी चलने-फिरने में असमर्थ हैं, कुछ वर्ष पहले उन के धड़ को लकवा मार गया था, सो अपनी पुत्री को भेंट देने से पहले वे एक बार इसे देख लेतीं तो अच्छा रहता। क्या आप इस को मेरी कोठी पर भिजवा देंगे?"

जगतनारायण बोले, "मै स्वयं ले कर हाजिर हो जाऊँगा।"

कपूरचंद बोले, "ठीक है, तब आज शाम की चाय हमारे साथ ही पीजियेगा।"

जगतनारायण कपूरचंद की कोठी पहुँचे। कुछ देर में एक सेविका श्रीमती कपूरचंद को एक पहियेवाली कुरसी में ले कर उपस्थित हुई। मोतियों का हार देख कर श्रीमती कपूरचंद की आँखों में खुशी के आँसू उमड़ आये। सेविका श्रीमती कपूरचंद को अंदर ले गयी और जगत-नारायण ने माला अपनी जेब में रख ली।

चाय पीते हुए कपूरचंद ने एक बार माला देखने के लिए माँगी। जब वे उस की खूबसूरती निहार रहे थे तब पास के कमरे में किसी के आने की आहट हुई और साथ ही आवाज भी आयी, "पिताजी!"

मोतियों की माला की भेंट के विषय में लड़की को कुछ बताया नहीं गया था वे तो इसे विवाह के अंत में दे कर अपनी बेटी को आश्चर्यचकित करना चाहते थे। कपूरचंद के चेहरे पर क्षण भर के लिए चौंकने के भाव आये। उन्होंने तुरंत पास पड़ी एक पुरानी मेज की दराज खोली और उस में मोतियों की माला को रख दिया।

कपूरचंद की बेटी केवल सुंदर ही नहीं, वरन अपने नवीनतम विदेशी कपड़ों में किसी संगमरमर की मूर्ति से भी ज्यादा सुंदर लग रही थी। जगतनारायण तो उसे देखते ही रह गये।

कपूरचंद ने दोनों का परिचय करवाया और फिर बोले, "बेटी अनपमा, जरा 'अंकल' को वह गाना तो सुना दो जो तुम ने सिंगापुर की नववर्ष की पार्टी के लिए विशेष रूप से सीखा था।

अनपमा प्यानो की धुन के साथ गाने लगी। जगतनारायण गाना सुनने में मस्त हो गये। इतने में एक वर्दीधारी अर्दली आया और उस ने कपूरचंद के कान में कुछ कहा। कपूरचंद उठे और 'अभी आया' का इशारा हाथों से करके अर्दली के साथ चले गये। जगतनारायण भावविभोर हो अनुपमा की स्वर-साधना का आनंद उठाने में मग्न रहे।

इतने में अनपमा ने देखा कि उस के पिता कमरे में नहीं हैं। उस ने गाना बंद कर दिया, पूछा, "पिताजी कहाँ हैं?"

जगतनारायण ने कहा, "बाहर गये हैं, शायद कोई आया है।"

"मैं अभी उन्हें ले आती हूँ।"

पाँच मिनट गुजर गये और फिर दस। पूरे घर में चुप्पी छायी थी। जगतनारायण उठ कर चहलकदमी करने लगे। दरवाजों पर भारी-भारी परदे पड़े थे। अंत में हिम्मत करके उन्होंने हर दरवाजे पर दस्तक दी। कोई उत्तर नहीं आया। वे लपक कर उस मेज के पास गये जिस की दराज में कपूरचंद ने माला रखी थी।

मेज में दराज भी नहीं थी--दराज वहाँ कभी थी भी नहीं। वहाँ तो केवल एक पाइप था जिस में चारों ओर मखमल लगी थी, ताकि जब माला उस में लुढ़क कर पाइप द्वारा दूसरे कमरे में जाये तो कोई आवाज न हो।

जगतनारायण कोठी से बाहर आ गये। उन्हें पक्का यकीन था कि इस कोठी में इस समय कोई नहीं होगा, सब भाग चुके होंगे। घर पहुँच कर उन्होंने एक चित्र के पीछे बनी एक तिजोरी का दरवाजा खोला, कोट के अंदर की जेब से मोतियों की माला निकाली और उस में रख कर तिजोरी का दरवाजा बंद कर दिया। उन का यह गर्व कि उन्हें आज तक किसी ने धोखा नहीं दिया उस दिन और भी बढ़ गया। उन्होंने अपनी अक्ल की दाद दी कि पचास हजार रुपये में नकली मोतियों की माला उन से और कौन खरीद सकता था--सिवा किसी ठग के जो स्वयं ठगा गया!

(फिलिप वायली की एक कहानी पर आधारित)



वीरेन्द्रकुमार खुल्लर, दिल्ली : हिप्नोटिज्म की परिभाषा दीजिये। उस का आविष्कार कब, किस ने किया? विस्तार से स्पष्ट कीजिये कि यह एक-कुविद्या है या सु-विद्या? क्या किसी को जबरदस्ती हिप्नोटाइज किया जा सकता है?

हिप्नोटिज्म वह विद्या है जो एक ऐसी मानसिक स्थिति पैदा करती है, जिस से व्यक्ति की आत्म-निर्णय की क्षमताएँ शून्य अथवा शून्यप्राय हो जाती हैं और वह हिप्नोटाइज करने वाले के आदेशों के सामने सभी हथियार डाल देता है। यह अनिवार्य नहीं है कि हिप्नोटाइज किया हुआ व्यक्ति हमें 'ट्रांस' की सपनीली स्थिति में ही दिखायी पड़े। वह बिलकुल एक आम आदमी-जैसा भी दिखायी पड़ सकता है, भले ही उस की स्थिति किसी आज्ञाकारी पुतले से अधिक कुछ न हो।

दक्षिणी जरमनी के डाक्टर फ्रांज एंटन मेस्मर ने आस्ट्रिया के विएना शहर में, १७६५ में, अपनी प्रैक्टिस शुरू की थी। उस का इस मान्यता पर गहरा विश्वास था कि चाँद-तारों इत्यादि से विशेष प्रकार की चुंबकीय किरणें छूटती रहती हैं, जो मनुष्य पर गहरा शारीरिक और मानसिक प्रभाव डालती हैं। इन किरणों की शक्ति को उस ने 'जैविक चुंबकत्व' या 'एनिमल मैग्नेटिज्म' नाम दिया था। वह सचमुच के विराट चुंबकों की शक्ति-लहरें फेंक कर अपने मरीजों के अव्यवस्थित 'जैविक चुंबकत्व' को व्यवस्थित करने लगा। मानसिक रोगों के उपचार में उसे इतनी सफलता मिली कि विएना में सनसनी फैल गयी, मगर अन्य डाक्टरों ने मेस्मर के सिद्धांतों को पागलपन घोषित किया। 'मेडिकल सोसाइटी' ने मेस्मर को विएना छोड़ कर चले जाने के लिए मजबूर कर दिया। मेस्मर ने पेरिस में जमना चाहा, मगर वहाँ भी ये ही स्थितियाँ उस के इंतजार में थीं। तब तक मेस्मर ने यह भी प्रतिपादित कर दिया था कि सचमुच के चुंबकों से ही नहीं, बल्कि मरीजों के झुंड के सामने चिकित्सक केवल अपने हाथ हिला कर भी उन के 'जैविक चुंबकत्व' को

व्यवस्थित कर सकता है। अंततः मेस्मर को पेरिस से भी भागना पड़ा। वह जरमनी के एक गाँव में बस गया और अपने सिद्धांतों को लिपिबद्ध करने लगा, ताकि भविष्य में कभी उन का मूल्यांकन हो सके। 'मेस्मरिज्म' शब्द मेस्मर के नाम पर ही आधारित है। आज मेस्मरिज्म के आविष्कार को चिकित्सा-विज्ञान की सब से महत्त्वपूर्ण घटनाओं में गिना जाता है। मेस्मरिज्म के मूल सिद्धांतों का ही परीक्षण और परिवर्द्धन करके चारकाट, जेन, फ्रायड, ब्रूयर, मिशेल, मैक्डोगैल इत्यादि मनोवैज्ञानिकों-चिकित्सकों ने हिप्नोटिज्म के नये क्षेत्र के द्वार खोले।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में, जब बेहोशी लाने वाले या शरीर का एक विशेष हिस्सा सुन्न कर देने वाले रासायनिक पदार्थों की खोज नहीं हुई थी, यह हिप्नोटिज्म ही था जिस की सहायता से मरीज को बेहोश करके आपरेशन किये जाते थे। शरीर के एक विशेष हिस्से को, हिप्नोटिज्म के सहारे, सुन्न भी किया जा सकता है। हिप्नोटाइज करने वाले के आदेश के अनुसार, मरीज उस विशेष हिस्से में वेदना का अनुभव नहीं करता --हिप्नोटिज्म का प्रभाव इतना अधिक है!

हिप्नोटिज्म एक विद्या ही नहीं, विज्ञान भी है। प्रत्येक विद्या और विज्ञान की तरह, इस का भी सदुपयोग कम, दुरुपयोग अधिक किया गया है। अदालतों में गवाह झूठे बयान देते हैं और उन्हें पता भी नहीं होता कि वे झूठे बयान दे रहे हैं--यदि वे हिप्नोटाइज कर दिये गये हों। ऐसी कोई सर्व-मान्य कसौटी नहीं है जिस से पता चल सके कि गवाह हिप्नोटाइज किया गया है या नहीं। विश्व की अदालतों की न्यायप्रियता को हिप्नोटिज्म बहुत भयावह चुनौती दे रहा है। हिप्नोटाइज करने वाले के आदेश के अनुसार व्यक्ति अपने चारों तरफ साँप बिलबिलाते देख सकता है--चाहे साँप से मिलते-जुलते आकार की कोई चीज आसपास न हो। इसी तरह, ऐन सामने मौजूद कोई व्यक्ति या पदार्थ दिन की रोशनी में भी दिखायी नहीं देगा--यदि हिप्नोटिस्ट वैसा आदेश दे दे! पूर्व-प्रभावित व्यक्ति को समर्थ हिप्नोटिस्ट अपने एक इशारे से पूर्णतया अंधा भी कर सकता है--बेहोश या पागल करना तो बहुत मामूली बात है। हिप्नोटिज्म के प्रभाव में हत्या, आत्महत्या, दुस्साहस, मूर्खता इत्यादि कर जाने वालों की कमी नहीं। एक जगह में बैठे-बैठे दूसरी जगह की हालत बयान करना, प्रेतात्माओं से साक्षात्कार करना, मृत्यु के बाद की दुनिया में जीते-जी सैर कर आना इत्यादि अनेक असंभव बातें हिप्नोटिज्म से संभव हो जाने के दावे समय-समय पर किये गये हैं। हिप्नोटाइज किया जा चुका व्यक्ति किस तरह के सपने देखे, किन विचारधाराओं को अपनाये, किन से कैसे संबंध रखे, इत्यादि सभी संदर्भों में हिप्नोटिस्ट बिलकुल किसी तानाशाह की तरह आदेश दे सकता है।

विशेष तरह के इंजेक्शनों और शारीरिक-मानसिक यातनाओं द्वारा व्यक्ति का आत्म-बल कम करके, उसे हिप्नोटिज्म के जाल में जबरन फँसा लेना असंभव नहीं। युद्ध-कैदियों को हिप्नोटाइज करके उन से शत्रु के भेद उगलवा लिये जाते हैं। मानसिक तनावों को दूर करने में हिप्नोटिज्म का महत्त्व बहुत है। किसी अत्यंत दुष्कर कार्य को प्रारंभ करने से पहले कार्यकर्ताओं का मनोबल हिप्नोटिज्म के जरिए इतना बढ़ाया जा सकता है कि विश्वास ही न हो। मानसिक या शारीरिक आघात के कारण पागल हुए व्यक्ति हिप्नोटिज्म से बिलकुल ठीक हो जाते हैं। हिप्नोटिज्म के सदुपयोगों की संभावनाएँ अत्यंत रोमांचक हैं, लेकिन अभी इस दिशा में जो काम हुआ है वह नगण्य ही कहा जायेगा। अधिकतर काम हिप्नो-टिज्म के दुरुपयोगों की दिशाएँ खोजने के लिए ही हुआ है।

यदि किसी को जबरन हिप्नोटाइज किया जाने लगे तो बचाव का सब से कार-गर उपाय यही है कि आप हिप्नोटिस्ट की आँखों में भूल कर न देखें। उस के किसी भी इशारे पर गौर न करें। उस के स्वर को, स्वर के अर्थ को बिलकुल नकार जायें।

●

शशिकान्त 'मुकुल', जयपुर : जादूगर हौडिनी को पलायनशास्त्री क्यों कहा जाता है ? हौडिनी का संक्षिप्त परिचय भी दें।

हौडिनी को चाहे किसी भी तरह बाँधा या कैद किया जाता, वह उस से जरूर छूट जाता। हथकड़ी, लोहे की जंजीरें, जेल की दुर्भेद्य कोठरियाँ, लोहे की अलमारियाँ जो साँकलों से बाँध कर पानी में डुबा दी जायें—कहीं से भी हौडिनी पलायन कर सकता था। इसीलिए उसे 'एस्केपोलोजिस्ट' या 'पलायनशास्त्री' की पदवी मिली।

हौडिनी का जन्म बुडापेस्ट, (हंगरी) में चौबीस मार्च, १८७४ को हुआ था। उस का वास्तविक नाम था एहरिच वीस। महान फ्रांसीसी जादूगर जीन यूजिन राबर्त हौदिन के रोमांचक संस्मरणों से प्रभावित हो कर एहरिच वीस ने अपना नाम बदल कर हैरी हौडिनी (या हूदिनी) रख लिया। १८८३ में जैक होएफलर के सरकस में हौडिनी ने अपने जादू का पहला व्यावसायिक करतब दिखाया। अपनी मृत्यु (३१, अक्तूबर, १९२६) तक वह लगातार तरक्की करता गया और जादू-गरी के क्षेत्र में अमर हो गया। जहाँ एक ओर उस ने टटपूँजिया जादूगरों की पोल अपने प्राय: हर कार्यक्रम में खोली, वहीं दूसरी ओर उस ने प्रेत-विद्या और जादूगरी पर पुस्तकें भी लिखीं। 'द ग्रिम गेम', 'टेरर आइलैंड' एवं अन्य खामोश फिल्मों में भी हौडिनी ने काम किया था।

●

कुमारी स्निग्धा कपूर, नयी दिल्ली : सीमेंट क्या है ? उस के कितने प्रमुख

प्रकार हैं ? सीमेंट की बोरियों पर अकसर 'पोर्टलैंड' सीमेंट लिखा होता है। इस में 'पोर्टलैंड' का क्या मतलब है ?

पारिभाषिक दृष्टि से ही देखें तो किन्हीं भी दो चीजों को जोड़ देने वाली कोई भी चीज सीमेंट है। गोंद, लाख, मिट्टी, लेई इत्यादि भी सीमेंट के ही अंतर्गत आ सकते हैं, लेकिन सामान्यतः सीमेंट के नाम से जिसे पहचाना जाता है, वह है 'हाइड्रालिक' सीमेंट, जो पानी के साथ रासायनिक प्रक्रिया करके पत्थरों, चट्टानों, ईंटों इत्यादि को न केवल जोड़ता है, उन के बीच की दरारों में स्वयं भी जम कर पत्थर की तरह मजबूत हो जाता है। सीमेंट को प्रमुखतया तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है--'नैसर्गिक,' 'हाई-एल्यूमिना' और 'पोर्टलैंड'।

चूना जब बुझा दिया जाता है तब वह पानी के साथ प्रतिक्रिया करके ताप उत्पन्न करना छोड़ देता है। पानी पड़ने पर ऐसा चूना सीमेंट की तरह जमता भी नहीं, लेकिन यदि उस में विशेष प्रकारकी मिट्टी, पचीस प्रतिशत या उस से अधिक मिला दी जाये, तो यह मिश्रण पानी पड़ने पर धीमे-धीमे जमने लगता है। मिट्टी-विशेष के अलावा सिलिका, एल्यूमिना और मैग्नेशिया भी मिलाया जाता है : यही मिश्रण 'नैसर्गिक' या 'नेचुरल' सीमेंट कहलाता है। यह स्वतंत्र रूप से इस्तेमाल न हो कर अकसर पोर्टलैंड सीमेंट के साथ इस्तेमाल होता है।

'हाई-एल्यूमिना' सीमेंट तैयार करने के लिए चूने के पत्थर और बाक्साइट को मिला कर इतना गरम किया जाता है कि वे पिघल जायें। बाद में उन का बारीक पाउडर बना कर, आवश्यकतानुसार कुछ अन्य चीजें भी मिला कर, सीमेंट के बतौर ऐसी जगहों में इस्तेमाल किया जाता है जहाँ सीमेंट को जमने के लिए अधिक समय दिया जाना असंभव हो। उदाहरण के लिए, किसी व्यस्त सड़क पर मरम्मत या निर्माण।

सब से महत्त्वपूर्ण है 'पोर्टलैंड' सीमेंट। १८२४ में जोसेफ एस्पडिन ने, जो लीड्स (इंगलैण्ड) में ईंटों का भट्ठा चलाता था, एक विशेष प्रकार के चूने का पेटेंट लिया था, जो लगभग सीमेंट-जैसा काम करता था। देखने में यह चूना उस चूने से काफी मिलता-जुलता था जो इंगलैंड के पोर्टलैंड टापू पर पाया जाता था। एस्पडिन के चूने में आई. सी. जानसन ने १८४५ में काफी सुधार किया। यह जानसन ही था, जिस ने उपर्युक्त चूने-विशेष को 'पोर्टलैंड' सीमेंट नाम दिया। नित नये अनुसंधानों के कारण आज विशिष्ट उपयोगों के लिए विशिष्ट प्रकार के 'पोर्टलैंड' सीमेंट मिलने लगे हैं। भवन-निर्माण में अधिकांशतः 'पोर्टलैंड' सीमेंट ही इस्तेमाल होता है।

चूना या चूने से भरपूर विशेष प्रकार की मिट्टी—इस का विशेष पद्धतियों से

रूपांतर--मोटे तौर पर यही है सीमेंट। कैल्शियम आक्साइड, सिलिका, एल्यूमिना, फेरिक आक्साइड, मैग्नेशिया, चट्टान-विशेष, रेत, लोहा इत्यादि भी सीमेंट में मिलाये जाते हैं।

●

रामपाल 'आलोक', चक्रधरपुर : डिट्राएट को 'चक्कों का शहर' क्यों कहा जाता है ?

जितनी कारें एवं मोटरगाड़ियाँ डिट्राएट की संस्थाएँ उत्पादित करती हैं उतनी विश्व के अन्य किसी भी शहर की नहीं। एक समय था, नये आविष्कारों के पेटेंट, विश्व के किसी भी शहर की तुलना में, डिट्राएट के व्यक्तियों अथवा संस्थानों द्वारा अधिक लिये जाते थे। अब पेटेंट लेने वालों की संख्या घटी है– इसलिए नहीं कि डिट्राएट में आविष्कार कम हो रहे हैं, बल्कि इसलिए कि आविष्कारक अब अपने आविष्कारों को गुप्त ही रखना चाहते हैं। डिट्राएट के अधिकांश आविष्कार मोटर-गाड़ियों के डिजाइन अथवा इंजन संबंधी होते हैं। मोटरगाड़ियाँ बनाने वाली संस्थाएँ अपने शोधकर्ताओं के आविष्कारों के पेटेंट यदि लेना चाहें तो वे आविष्कार बाजार में प्रस्तुत होने से पहले ही जनता को ज्ञात हो जायें, जब कि यह प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ रही है कि आविष्कारों को बाजार में अचानक ही पेश करके जनता को चकित कर दिया जाये। जहाँ नित नये आविष्कार हो रहे हों, वहाँ आविष्कारों की नकल करने वालों की कोई कीमत नहीं। इसीलिए पेटेंट न लेने पर भी आविष्कारों की नकल डिट्राएट में नहीं होती। हाँ, सभी बड़ी संस्थाएँ एक-दूसरे पर पक्की जासूसी अवश्य करती रहती हैं कि कौन कैसा इंजन या डिजाइन बना रहा है। जासूस अच्छे आविष्कारों को चुरा भी लेते हैं। मूल आविष्कारक अपना आविष्कार बाजार में पेश करे, उस से पहले ही चोरी करने वाली संस्था (जो कभी स्वीकार नहीं करती कि उस ने चोरी या जासूसी करवायी है) आविष्कार बाजार में पेश कर दे-- ऐसी घटनाएँ वहाँ अकसर घटती हैं, लेकिन जो आविष्कार एक बार बाजार में आ गया, फिर उस की नकल करने की परवाह किसी को नहीं होती। विश्व में सब से अधिक कारें अमरीकी जनता इस्तेमाल करती है और अमरीका की पचानवे प्रतिशत कारें सिर्फ डिट्राएट की संस्थाएँ बनाती हैं। इस नाते डिट्राएट को मिली 'चक्कों का शहर' की पदवी सटीक है।

—भगीरथ

मच्छर—भगवान की सृष्टि का एक तुच्छ कीड़ा जो हमें मक्खियों के बारे में अच्छी राय बनाने को बाध्य करता है।

ग़ालिब के खत

शौकत थानवी की कलम से

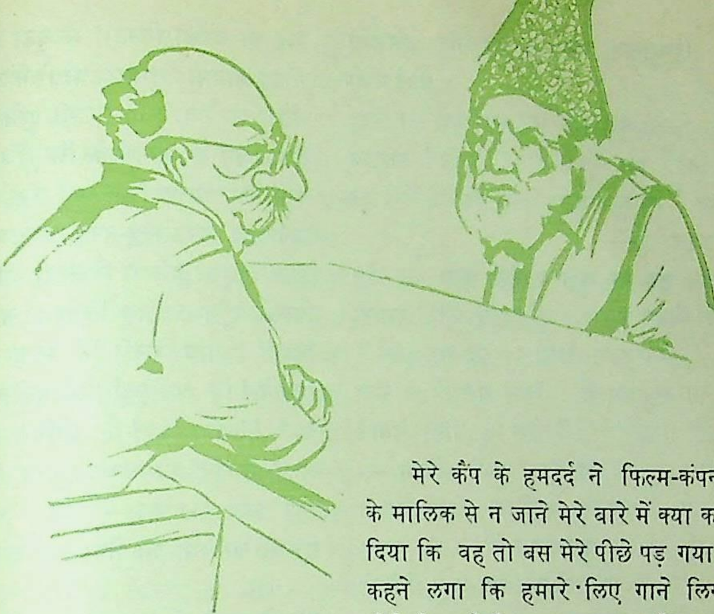
अजी मियाँ यूसुफ मिर्जा,

दो खत भेज चुका हूँ। एक मीर मेहदी को, दूसरा भाई हातिमअली 'मेहर' को। नजर से जरूर गुजरे होंगे। अब मेरी कहानी सुनो। मेरी जबानी सुनो। कल रात तबीयत कुछ ढीली-ढाली-सी थी। पड़े-पड़े जी घबराया। कैंप के जिन हमदर्द का जिक्र पिछले खतों में कर चुका हूँ वे मेरे पास तशरीफ लाये और खबर सुनायी कि आज शहर में एक मुशायरा है। मैं ने सोचा कि चल कर देखूँ तो सही कि मुशायरे अब कैसे होते हैं। अरे भाई! अब जो पहुँचा हूँ मुशायरे में तो साहब कमिश्नर बहादुर देहली यानी सांडर्स साहब बहादुर के दरबार का नक्शा निगाहों के सामने फिर गया। न मसनद, न तकिया, न शमा, न फानूस, न चिलम, न हुक्का--सब कुरसियों पर पैर लटकाये बैठे हैं : और एक साहब एक ऊँचे से चबूतरे पर खड़े कलाम पढ़ रहे हैं। और सुनो, अब मुशायरे में शायर गाता है और सुनने वाले तालियाँ बजाते हैं। औरतें हँसती हैं और बच्चे शोर मचाते हैं। मैं एक कोने में बैठा तौबा करता रहा। आज बहरा होना भी काम नहीं आया। एक आले के जरिये आवाज को इतना ऊँचा कर दिया जाता था कि मुझ-जैसा बहरा भी सुन ले। और सुन भी वह ले जो खुदा किसी को न सुनवाये। गिरहबंदी को लँगड़ा कर दिया है। छोटे-बड़े मिसरों की नौरतन चटनी पेश की जाती है--चटपटी नहीं, सीठी और बेमजा। एक साहब के चंद मिसरे याद रहे गये हैं। तुम भी सुन लो--

तुम्हारी तमन्ना-ए-कुहना उठी है
लहू की बहारों का दामन सँभाले
लबों पर लिये रंग-रोगन ओ गाजा
फिजाओं में गूँजे यह नारा ...
महाराज की जै ...शहनशाह का
तख्त कायम ...

ऐ भई यूसुफ मिर्जा! लिल्लाह, मुझे बताओ कि यह सब क्या है? जन्नत के सारे शायरों को सुनाओ। मीर तकी से पूछो। नजीर अकबराबादी शायद कुछ बतायें। इंशा कुछ रोशनी डालें, मेरा तो दिमाग चकरा गया।

मै तो चुपके से उठा और खिसक



आया । जान बची लाखों पाये !

इस दुनिया से
नजात का तालिब
गालिब

●

अजी मिर्जा तफ्ता,

आज घूमता - फिरता परछाइयों की दुनिया में जा निकला । चलती-फिरती, मुँह-बोलती, सुर खेलती तसवीरों की बस्ती में——जिसे ये लोग फिल्म - कंपनी कहते हैं । तुम पूछोगे कि यह क्या है ? मगर समझाऊँ क्या खाक ? खुद ही कब समझा हूँ ! अजीब धंधा है । ऐ भाई, परछाइयाँ बातें करती हैं, नाचती हैं, हँसती हैं, रोती हैं और सब कुछ करती हैं ; बस हाथ नहीं आतीं ।

मेरे कैंप के हमदर्द ने फिल्म-कंपनी के मालिक से न जाने मेरे बारे में क्या कह दिया कि वह तो बस मेरे पीछे पड़ गया । कहने लगा कि हमारे लिए गाने लिख दीजिये । मैं ने लाख समझाया कि भाई मेरे, गाने लिखे मेरी बला, गजल लिख लेता हूँ, वह कहो तो लिख दूँ । उस ने कहा, "जी हाँ वही ।" और फिर लगा बकने—— "देखिये मिर्जा साहब ! हमारा हीरो जब देखता है कि उस को किसी तरह कामयाबी नहीं हो सकती, कुछ गड़बड़-घोटाला हो गया है, और जिस से वह मुहब्बत करता है वह लड़की उस को नहीं मिल सकती, तो वह सब कुछ छोड़ कर निकल जाता है । इस जगह गाना चाहिये—— कुछ बड़ा ट्रेजेडी का हो गाना..."

मैं खाक समझता ! उस को टालने के लिए कह दिया कि भाई मेरे, इस मौके के लिए बस यह गजल ठीक है—

रहिये अब ऐसी जगह चल कर जहाँ
कोई न हो

हमसुखन कोई न हो और हमजबाँ
कोई न हो

वह मुँह खोल कर वहशियों की तरह सुनता रहा, फिर बोला, "नहीं ! मतलब यह है कि कुछ ऐसा लिख दीजिये जैसे वह गजल है--

जब तुम ही चले परदेस लगा कर ठेस
तो प्रीतम प्यारा. . .दुनिया में कौन हमारा

मैं एकदम चीखा--"यह क्या हुआ ? क्या बकवास है ! किस मसखरे ने कहा यह गजल है ?" उस ने गाना गवाने वाले उस्ताद की तरफ इशारा किया -- "यह हैं हमारे म्यूजिक डायरेक्टर । इन्हीं की यह फरमाइश है ।" उस शख्स ने और भी कमाल की बात कही, देखिये साहब ! आप तो नस्र (गद्य) के छोटे-बड़े फिकरे (वाक्य) लिख दीजिये, बस ! गाना मैं खुद बना लूँगा !" मैं तड़प कर उठा और सिर पर पैर रख कर भागा । देर हुई यहाँ पहुँचे हुए, मगर अब तक दिल पर वहशत छायी है । ऐ भई मिर्जा, किसी तरह कह-सुन कर मौत के फरिश्ते को राजी कर लो कि मुझ को ले जाये । सुना है, फानी बदायूँनी से उस के अच्छे ताल्लुकात हैं । उन्हीं की सिफारिश पहुँचवाओ ।

मुलाकात का तालिब
गालिब

●

मीर मेहदी, खुश रहो !

आफरीं, सद आफरीं ! खुदा जाने कब का बदला लिया । मैं बूढ़ा आदमी । भोला आदमी । तुम्हारी बातों में आ गया । धोखा खा गया । फिर उसी दुनिया में आ बसा जिस से भागने के लिए जिंदगी भर मौत का तालिब (इच्छुक) रहा । तुम से विदा हो कर तरह-तरह के सय्यारों में भटकता हुआ दुनिया में आया और सीधा दिल्ली पहुँच कर दम लिया । मगर हाय दिल्ली ! वाय दिल्ली !! भाड़ में जाये दिल्ली !!! अब यहाँ निजामुद्दीन ममनून कहाँ ! जौक कहाँ ! मोमिन कहाँ ! अपने मकान की तरफ गया । मगर वहाँ क्या धरा था--

घर में था क्या जो तेरा गम उसे गारत करता,
वो जो रखते थे हम इक हसरते-तामीर, सो है !

इस दिल्ली से तो एक ही दिन में जी उचाट हो गया । जान ले कर लाहौर की तरफ भागा । रास्ता क्योंकर कटा, कुछ न पूछो । यहाँ पहुँच कर अब किस से कहूँ कि मैं नज्मुद्दौला हूँ । मिर्जा नौशा हूँ । असद उल्ला हूँ । गालिब हूँ । वही गालिब --जिस के कलाम का संकलन चुगताई करते हैं, जिस को विलायत में छपवाते हैं, जिस को हिंदुस्तान की इल्हामी किताब बताते हैं । कोई मुँह नहीं लगाता, कोई बात नहीं पूछता । रिफ्यूजियों के एक कैंप में पड़ा हूँ । इस वक्त दिन के बारह बजे हैं । मैं नंगा एक 'खोड़ी' चारपाई पर पड़ा हुक्का पी रहा हूँ । भले को कुरता या अँगरखा गले में

नहीं, वरना जो कुछ सोच रहा हूँ, उस के बाद गिरेबान फाड़ डालना जरूरी होता।

मियाँ लड़के! तुम ने तो कहा था कि मेरे लिए दुनिया में जाने का वक्त अब आया है। गालिब को अब दुनिया - वालों ने पाया है। वे आँखें बिछायेंगे, जान छिड़केंगे, पूजेंगे। मगर अब बताओ, मैं क्या करूँ ? हूरें तो दरकिनार, यहाँ तो दो रोटियों का भी सहारा नहीं। शराब कैसी, पानी देना किसी को गवारा नहीं! कुछ मालूम भी है मियाँ साहब-जादे! शायरी से ज्यादा सस्ता आजकल कोई धंधा नहीं। जिस को देखिये, एक तखल्लुस लिये फिरता है और शायरी का दम भरता है! शायरी के नाम से खुराफात के दरिया बहाये जा रहे हैं।

यह आलम देख कर शेर कहने से तौबा की। इसलाह (संशोधन) देने से तौबा की। शेर सुनना तो मुमकिन ही नहीं, बहरा हूँ। शेर देखने से जी मत-लाता है। पंद्रह बरस की उम्र से पछत्तर बरस की उम्र तक पहले शेर कहता रहा। यानी पहले साठ बरस बकता रहा। फिर अगली दुनिया में सब जमा हो गये थे तो कुछ शुग्ल रहा। लेकिन अब तो यही जी चाहता है कि लोग मुझे शायरों की 'कैटे-गरी' में न गिनें और इस कला के बारे में मुझ से कोई पूछ-गछ न की जाये। मगर जिंदा रहना है तो कुछ करना ही पड़ेगा। अब अल्लाह जाने क्या करना पड़ेगा और क्या-क्या पापड़ बेलने पड़ेंगे!

नये सिरे से
मौत का तालिब
गालिब

●

ऐ भाई मिर्जा हातिमअली मेहर !

तुम्हें देखने के लिए तड़पते-तड़पते, तुम से बातें करने को जी चाहने लगा। इधर बैठो मेरे करीब। हाँ, मैं अपने पहुँचने और दिल्ली से लाहौर भाग आने की इत्तिला कुर्रतुलऐन मीर मेहदी को दे चुका हूँ। खुदा जाने, हँसे होंगे या रोये होंगे! अच्छा, अब सुनो कि फिर क्या बीती, जिन हमदर्द का मैं ने पिछले खत में जिक्र किया है, उन की राय से रेडियो गया। उन हमदर्द ने तआरुफ (परि-चय) की रस्म अदा की। इस सिरे से उस सिरे तक 'गालिब आया . . . गालिब आया!' की धूम मच गयी। मालूम हुआ कि यह कोई मामूली जगह नहीं बल्कि बाकायदा सरकारी महकमा है। इस महकमे के अफसर-ए-आला से इस फकीर को मिलवाया गया। बड़े तपाक से मिले। अपनी मेज के नीचे खुदा जाने किस बटन को घुमाया कि एक दीवार निहायत मीठी आवाज में मुझ को मेरी ही गजल सुनाने लगी—

हर एक बात पर कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं बताओ कि यह अंदाजे-गुफ्तगू क्या है!

मालूम हुआ कि इस रेडियो पर मेरी गजलें बहुत गायी जाती हैं। मुझ से ताजा-कलाम की फरमाइश हुई। मैं मौका गनीमत जान कर मतलब पर आ गया।

अर्ज किया कि परदेसी हूँ। जन्नत छोड़ कर इस उम्मीद पर दुनिया में आ गया हूँ कि पीछे-पीछे मेरी पूजा करने वाले शायद उस परेशानी को दूर ही कर डालें जिस का दाग छाती पर ले कर मरा था। मगर फिलहाल तो रोजों की नौबत है और रोजी दरकार है।

महकमे के आला-अफसर ने बड़ी हमदर्दी के साथ मीठे शब्दों में कहा, "बेशक, बेशक! अगर यह खिदमत आप हमारे सिपुर्द कर दें तो इसे मैं अपनी खुशकिस्मती मानूँगा।"

अर्ज किया, "मियाँ, तकल्लुफ छोड़ो। नेकी कर सकते हो तो पूछ-पूछ छोड़ो।"

उन साहब ने शराफत की मूर्ति बन कर फरमाया, "आप हमारे यहाँ स्टाफ-आर्टिस्ट हो जाइये।"

पूछा, "यह क्या बला होती है?"

कहने लगे, "किब्ला! बात यह है कि यह मुलाजमत से ज्यादा एक किस्म का ठेका है। गोया, हम ठेके पर आप का दिमाग ले लेंगे और अपनी जरूरत के मुताबिक उस को निचोड़ते रहेंगे। जाहिर है कि कुछ दिनों के बाद उस दिमाग का जौहर तो हमारे पास आ जायेगा और फोकस आप के पास रह जायेगा। उस वक्त हम ऐग्रीमेंट की शर्तों के मुताबिक पंद्रह दिन का नोटिस दे कर या अगर आप ऐसे ही खुश रहे तो पंद्रह दिन की तनख्वाह दे कर आप को विदा कर देंगे।"

अर्ज किया, "यानी दिमाग का सारा अर्क निकाल कर बस विदा कर देंगे! और इतना भी न करेंगे कि अपनी देख-रेख में किसी पागलखाने में कम-से-कम दाखिल ही करा दें। यह कहाँ की हमदर्दी है?"

हजरत मजाक समझ कर हँसते हुए बोले, "बहुत खूब फरमाया! मगर क्या अर्ज किया जाये, इस किस्म की मुलाजमत की शर्तें ही कुछ ऐसी हैं।" पूछा, "जितने यहाँ मुलाजिम हैं, सब इन पर राजी हैं?" वे बोले, "जी नहीं, सब मुलाजिम इस किस्म के नहीं हैं। चूँकि दिमाग कोई परमानेंट चीज नहीं है, लिहाजा मुस्तकिल मलाजिम सिर्फ वे हैं जिन के दिमाग से हमें कोई सरोकार नहीं है। अगर दिमाग है तो सुभानअल्ला, वरना कोई बात नहीं। किताबी सनदें ही काफी हैं। इन में भी बहुत-से दिमाग वाले हैं। अलबत्ता वे लोग जो दिमाग वाले होने के साथ-साथ कलाकार भी हैं, उन को परमानेंट मुलाजिम रखने के बजाय उन से इसी तरह का 'टेंप्रेरी ऐग्रीमेंट' किया जाता है।"

अर्ज किया, "मालूम नहीं, यह आप कलाकार की इज्जत करते हैं या बेइज्जती, कद्र करते हैं या नाकद्री!"

वे बोले, "इस से बढ़ कर इज्जत

और क्या हो सकती है कि हम उन को बाकायदा मुलाजिम रखने की हिम्मत नहीं करते । इस से बढ़ कर और क्या कद्र होगी कि हम उन को बाज सूरतों में सरकारी नौकरों से ज्यादा तनख्वाह देते हैं । अलबत्ता चूँकि कलाकारों में एक तरह का भ्रम-सा होता है, लिहाजा उन के इस पिंदार (अभिमान) को तोड़ने के लिए हम बड़े कलाकार को छोटे-से-छोटे सरकारी मुलाजिम के तहत कर दिया करते हैं ।"

अर्ज किया, "गोया मुझ को भी इसी किस्म के लोगों की मातहती करनी होगी।"

आँखों में आँखें डाल कर बोले, "यह बात तो जरूर है किब्ला !"

मैं ने बातों को फिनिशिंग-टच देने के लिए गुस्से को जब्त करते हुए कहा, "और काम क्या करना होगा मुझ को ?"

कहने लगे, "गजलें कहते रहिये । शायरी और ड्रामे लिखिये। बच्चों के लिए छोटे-छोटे गीत लिखिये और हमारे यहाँ जो गानेवाले व गानेवालियाँ आती हैं, उन के तलफ्फुज (उच्चारण) दुरुस्त कराया कीजिये ।"

पूछा, "और तनख्वाह क्या मिलेगी, इस नजात के तालिब गालिब को ?"

कुछ सोच कर बोले, "हम आप को साढ़े तीन सौ तक दे देंगे !"

हैरत से पूछा, "खुश्क या तर ?" फिर बात को आगे बढ़ाने की गरज से अर्ज किया, "आप जानते ही हैं कि मैं सुलतान-ए-आलम के दरबार से खिल्अतें (राजा द्वारा प्रदत्त वस्त्र) पाता रहा हूँ . . .और मुझे इस की आदत पड़ी हुई है ।"

वे बोले, "किब्ला ! यह खिल्अतों का जमाना नहीं । अब तो बस तनख्वाह ही तनख्वाह है ।"

इस पर मैं ने साफ-साफ सुनायी, "मियाँ, होश की खबर लो ! किस ध्यान में हो ? किस खयाल में हो ? तुम साढ़े तीन सौ रुपल्ली में गालिब को खरीदना चाहते हो ? उस के दिमाग की कीमत आँकते हो ? यह दिमाग अभी तो ऐसा गया-गुजरा नहीं कि नीलाम पर चढ़ा दिया जाये । मैं तो तुम को परख रहा था । टटोल रहा था। ठिठोली कर रहा था। मालूम हो गया कि तुम्हारे नजदीक मैं कितने पानी में हूँ ! बख्शो मुझ को !"

खुदा जाने वे क्या-क्या समझाते रहे ! क्या-क्या फरमाते रहे ! मगर मैं सीधा भागा कैंप की तरफ । अपने को बुरा-भला कहता हुआ कि क्यों आ गया था यहाँ ! मेरे अजीज मीर मेहदी मिलें तो कह दीजियेगा कि हाँ भई खूब हो रही है कद्र-दानी ? वाकई तुम्हारे कहे मुताबिक यह कलाकारों की इज्जत का जमाना है--
फिरते हैं मीर ख्वार, कोई पूछता नहीं...
और पूछता है तो इस तरह जिस तरह का हाल लिखा ! खुदा किसी गैरतदार को यह दिन न दिखाये !

यह खत भी सब को सुना दीजियेगा । काश, फिर सब दीवाने एकसाथ मिलें ।

आप की खैरियत का तालिब

गालिब !

महकते जीवन फूल

प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर यूरोप के विभिन्न देशों का पर्यटन करके पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी जीवन-शैली का गहरा अवलोकन कर रहे थे। इस सारी यात्रा के दौरान उन्हें अपनी मातृभूमि भारत के खेत-खलिहान और ग्राम-कुटीर रह-रह कर याद आते रहे। उन्होंने लंदन से अपने एक मित्र को एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा। उस का एक बहुत ही मार्मिक और गौरवपूर्ण वाक्य इस प्रकार था--

> "अपनी प्रियतमा के गालों पर एक तिल के लिए कवि हाफिज समरकंद और बुखारा की समस्त संपदा निछावर करने को तैयार थे और मैं शांति-निकेतन स्थित अपनी 'कुटिया के बदले में ऐश्वर्य से भरा सारा लंदन तुच्छ समझता हूँ।"

स्वामी विवेकानंद अमरीका की यात्रा से लौटे थे। एक अँगरेज पत्रकार ने उन से एक चातुरी-भरा प्रश्न किया। पत्रकार मन ही मन समझ रहा था कि भारत का यह मर्धन्य मनीषी अमरीका के उद्दाम वैभव-विलास से अवश्य अभिभूत हो गया होगा। प्रश्न था–"ऐश्वर्य और सभ्यता की प्रोज्ज्वल और उन्नत रंगभूमि अमरीका को निहार कर आप को अपनी मातृभूमि कैसी लगती है ?"

स्वामीजी ने तुरंत ही जवाब दिया, "अमरीका जाने से पहले मैं भारतवर्ष को प्यार करता था, परंतु वहाँ से लौटने के पश्चात मैं उस की पूजा करने लग गया हूँ।"

पत्रकार ने भारत की दासता और दारिद्र्य की हँसी उड़ाने की नीयत से उपर्युक्त प्रश्न किया था, किंतु स्वामीजी के उत्तर से वह पस्त हो गया।

क्या आप को दूसरे से माँग कर समाचारपत्र पढ़ने की आदत है ? यदि ऐसा है तो इस विषय में लोकमान्य तिलक का परामर्श स्वीकार कीजिये।

एक बार तिलकजी रेलगाड़ी में

बंबई से पूना जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक समाचारपत्र खरीदा। तिलकजी ने अभी अखबार की एक ही पंक्ति पढ़ी थी कि समीप बैठे एक सहयात्री ने कहा, "जरा अखबार का अंदर का पन्ना मुझे दे दीजिये।"

लोकमान्य ने तुरंत ही अपनी जेब से एक आना निकाल कर सहयात्री के हाथ में टिकाते हुए कहा, "लीजिये, इस से समाचारपत्र खरीद कर आजादी से अखबार पढ़ने का आनंद उठाइये। कृपया मुझे अपना अखबार शांतिपूर्वक पढ़ने दीजिये।"

बापू की प्रार्थना-सभाओं में उन के हस्ताक्षर प्राप्त करने की भीड़ जमा हो जाया करती थी। इस के कारण उन को बहुत परेशानी होती थी। उस से बचने के लिए उन्होंने एक अच्छा उपाय खोज निकाला। उन्होंने एक हस्ताक्षर का मूल्य पाँच रुपये नियत कर दिया। हस्ताक्षरों से प्राप्त हुई यह राशि वे हरिजन-फंड में जमा करा देते थे।

एक बार प्रार्थना समाप्त होने पर एक नन्ही बालिका ने पाँच रुपये प्रस्तुत कर हस्ताक्षर की याचना की। बापू ने हस्ताक्षर कर दिये। बालिका ने कहा, "कुछ लिख दीजिये।"

बापू ने कहा, "जो कुछ तू कहे, सो लिख दूँ।"

"आप जो चाहें सो लिख दें," बालिका न मुग्धभाव से कहा।

बापू ने पूछा, "तेरे पिताजी क्या काम करते हैं?"

बालिका बोली, "तंबाकू की दुकान।"

बापू ने उस की कापी पर लिख दिया—'तंबाकू पीना बुरा है।'

दो विद्यार्थियों के बालपन की बात है। एक दिन पाठशाला जाते हुए दोनों साथी रास्ते में ही अपनी शक्ति आजमाने के लिए कुश्ती लड़ने लगे। बलवान साथी जीत गया। इस पर हारे हुए साथी ने कहा, "तुझे जिस प्रकार का खाना मिलता है वैसा मुझे मिले तो मैं भी जीत जाऊँ!"

ये शब्द विजयी विद्यार्थी के हृदय में चुभ गये। उस की विजय का सारा उल्लास जाता रहा। हारे हुए साथी की पराजय का कारण सचमुच उस की कमजोरी और पुष्टिकारक भोजन की कमी ही है, यह बात उस के मन में घर कर गयी। उस की सारी मनोदशा बदल गयी।

विजयी साथी आगे जा कर डाक्टर बना। कमजोरों की सहायता करना उस का जीवन-उद्देश्य बन गया। अपनी जन्मभूमि छोड़ कर वह सुदूर अफ्रीका के जंगलों में चला गया। वहाँ एक सेवा-श्रम बना कर वह जिंदगी भर अफ्रीका के दलितों-पीड़ितों की सेवा करता रहा। यह डाक्टर था शांति का पुजारी एवं मानवता का सेवक अलबर्ट श्वाइतजर। उन्हें शांति का नोबुल-पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

अमरीका के कुबेर जॉन डी० राकफेलर को अपनी खुशामद पसंद नहीं थी। एक दिन कोई अजनबी उन के कार्यालय में ही उन से आ टकराया और अपनी दुखगाथा कहने लगा– "मैं श्रीमान-जी से मिलने के लिए बीस मील पैदल चल कर यहाँ आया हूँ। रास्ते भर जो भी मिला, उस से यह कहता आया हूँ कि राकफेलर महाशय बड़े उदार और दयालु हैं।"

राकफेलर क्षण भर गंभीरता से खड़े रहे, फिर उन्होंने आगंतुक से पूछा, "तुम जिस मार्ग से यहाँ आये हो, उसी से वापस जाने वाले हो न ?" आगंतुक ने स्वीकार-सूचक उत्तर दिया। इस पर राकफेलर ने जोरदार शब्दों में कहा, "मेरा एक काम करो, वापस लौटते हुए रास्ते भर इस बात को सुनाते जाओ कि राकफेलर उदार नहीं है।"

मनु बहिन गाँधी अपने संस्मरणों में लिखती हैं–

बापू प्रातः गरम पानी पिया करते थे। एक बार पानी गरम करने में कुछ विलंब हो गया। हवा में नमी के कारण चूल्हा सुलगाने में दिक्कत हो रही थी। मैं ने साड़ी की किनारी फाड़ कर मिट्टी के तेल में डुबायी और चूल्हा जलाने को तैयार हुई। मन में चिंता थी कि बापू के लिए पानी तैयार करने में देर न हो जाये! बापू सब कुछ निहार रहे थे, कहने लगे– "पलीता किस प्रकार बनाया है ?"

"साड़ी का किनारा फाड़ कर"– मैं जरा घबरायी।

"इसे जरा लंबा करके तो दिखा।" मैं ने दिखा दिया। बापू कहने लगे, "इतनी लंबी पट्टी से तो एक सुंदर-सा नाड़ा बन सकता है। अपने देश में, जहाँ हजारों मनुष्य वस्त्रविहीन हों, कपड़े का इस लापरवाही से उपयोग करना ठीक नहीं। मुझे पानी पीने की कोई जल्दी नहीं है।"

इतना कह कर बापू ने तेल से भीगा चिथड़ा चूल्हे में निचोड़ दिया और कहा, "इस को धूप में सुखा देना।"

सूख जाने पर बापू ने उस पट्टी को सी कर एक सुंदर नाड़ा तैयार कर दिया। मेरा अहोभाग्य था कि उस का उपयोग करने का लाभ मुझे ही प्राप्त हुआ!

––शंकरदेव विद्यालंकार

जब काम बहुत है और समय कम है तो मनुष्य क्या करे ? धैर्य रखे और जिसे ज्यादा उपयोगी माने उसे पूरा करे, बाकी ईश्वर पर छोड़ दे। दूसरे रोज जिंदा रहेगा तो जो काम रह गया है उसे पूरा करेगा।

–बापू

लोमहर्षक सत्यकथा

● जार्ज फील्डिंग इलियट

ताँबे का प्याला

डाकुओं के सरदार यून ली ने कुरसी की पीठ पर झुकते हुए कहा, "सुनने में आया है कि एक अच्छा नौकर देवताओं का उपहार होता है और एक बुरा नौकर. . ."

डाकुओं के सरदार के सामने खड़ा लंबे कद और हाथ-पाँव का मजबूत व्यक्ति बड़ी विनम्रता से तीन बार उस के सामने झुक गया। उस की आँखों से भय झलक रहा था, हालाँकि वह सशस्त्र था, इस के अलावा वह अपने गिरोह में बहादुरी के लिए प्रसिद्ध था। यदि वह चाहता तो एक ही मुक्के से अपने सरदार को ढेर कर सकता था।

"खैर, कोई बात नहीं," एक क्षण के मौन के बाद सरदार ने कहा। डाकुओं की गारद के इंचार्ज वांग ने निश्चिंतता की साँस ली। सरदार ने सहृदयता से मुसकराते हुए कहा, "मुझे अपना काम निकालना आता है। आदमी हमारे हाथ में है। जिन सूचनाओं की हमें जरूरत है, वे उसे पता हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए कोई-न-कोई रास्ता तो अवश्य अपनाना ही पड़ेगा। मेरा नौकर असफल हो गया। अब मालिक को अपने हथकंडे इस्तेमाल करने होंगे। उसे मेरे सामने लाओ।"

सरदार कुछ क्षण तक चुपचाप बैठा खिड़की में लटके पिंजरे में कैद दो पक्षियों को देखता रहा। सहसा उस ने संतोषजनक अंदाज में सिर को झटका दिया, जैसे उसे अपनी कठिनाई का कोई हल मिल गया हो। फिर उस ने मेज पर लगी घंटी का बटन दबाया।

दूसरे क्षण सफेद कपड़े पहने एक नौकर ने कमरे में प्रवेश किया।

यून ली ने उसे जल्दी-जल्दी कुछ आदेश दिये। नौकर अभी बाहर ही निकला था कि लगभग लड़खड़ाता हुआ वांग पुनः कमरे में दाखिल हुआ।

"हुजूर! कैदी आ रहा है!"

और दूसरे क्षण दो अध-नंगे हट्टे-कट्टे सिपाहियों से घिरे एक गठे शरीर वाले व्यक्ति ने नंगे पाँव कमरे में प्रवेश किया। उस ने खाकी कमीज और पतलून पहन रखी थी। उस की निडर नीली-नीली आँखें यून ली को घूर रही थीं। उस के बाल भूरे और चमकीले थे। वह सफेद चमड़ी का आदमी था।

"आह!" यून ली ने बड़े दृढ़ स्वर में शुद्ध फ्रेंच बोलते हुए कहा, "अच्छा तो लेफ्टीनेंट फ्रांते अभी तक जिद कर रहा है।"

फ्रांते ने फ्रेंच और तीन विभिन्न चीनी बोलियों में उस की खूब भर्त्सना की—"यून ली ! तुम्हें अपने किये का दंड भुगतना पड़ेगा," उस ने उत्तेजित हो कर कहा, "यह खयाल सेकंड के लिए भी अपने मन में मत लाओ कि तुम्हारे वहशी दरिंदे अपने शैतानी अत्याचारों से एक फ्रांसीसी अफसर को डरा कर



उस से गुप्त बातें पूछने में सफल हो जायेंगे ।"

"लेफ्टीनेंट फ्रांते ! तुम मझे धमकी देते हो !" उस ने कहा, "पर मेरे लिए तुम्हारी यह धमकियाँ गुलाब के फूलों की वे पत्तियाँ हैं जिन्हें सुबह की हवा ने अपने कंधों पर उठा रखा हो । शायद तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारी धमकियाँ तभी कारगर हो सकती हैं जब तुम यहाँ से बच कर निकल सको !"

"तुम को धिक्कार है !" कैदी ने उत्तर दिया, "मझे यों डराने की कोई जरूरत नहीं । मेरा कमांडर मेरी गति-विधियों से परिचित है । अगर मैं कल तक वापस अपनी कंपनी में न पहुँचा तो वह फौज का एक दस्ता ले कर यहाँ पहुँच कर तुम्हारी ईंट से ईंट बजा देगा ।"

यून ली पुनः मुसकराया—"निस्संदेह ! लेकिन अभी तो हमारे सामने सारा दिन पड़ा है ।"

फ्रांते ने उसे पुनः ललकारा—"तुम मुझे जितना चाहो यातना दे लो, लेकिन इतना हम दोनों जानते हैं कि तुम मुझे न तो मरवा सकते हो और न ही कोई घातक सजा दे सकते हो ।"

"इस का मतलब है कि तुम मुझे चुनौती दे रहे हो, " सरदार ने कहा, "लेफ्टीनेंट फ्रांते, मैं तुम्हारी यह चुनौती स्वीकार करता हूँ । अच्छा तो अब बता दो कि मे फिंग नदी पर तुम्हारी चौकी किस जगह पर है और वहाँ कितने सिपाही हैं, ताकि..."

"ताकि तुम्हारे निर्दय प्रेत, जिन की लूट-खसोट और खून-खराबे की बदौलत तुम यहाँ ऐश्वर्य से रहते हो, किसी अँधेरी रात में उस चौकी पर हमला करके नदी में अपनी नावों के लिए रास्ता बनाने में सफल हो जायें । कान खोल कर सुनो, मैं तुम्हारे व्यापार को अच्छी तरह जानता हूँ । टोंकन के फौजी गवर्नर ने इस सरहदी इलाके में हमें शांति स्थापित करने के लिए भेजा है, न कि तुम्हारी बचकाना धमकियों से डरने के लिए । फौजियों ने तुम-जैसे डाकुओं की गीदड़-भभकियों से भयभीत होना नहीं सीखा ।"

यून ली ने मे फिंग के प्रदेश पर मुद्दत से अपना राज्य स्थापित कर रखा था । अब उसे अपना सिंहासन हिलता हुआ नजर आ रहा था । लेकिन एक आशा की किरण अभी तक इस अंधकार में थी । नदी के बहाव की दिशा में फ्रांसीसी चौकी से परे उस के आदमियों ने कई गाँवों का माल लूट कर नावों में भर रखा था । अगर उस की वे नावें और आदमी वापस आ जाते —वे उस के सर्वोत्तम आदमी थे—तो फिर वह फ्रांसीसी फौज के दस्ते से निबट सकता था । लेकिन नावें और अपने आदमी नदी के इस पार लाने से पहले उस के लिए फ्रांसीसी चौकी की जगह और वहाँ सैनिकों की संख्या जानना अति आवश्यक था । चौकी को वहाँ से हटाये बिना नावों को ले जाना कठिन था ।

और अब उस चौकी के कमांडर का स्टाफ-अफसर फ्रांते उस के हाथ आ गया था । पिछली सारी रात वे उसे

यातना देते रहे थे। यून ली के आदमी उस से क्षण भर के लिए अलग नहीं हुए थे। उन्होंने फ्रांते को प्रकटतया कोई चोट नहीं पहुँचायी थी, लेकिन इस के बावजूद उन्होंने उसे भयंकर यातनाएँ दी थीं।

"वांग! चार और सिपाही लाओ। कैदी के गिर्द पहरा ज्यादा कड़ा कर दो।"

वांग ने ताली बजायी। दूसरे ही क्षण चार और अधनंगे सिपाही आ गये। उन में से दो ने घुटनों के बल झुक कर फ्रांते की टाँगों को पकड़ लिया। तीसरे ने उस की कमर भुजाओं में कस ली और चौथा हाथ में हथकड़ी पकड़े खड़ा रहा।

यून ली मुसकराया और फिर उस ने घंटी का बटन दबाया।

दो और नौकर प्रकट हुए। वे काली चादर में लिपटी हुई एक स्त्री को कमरे में ला रहे थे। यून ली ने वह चादर फाड़ दी। चादर फटने की देर थी कि अंदर से सुंदरता की एक अद्भुत मूर्ति प्रकट हुई—एक लड़की जिस की उम्र उन्नीस-बीस से अधिक न थी। उस के बाल काले और शरीर बेहद कोमल था। लेफ्टीनेंट फ्रांते को देखते ही उस की आँखें विस्मय से फटी की फटी रह गयीं!

"लिली!" फ्रांते चीख पड़ा और उस के पाँच संरक्षकों ने उसे मजबूती से जकड़ लिया। फ्रांते उन की जकड़ से मुक्त होने के लिए संघर्ष करने लगा।

"तुम शैतान!" फ्रांते ने यून ली की ओर थूका—"अगर इस लड़की का बाल भी बाँका हुआ तो, भगवान की सौगंध, मैं तुम्हें तुम्हारे महल की आग में भस्म कर दूँगा। लेकिन लिली तुम यहाँ कैसे..."

"मेरे प्यारे लेफ्टीनेंट! यह कोई ऐसी पहेली नहीं," डाकुओं के सरदार ने हस्तक्षेप किया—"उत्तरी टोंकन के सभी घरों के नौकर मेरे जासूस हैं। इस लड़की से तुम्हारे रोमांस की खबर मझे मिल चुकी थी, इसलिए मैं ने उसे यहाँ बुला लेना अच्छा समझा। इस के पिता का बँगला तुम्हारी चौकी से बहुत दूर है और चूँकि यह बँगला चीनी सरहद में स्थित है, इसलिए..."

"एंडरी! एंडरी!" लड़की शोर मचा रही थी और नौकरों की जकड़ से मुक्त होने की कोशिश कर रही थी—

चीनी डाकुओं के सरदार यून ली की एक ही जिद थी कि किसी न किसी तरह अपने बंदी फ्रांसीसी सेना के लेफ्टीनेंट एंडरी फ्रांते से फ्रांसीसी चौकी की स्थिति के बारे में पूरी जानकारी ले ले। इस के लिए उस ने फ्रांते की प्रेमिका पर इतने अमानुषिक अत्याचार किये कि...

"एंडरी ! मुझे बचा लो। ये दरिंदे..."

"लिली ! घबराने की जरूरत नहीं !" एंडरी फ्रांते ने उत्तर दिया, "ये तुम्हें नुकसान पहुँचाने का साहस नहीं कर सकते। ये धोखा दे रहे हैं।"

"लेकिन लेफ्टीनेंट ! क्या तुम यह सोच-समझ कर कह रहे हो ?" सरदार ने धीरे से कहा, "तुम एक अफसर हो, लेकिन इस लड़की का मामला और है।"

"वह कैसे ? यह लड़की भी फ्रांसीसी नागरिक है।"

"मेरे अच्छे लेफ्टीनेंट ! मेरा तुम से मतभेद है। यह सही है कि लड़की का खून तीन-चौथाई फ्रांसीसी है, लेकिन इस का बाप आधा चीनी है और चीन का नागरिक है। इस तरह यह लड़की भी चीन की नागरिक है। फ्रांसीसी सरकार तुम्हारी मौत का बदला तो मुझ से ले सकती है, इस लड़की की मौत का नहीं !"

फ्रांते का खून उस की रगों में बर्फ की तरह जम कर रह गया।

लिली तत्काल ही विषम स्थिति को समझ गयी। "नहीं, नहीं, एंडरी !" वह चिल्लायी--"इसे कुछ न बताओ। मैं तुम्हें गद्दार देखने के बजाय अपनी मौत को पसंद करूँगी।"

फ्रांते ने अपना सिर ऊपर उठाया। उस का डगमगाता विश्वास फिर से दृढ़ हो गया था। वह चिल्लाया--"यून ली ! अगर तुम इसे कत्ल करना चाहते हो तो कर दो। अगर फ्रांस इस के कत्ल का बदला नहीं ले सकता तो मैं कहीं नहीं गया, लेकिन मैं गद्दार हरगिज न बनूँगा।"

"मेरे विचार में, लेफ्टीनेंट, ये तुम्हारे आखिरी शब्द नहीं," सरदार ने उसे बहकाना चाहा--"अब मुझे लड़की को रस्से से लटकाना होगा, लेकिन इस से पहले इसे तुम्हें मदद के लिए पुकारना चाहिए। और जब तुम इस की दर्द-भरी चीखें सुनोगे--अपनी प्रेमिका की दर्द-भरी चीखें--तो तुम्हारी देशभक्ति का सारा बुखार उतर जायेगा !"

उस ने फिर ताली बजायी। चुपचाप कुछ नौकरों ने भीतर प्रवेश किया। एक नौकर ने चिमटे से दहकता हुआ बड़ा-सा कोयला पकड़ रखा था। दूसरे के हाथ में मजबूत सलाखों वाला एक पिंजरा था जिस में कोई चीज बड़े भयानक अंदाज में हरकत कर रही थी। तीसरे नौकर के हाथ में ताँबे का एक बड़ा-सा प्याला था जिस के दोनों ओर हत्थे लगे थे। हत्थे धूप में चमक रहे थे।

यून ली ने अपनी भाषा में तेजी से कुछ कहा और नौकरों ने लड़की को चारों खाने चित फर्श पर लिटा दिया। फिर उन्होंने उस के शरीर के ऊपरी आधे हिस्से से कपड़े फाड़ कर अलग कर दिये। लड़की खूबसूरत कालीन पर चुपचाप लेटी रही। उस की आँखें अभी तक फ्रांते पर जमी हुई थीं। वह खामोश थी कि कहीं उस के शब्द फ्रांते की दृढ़ता को विचलित न कर दें।

फ्रांते संरक्षकों की जकड़ से आजाद होने के लिए अंधाधुंध हाथ-पाँव मारने

लगा था।

"यून ली, याद रखो ! तुम्हें इस की सजा भुगतनी होगी। शैतान ! बाज आओ अपनी शैतानी हरकतों से," फ्रांते चिल्लाया।

"काम शुरू करो !" यून ली ने नौकरों से कहा, "मोशिये फ्रांते ! अब हम जो कुछ करने वाले हैं, उसे जरा गौर से देखते जाना। सब से पहले तुम देखोगे कि हम लड़की के हाथ और पाँव भारी फर्नीचर से बाँध देंगे ताकि वह हरकत न कर सके। तुम इस बात पर विस्मित होगे कि आखिर इस कोमल लड़की को इतने मोटे-मोटे रस्सों से बाँधने की क्या जरूरत है ! ताँबे के प्याले के नीचे मैं ने एक बड़े कमजोर आदमी को अपनी जंजीर तोड़ कर आजाद होते हुए देखा है . . ." सरदार रुक गया। लड़की को अब बड़ी मजबूती से बाँध दिया गया था।

यून ली ने इस प्रबंध पर संतोष प्रकट किया—"बहुत खूब !" उस ने कहा—"इस के बावजूद अगर यह लड़की अपने शरीर का कोई भाग आजाद कराने में सफल हुई तो जिस व्यक्ति ने इसे बाँधा है, उसे लगातार एक घंटे तक कोड़ों की सजा दी जायेगी . . . अच्छा, अब प्याला लाओ ! इधर करो ! पहले मैं इसे एक नजर देख लूँ।"

उस ने अपना पतला हाथ आगे बढ़ाया और एक नौकर ने बहुत आदर से ताँबे का प्याला उस पर रख दिया। फ्रांते ने भयभीत नजरों से देखा कि उस प्याले के साथ लोहे की एक पेटी बँधी थी जिसे इच्छानुसार फिट किया जा सकता था।

"बहुत खूब !" सरदार ने सिर हिलाया और प्याले को बार-बार हाथों में उलट-पुलट कर देखता रहा। वह उस पर यों अँगुलियाँ फेर रहा था जैसे उसे प्यार कर रहा हो—"मेरे विचार में लेफ्टीनेंट और युवा लड़की इस प्याले से परिचित नहीं हैं। अच्छा तो मैं स्पष्ट किये देता हूँ। काँसू ! प्याले को उस की जगह पर रख दो। नहीं, नहीं, इस बार केवल प्याला !"

एक अन्य नौकर जिस ने अपनी जगह से हरकत की थी, वापस वहीं चला गया। वह व्यक्ति जिसे काँसू कह कर पुकारा गया था, लड़की के एक ओर झुक गया और उस ने प्याले को औंधे मुँह लड़की के नंगे पेट के ऊपर रख दिया और फिर पेटी को लड़की की कमर से नीचे ला कर इतनी मजबूती से बाँध दिया कि प्याले के किनारे लड़की के पेट में गहरे धँस गये।

दहशत के मारे फ्रांते का खून सर्द पड़ गया। इस सारे समय में लिली ने एक शब्द भी न कहा था, यद्यपि पेटी और प्याले का दबाव उसे बहुत कष्ट दे रहा था। आखिर वह बड़ी बहादुरी से बोली—"एंडरी ! हिम्मत मत हारना। मैं यह प्याला भी सहन कर सकती हूँ। यह मुझे कोई कष्ट नहीं दे रहा है।"

सरदार ने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा, "संभव है ऐसा ही हो, लेकिन हम इसे हटाये लेते हैं। हमें दयालु होना चाहिए !"

और उस के आदेश पर नौकर ने मजबूत पेटी खोल कर प्याला लड़की के

पेट पर से हटा लिया।

"मेरे विचार में तुम दोनों अभी तक आने वाली घटना से अवगत नहीं हुए," उस ने अपनी बात जारी रखी, "थोड़ी देर बाद हम प्याले को फिर वहीं रख देंगे और अब इस के नीचे यह चीज रखी जायेगी।"

उस ने कोने में खड़े नौकर के हाथ से लोहे का पिंजरा पकड़ लिया और उसे सूर्य के प्रकाश में ले आया। फ्रांते और लिली की आँखें उस पर जमी रह गयीं! पिंजरे में एक बहुत बड़ा भूरा चूहा हिल-डुल रहा था। उस की बड़ी-बड़ी मूँछें और लंबे-लंबे दाँत धूप में चमक रहे थे।

"मेरे विचार में अब तुम पूरी बात समझ गये होगे," यून ली ने कहा, "इस चूहे को औंधे प्याले में बंद करके प्याले के पेंदे के ऊपर दहकता हुआ कोयला रखा जायेगा। ताँबा गरम हो जायेगा। चूहे से गरमी की तेजी बर्दाश्त न हो सकेगी और वह अपने बचाव के लिए कोई राह ढूंढ़ेगा। जाहिर है कि ऐसा रास्ता वह अपने तेज दाँतों से लड़की के पेट में ही बना सकता है। हाँ तो लेफ्टीनेंट फ्रांते, अब बताइये आप की फौजी चौकी कहाँ है?"

"नहीं, नहीं," लिली चिल्लायी—"चाहे कुछ भी हो, इन की बातों में मत आना। गद्दार हरगिज न बनना।"

सरदार का इशारा पाते ही प्याले वाला नौकर पुनः लड़की की ओर बढ़ा। लेकिन इस बार पिंजरे वाला आदमी भी आगे आया। उस ने अंधाधुंध एक हाथ पिंजरे में डाला और चूहे को गरदन से पकड़ कर बाहर घसीट लिया।

प्याला पुनः लड़की के पेट पर पहले की तरह रख दिया गया। फ्रांते आजाद होने के लिए बुरी तरह हाथ-पाँव मारने लगा।

सहसा लिली के गले से एक दबी हुई चीख निकली। चूहा प्याले के अंदर बंद कर दिया गया था।

फिर मजबूत पेटी के बंद होने की आवाज आयी। और अब प्याले के पेंदे पर दहकते हुए कोयले रखे जा रहे थे। प्याले के नीचे चूहे के तिलमिलाने से लिली के पेट की बुरी हालत हो रही थी और वह रस्से तुड़ाने की कोशिश कर रही थी।

एक नौकर ने कोई छोटी-सी चीज यून ली के हाथ में दी। वह एक चाभी थी।

"लेफ्टीनेंट फ्रांते, यह चाभी उस मजबूत पेटी का ताला खोल सकती है जिस ने प्याला थाम रखा है। अगर तुम अब भी मझे वे सूचनाएँ दे दो तो यह तुम्हें पुरस्कारस्वरूप दी जायेगी। अब भी मेरी मान ज़ाओ, नहीं तो फिर पानी सिर से गुजर जायेगा।"

फिर कमरे में एक भयानक चीख गूँज गयी।

फ्रांते ने भय से देखा कि लिली का शरीर अर्धवृत्ताकार में कालीन से ऊपर उठा हुआ था और जिन रस्सों से वह बँधी थी, उन में से कई लिली ने दर्द सहन न कर पा सकने की स्थिति में खुद को आजाद कराने की कोशिश में तोड़ दिये

थे। फिर उस ने देखा कि प्याले के निकट से खून की धार बह रही थी।

चूहा अपना काम कर रहा था।

फिर फ्रांते के मस्तिष्क को एक जबर्दस्त धक्का लगा। वह पागल हो गया। उस ने एक पागल-जैसी ताकत का प्रदर्शन करते हुए अपनी दायीं बाँह सिपाहियों की जकड़ से मुक्त करा ली और एक संरक्षक के मुँह पर जोर से मुक्का मारा। हथकड़ी वाला आदमी एकदम आगे बढ़ा, उठने के लिए जोर लगाया और उसे पीठ का बोझ हलका-सा महसूस होने लगा। उस ने लेटे-लेटे तेजी से तलवार घुमायी। एक आदमी चीखा और पलक झपकते खून में लथपथ हो फर्श पर तड़पने लगा। दूसरे नौकर एकदम सहम गये।

फ्रांते घुटनों पर जोर दे कर ऊपर उठा और एक चीते की तरह वांग के गले की ओर लपका। दोनों फर्श पर गिर पड़े। फ्रांते की तलवार वांग का पेट चीरती

फ्रांते की तलवार वांग का पेट चीरती हुई निकल गयी। विजय का नारा लगाते हुए फ्रांते उछल कर खड़ा हो गया। अब उस के दूसरे हाथ में वांग की तलवार थी। फ्रांते ने चीख कर डाकुओं के सरदार से पूछा, "चाभी कहाँ है?"

लेकिन अगले क्षण फ्रांते के हाथ में तलवार आ चुकी थी और वह उसे उन्मत्तता से घमा रहा था। इस से पहले कि वांग अपनी तलवार खींच कर आगे बढ़ता, फ्रांते तीन संरक्षकों को ठिकाने लगा चुका था।

वांग एक बहादुर और प्रशिक्षित सिपाही था। वह बड़ी चतुराई से फ्रांते के साथ हाथ आजमा रहा था।

बाकी दो संरक्षक, जिन्हें वांग ने इशारा किया था, अन्य नौकरों के साथ फ्रांते पर पिल पड़े और उसे फर्श पर गिराने में सफल हो गये।

इतने में पुनः लिली की दर्दभरी चीख सुनायी दी, जो उस लड़ाई के शोर पर छा गयी। फ्रांते ने उस की आवाज सुनी। फर्श पर गिरे-गिरे उस ने पुनः हुई निकल गयी। विजय का नारा लगाते हुए फ्रांते उछल कर खड़ा हो गया। अब उस के दूसरे हाथ में वांग की तलवार थी।

बाकी नौकर चीखते हुए बाहर भाग गये। केवल यन ली उस के सामने खड़ा रहा।

"चाभी कहाँ है ?" फ्रांते ने चीख कर कहा। उस के मस्तिष्क में केवल यही एक विचार था।

यून ली ने पीछे खिड़की की ओर एक कदम उठाया। यह महल एक चट्टान के किनारे बना हुआ था और पचास फुट नीचे मे-फिंग नदी बड़ी शान से बह रही थी।

यून ली एक बार फिर मुसकराया।

उस के चेहरे पर किसी प्रकार की घबराहट के चिह्न न थे। "फ्रांते ! तुम मुझे पराजित कर चुके हो," उस ने कहा, "लेकिन मैं भी तुम्हें चारों खाने चित कर चुका हूँ। भगवान करे कि तुम अपनी विजय की खुशी से आनंदित हो सको। यह रही चाभी !" उस ने चाभीवाला हाथ आगे बढ़ा दिया। जैसे ही फ्रांते एक नारा लगा कर उस की ओर बढ़ा, वह पीछे की ओर मुड़ा और कुछ कहे बिना खिड़की के रास्ते चाभी के साथ नीचे कूद गया।

नीचे वह नदी में खड़ी चट्टानों के ऊपर गिरा और मे-फिंग नदी का शोर मचाता हुआ पानी उसे अपने साथ बहा ले गया।

फ्रांते पीछे की ओर पलटा—लिली की ओर। अब प्याले के निकट से खून बहना बंद हो गया था। लिली चपचाप पड़ी थी। शरीर सर्द था।

उस का दिल उस के सीने में निस्पंद हो चुका था।

फ्रांते उन्मत्तता से कभी प्याले को और कभी मजबूत पेट को, कभी टूटे हुए दाँतों से और कभी जख्मी अँगुलियों से नोचता, पर सब व्यर्थ . . .

वह उन्हें हिला भी न सका।

किंतु लिली तो मर चुकी थी। क्या वह वाकई मर चुकी थी? एक नाड़ी बड़ी तेजी से धड़क रही थी।

क्या अब भी कोई आशा थी?

दीवाना फ्रांते उसे बंधनमुक्त करने लगा। क्या वह उसे बचा सकेगा? वह अभी मरी न थी?

नाड़ी अभी तक धड़क रही थी। अजीब बात थी कि वह एक ही जगह धड़क रही थी—आखिरी पसली के नीचे उस के सफेद और नरम पहलू में।

उस ने लिली के ठंडे अधर चूम लिये।

जब उस ने सिर उठाया तो नाड़ी का धड़कना बंद हो गया था। काला-काला खून फिर तेजी के साथ बहने लगा। और इस खून के अंदर से, लिली के पहलू में से उसे चूहे का सिर ऊपर की ओर उभरता हुआ दिखायी पड़ा। उस की काली-काली चमकदार आँखें फ्रांते को घूर रही थीं।

एक घंटे के बाद जब फ्रांते के साथी उस जगह पहुँचे तो उन्होंने देखा कि पागलपन की अवस्था में फ्रांते अपनी प्रेमिका के शरीर के ऊपर झुका हुआ था।

किंतु भूरा चूहा उन्हें कहीं दिखायी न दिया। ●

रवींद्र : बिलकुल ताजा खबर है, उस अभिनेत्री से उस अभिनेता से विवाह करने से इनकार कर दिया।

शंकर : कोई कारण ?

रवींद्र : दोनों इस पर सहमत नहीं हो सके कि निमंत्रण-पत्र में ऊपर किस का नाम जाये।

साहित्य एवं पत्रकारिता—इन दोनों ही क्षेत्रों में लोगों ने भारी परिश्रम किया है और लगन का परिचय दिया है। प्रस्तुत हैं कुछ उदाहरण

साहित्य-साधना

● राजेन्द्रप्रसाद जैन

इंगलैंड के राष्ट्रकवि जोन मेसफील्ड ने कहा है—मैं १७–१८ वर्ष का था जब मुझे कवि बनने की धुन सवार हुई, परंतु तब मेरी कविताओं की ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता था। मैं धीरज छोड़ बैठा। संयोगवश मैं ने कहीं एक कविता पढ़ी जिस का सारांश यह था—**केवल चाहने और हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से कोई महान नहीं बन सकता। मछली भगवान भेजता है, परंतु जाल तुम्हें ही फेंकना होगा।**

मेसफील्ड कहते हैं—ये पंक्तियाँ मेरे मन में पैठ गयीं। मैं ने फिर कठोर परिश्रम करना आरंभ किया और कई मास की साधना के पश्चात ऐसी कविता लिख पाया जो एक प्रकाशक ने स्वीकार कर ली। कई वर्षों तक मेरी फुटकर कविताएँ तथा छोटी कहानियाँ ही छपती रहीं। इसी बीच महाकवि यीट्स ने मुझे सलाह दी कि तुम कोई ग्रंथ या महाकाव्य लिखो और मैं उन की बात मान कर एक ग्रंथ लिखने में लग गया। परंतु इस में मुझे सफलता नहीं मिली। मेरी हिम्मत फिर टूट गयी। मैं ने उपर्युक्त पंक्तियों का पुनः स्मरण किया और फिर काम में जुट गया। दस वर्ष के कठोर परिश्रम के पश्चात मेरा प्रथम उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिस की आलोचकों और यीट्स ने भी सराहना की।

अमरीकी साहित्यकार कर्नल वुड को अपनी एक रचना पर चार हजार रुपये के लगभग पारिश्रमिक मिलता था। जब उन्हें संपादक पीज ने बतलाया कि उन की पत्रिका 'पैसिफिक मंथली' अर्थाभाव के कारण बंद होने वाली है तो वुड ने वचन दिया कि वे अब अपनी रचनाएं कहीं और न भेज कर केवल इसी पत्रिका को ही भेजा करेंगे। चार वर्ष तक वुड इस पत्रिका को बिना कोई पारिश्रमिक लिये ही अपनी रचनाएँ भेजते रहे। एक अंक में कभी-कभी तो उन की दस-दस रचनाएँ रहती थीं और चूंकि एक अंक में एक ही व्यक्ति के नाम से कई रचनाएँ अच्छी नहीं लगतीं, अतः वुड ये रचनाएँ

छद्मनाम से लिखते थे।

यूनानी साहित्यकार काजंटजेकिस ने होमर की 'ओडेसी' की कथा आगे बढ़ाते हुए एक नयी 'ओडेसी' लिखी है, जो विश्व-साहित्य की अनूठी रचना मानी जाती है। इस पर नोबल-पुरस्कार देने की बात भी कई बार उठी। जी० किमन फ्रायर से उन के मित्रों ने इस का अँगरेजी अनुवाद करने को कहा। फ्रायर इस कार्य के लिए चार मास तक काजंट के पास रह कर उन के इस विशाल ग्रंथ के प्रत्येक शब्द का भाव समझने का प्रयत्न करते रहे। परंतु इस पर भी उन्हें अनुवाद का कार्य हाथ में लेने का साहस नहीं हुआ। संयोग से इन्हीं दिनों उन्हें एथेंस विश्वविद्यालय में आधुनिक ग्रीक साहित्य की शोध-छात्रवृत्ति मिल गयी। तब उन्हें फिर तीन वर्ष तक काजंट के पास रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उस के पश्चात ही उन्होंने अनुवाद का कार्य आरंभ किया।

ज्वायस की रचनाएँ प्रथम बार जब एक पत्रिका ने प्रकाशनार्थ स्वीकृत कीं तो उन की आयु ४० वर्ष की हो चुकी थी। 'यूलिसिस' को लिखने में उन्हें पूरे बीस वर्ष लगे थे।

नोबल पुरस्कारों के संस्थापक अलफ्रेड नोबल साहित्यकार भी थे। उन के एक नाटक 'नेमिसिस' की सभी प्रतियाँ (तीन को छोड़ कर) उन के उत्तराधिकारियों ने फूंक दीं, क्योंकि नाटक का स्तर इतना गिरा हुआ था कि उस से नोबल जनता की निगाहों में उठने के स्थान पर गिर जाते।

अमरीकी साप्ताहिक 'सैटर्डे ईवनिंग पोस्ट' की बिक्री ५० लाख प्रति-सप्ताह है। १९५३ में इस की विज्ञापनों से आय लगभग ६० करोड़ रुपये थी। इस के लिए ये लोग कितना त्याग करते हैं इस का अनमान इसी से हो सकता है कि इस पत्रिका में कोई भी अश्लील, औषध-संबंधी तथा अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापन नहीं छपता। एक बार इस पत्रिका ने ८५ लाख डालर की आय वाले विज्ञापन केवल इसलिए अस्वीकृत कर दिये कि इन के कारण पाठ्य-सामग्री कम हो जाती।

अमरीकी मासिक पत्रिका 'इंडस्ट्रियल रिसर्च' को निकालने के लिए उस के संचालकों ने साढ़े पाँच लाख डालर एकत्रित किये थे। इस के पश्चात भी वे तीन वर्ष तक इस की तैयारी में लगे रहे, तब कहीं वे इस का प्रथम अंक निकाल पाये थे।

घटिया साहित्य घटिया राष्ट्र का लक्षण है। —गेटे

जीवन एक अलबम पहेली

तब मैं नवीं कक्षा में पढ़ती थी। मेरी सह-पाठिनी सन्तो को बचपन से ही मिरगी का रोग था। कई बार वह स्कूल में बेहोश हो चुकी थी। इस दशा में उसे बड़े कष्ट के बाद होश आता था।

एक दिन इंटरवल के दौरान मैं अपनी सहेलियों को किसी फिल्म की कहानी सुना रही थी। इंटरवल कब खत्म हो गया, इस का ध्यान ही नहीं रहा। अचानक एक लड़की बोली, "अरे जल्दी से ऊपर कक्षा में चल। इंटरवल खत्म हो गया। आज बहुत डाँट पड़ेगी!" सब से पहले सन्तो दौड़ कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। मैं ने उस के पास जा कर कहा, "इतनी तेज क्यों दौड़ रही है? तेरी तबीयत वैसे ही ठीक नहीं रहती, अगर बेहोश हो गयी तो?" फिर तुरंत ही मुझे एक तरकीब सूझी। बहिनजी की नाराजगी से बचने के लिए मैं ने सन्तो से कहा, "तू बुरी तरह हाँफ रही है, यहाँ लेट जा। हम सब बहिनजी से कहेंगे कि सन्तो बेहोश हो गयी है, इसलिए हमें कक्षा में आने में देर हो गयी।"

सन्तो सीढ़ियों पर ही लेट गयी। कुछ ही देर में सारी कक्षा सन्तो के पास जुड़ आयी। मैं और मेरी सहेलियाँ सन्तो के कुशल अभिनय पर मन ही मन मुसकरा रही थीं। पर काफी देर तक पानी के छींटे देने और हिलाने-डुलाने पर भी जब सन्तो को होश नहीं आया तो बहिनजी घबरा गयीं। डाक्टर को बुलाया गया। उस ने जाँच कर बताया कि लड़की की हृदयगति रुक जाने से मृत्य हो गयी है।

—मोनिका जैन, बंबई

गत वर्ष होली पर इलाहाबाद के कई क्षेत्रों में सांप्रदायिक दंगे हुए। कोई भी दिन ऐसा न होता जिस दिन एक-दो खून न हो जायें। अधिकारियों ने शहर


पालन पोषण सही कीजिए ;
बच्चों को बोर्नविटा दीजिए !
Cadbury's
Bournvita
the ideal food drink
for strength and vigour
450g
nett
बढ़ने और पढ़ने वाले बच्चों के लिए हर दिन के भोजन से मिलने वाली शक्ति काफ़ी नहीं होती। वे जितनी शक्ति रोज प्राप्त करते हैं उतनी पढ़ने और खेलकूद में खर्च कर डालते हैं। बच्चों में बराबर शक्ति बनाए रखने के लिए उन्हें हर दिन बोर्नविटा देना चाहिए। बोर्नविटा से बच्चे स्वस्थ तथा उत्साह पूर्ण रहते हैं।
स्वादिष्ट और पौष्टिक बोर्नविटा कोको, दूध, माल्ट और शक्कर का सन्तुलित मिश्रण है।
शक्ति, उत्साह और स्वाद के लिए— कॅडबरिज़ बोर्नविटा !
Bensons-0391 Hin

में कर्फ्यू लागू कर दिया ।

एक दिन दोपहर को लगभग ढाई बजे एक २०–२२ वर्ष का युवक मेरे पास आया और मुझ से कहीं जाने की अनुमति माँगने लगा । मैं अपनी 'होमगार्ड' की ड्यूटी पर था । किसी को बाहर निकलने की आज्ञा नहीं थी, पर उस के बहुत आग्रह करने पर मैं ने उसे चले जाने दिया । लगभग २० मिनट बाद मुझे सूचना मिली कि किसी का खून हो गया है । जब मैं उस स्थान पर पहुँचा तो देखा कि चाकुओं के वारों से मृत एक युवक पड़ा हुआ था । युवक वही था जिसे कुछ देर पहले मैं ने जाने की अनुमति दी थी ।

—मार्कंडेय मिश्र, 'संकोची', इलाहाबाद

मेरे एक बहनोई पुलिस-रक्षा-दल में सब-इंस्पेक्टर थे । अधीनस्थ कर्मचारियों को छुट्टी देने में वे सदा लाचारी प्रकट करते थे । एक दिन उन का एक मातहत अपनी पत्नी की गंभीर बीमारी का तार ले कर आया, मगर मेरे बहनोई ने छुट्टी देने से इंनकार कर दिया । हमारी सिफारिश पर भी उन्होंने गौर नहीं किया । वह बेचारा दुखी हो कर चला गया ।

उसी दिन संध्या को उन के घर से तार आया–'पिताजी सख्त बीमार हैं । फौरन आओ ।' वे तुरंत दफ्तर गये और उस कर्मचारी को बुला कर दस दिन का अवकाश दे दिया । पर उन्हें उन के अधिकारी ने बहुत अनुनय के बावजूद दो दिन की ही छुट्टी दी । उन के घर पहुँचने के एक घंटे बाद उन के पिताजी का स्वर्गवास हो गया ।

इस घटना के बाद से वे अपने किसी मातहत को घर से किसी की गंभीर बीमारी का तार आने पर अवकाश देने में संकोच नहीं करते हैं ।

—मिथिलेश कुमारी, मुर्शिदाबाद (पश्चिमी बंगाल)

पड़ोस में स्थानीय महाविद्यालय के रसायनशास्त्र के प्रध्यापक रहते थे । वे पक्के नास्तिक थे । भगवान की पूजा करना उन के लिए गँवारूपन था । हमारे व्रत करने पर अकसर कहते थे, "तुम लोग-पढ़ी-लिखी हो कर भी पाखंड के चक्कर में पड़ती हो !"

एक दिन उन्हें तार मिला कि उन की माँ का स्वर्गवास हो गया । वे एकदम घबरा गये । पड़ोसियों ने उन्हें सांत्वना दी और कहा, "भगवान का नाम ले कर धीरज धरो ।" प्राध्यापक साहब भावावेश में कहने लगे, "यदि भगवान में कुछ शक्ति है, वह असंभव को संभव कर सकता है तो मेरी माँ को पुनः जीवित कर दे ।

तब मैं जानूँगा कि भगवान है और जीवनपर्यंत सोमवार का व्रत करूँगा।"

माँ की अंतिम क्रिया में जाने के लिए वे दुखी मन से तैयारी करने लगे। कुछ ही देर में उन्हें एक्सप्रेस लेटर मिला। प्राध्यापक साहब की माँ ने लिखा था–'बेटा, तार देख कर घबराना नहीं। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मेरे सिर पर कौआ बैठ गया था अतः सब ने यह दोष मिटाने के लिए तुम्हारे पास तार भेजा था।'

अब प्राध्यापक महोदय भी व्रत करते हैं।

—संध्यारानी गुप्त, भोपाल

दादाजी का देहांत हो गया था और तेरहवीं के दिन पगड़ी की रस्म हो रही थी। प्रथा के अनुसार मेरे ताऊजी को पगड़ी बाँधी गयी। उसी समय दरवाजे की चौखट पर टँगी गैस के गिरने की आवाज आयी। देखा तो गैस से चौखट को आग लग गयी थी।

ताऊजी ने चट से पगड़ी उतार दी। बोले, "यह पगड़ी मुझे बँधनी ही नहीं है। मैं अब शायद ही बचूँ।"

दस दिन भी नहीं बीते थे कि एक रात अचानक ही वे पेट के दर्द से कराहने लगे। काफी उपचार किया, लेकिन वे अच्छे नहीं हो पाये और चल दिये।

आज भी कभी-कभी मैं सोचा करता हूँ कि चौखट का जलना क्या अपशकुन ही था या हम लोगों की बेवकूफी, जो हम ने उस पर बिना ढक्कन की गैस टाँग दी थी!

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी, कोटा

बरसात के दिन थे। दादाजी खेत में काम कर रहे थे। थोड़ी दूर पर हमारी गायें चर रही थीं। एकाएक जोरों का पानी आया। दादाजी दौड़ कर खेत के पास एक आम के पुराने वृक्ष के नीचे खड़े हो गये। सब गायें घर की ओर भागीं, किंतु हमारी सब से सुंदर और सब से सीधी गाय 'संदरी' दादाजी की ओर भागी। लगा वह मारने दौड़ रही है।

उस की इस हरकत से दादाजी उस पेड़ से करीब साठ गज दूर दूसरे वृक्ष के नीचे चले गये। सुंदरी दौड़ती हुई न जाने कहाँ भाग गयी।

कुछ ही क्षणों बाद जोरों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली उसी पुराने वृक्ष के ऊपर गिरी जिस के नीचे दादाजी पहले खड़े थे। सारा वृक्ष जल गया।

—नीलमणि दुबे, नरसिंहपुर

हमारे पड़ोस में एक मुस्लिम परिवार रहता था। उन्होंने एक काली बिल्ली पाल रखी थी। वह अकसर रात को हमारे यहाँ आती थी। एक रात मेरी माताजी दूध जमाने के लिए उबलता हुआ छोड़ कर कमरे में आ गयीं। सर्दियों के दिन थे। मैं पढ़ रहा था। पूछने पर मैं ने कहा कि थोड़ी देर में दूध लूँगा। कुछ समय बाद माताजी दूध लायीं, मैं ने उसे मेज पर रख दिया।

रात के करीब ९ बजे बाहर कुछ शोरगुल हुआ। मैं ने और माताजी ने देखा कि एक सज्जन जो बाहर से आये थे, रिक्शेवाले से झगड़ा कर रहे थे। जब हम लौटे तो देखा कि बिल्ली दूध पी चुकी थी। मैं बिना दूध पिये सो गया। माताजी ने बचे दूध को जमा दिया। सुबह उठ कर देखा कि पड़ोसी बिल्ली के मरने पर आश्चर्य कर रहे हैं, कोई कह रहा था कि शायद किसी ने जहर दे दिया।

दोपहर को माताजी रायता बनाने के लिए दही मथने लगीं तो देखा कि तली में मरी हुई छिपकली पड़ी है। अब समझ में आया कि बिल्ली क्यों मर गयी।

—प्रेमदीपक शर्मा, कानपुर

● विश्वराज

स्वप्न जो अधूरे रह गये

गतांक में आप ने कुछ सिने-कलाकारों के अधूरे सपनों के बारे में पढ़ा। अब संसार के कई महापुरुषों की उन आकांक्षाओं के बारे में पढ़िये जो कभी उन्होंने अपने मन में सँजोयी थीं, किंतु

किशोरावस्था में प्रायः सभी भावी जीवन के सपने देखते हैं। प्रत्येक किशोर अपने को कोई अफसर, इंजीनियर, नेता आदि बना हुआ देखता है। जैसे-जैसे किशोरावस्था बीतती जाती है और व्यक्ति जीवन के कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर होता है, वह पाता है कि उस के सपने केवल सपने रह गये हैं और वह न जाने क्या बन गया है! जीवन के किन्हीं एकाकी क्षणों में इन सपनों की याद आती है और तब मन भटक कर अतीत की गहराइयों में डूब जाता है। वह विह्वल हो कह उठता है, 'काश मेरा सपना पूरा होता!'

देखे गये सपनों के अनुरूप बन पाना बड़ा मुश्किल होता है। परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन को मोड़ती चलती हैं और वह असहाय-सा परिस्थितियों के अनुरूप मुड़ता चला जाता है। पर कर्मठ व्यक्ति निराश नहीं होते। जिस क्षेत्र की ओर वे मुड़ जाते हैं, उस में ही परिश्रम करते और सफलता का वरण करते हैं।

संसारप्रसिद्ध दार्शनिक और हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन



अपनी किशोरावस्था में यह सपना देखा करते थे कि जीवन में प्रवेश करने पर वे या तो टिकट-कलक्टर होंगे या फिर पुलिस-दरोगा हो सफेद घोड़े पर बैठ कर अपने क्षेत्र में गश्त लगायेंगे। जब वे कर्म की यथार्थ भूमि पर उतरे तो टिकट-कलक्टर या पुलिस-दरोगा के स्थान पर दार्शनिक बन चुके थे।

रेलवे की नौकरी की कल्पना अकेले राधाकृष्णन के हिस्से में नहीं पड़ी थी। विश्व के कितने ही विशिष्ट पुरुषों ने इस ओर अपनी कल्पना दौड़ायी थी। लेनिन, माओ-त्से तुंग और च्यांग काई

शेक रेलवे में गार्ड होना चाहते थे। माओ ने तो गार्ड के लिए प्रार्थना-पत्र तक भर दिया था, किंतु वे लिये नहीं गये।

स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री भी रेलवे में गार्ड होना चाहते थे। पर



कद लंबा न होने के कारण वे भी नहीं लिये गये। हाँ, समय ने एक बार उन्हें रेलवेमंत्री जरूर बना दिया था और इस उत्तरदायित्व को उन्होंने बड़ी लगन तथा त्याग के साथ निबाहा था।

अँगरेज दार्शनिक बर्ट्रांड रसेल कमीशन-एजेंट होना चाहते थे और प्रारंभिक दिनों में कुछ समय तक उन्होंने कमीशन-एजेंट का काम किया भी था।

मनुष्य बनना कुछ चाहता है और बन कुछ जाता है। सपने देखना और बात है और सपनों के अनुरूप बन जाना और बात है। बहुत कम व्यक्ति ऐसे होते हैं जो देखे गये सपनों के अनुरूप बन पाते हैं।

किंतु जो अपने सपनों के अनुरूप नहीं बन पाये हैं, उन्हें अपने वर्तमान जीवन से निराश नहीं होना चाहिए। क्या पता उस क्षेत्र का नेतृत्व करने के लिए ही वे उस क्षेत्र में आये हों!

जार्ज बर्नार्ड शॉ के सपनों का भी एक जायजा लीजिये। वे साहित्यकार



बने, पर उन के प्रारंभिक जीवन का लक्ष्य इस से दूर, बहुत दूर था। वे एक सफल पादरी बनना चाहते थे। उन की संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा भी इसी दिशा में हुई थी। अपने इस वांछित कार्य के लिए वे इतने उत्सुक थे कि उन्होंने कितने ही 'सरमन' (प्रवचन) लिख कर तैयार ही नहीं कर लिये थे वरन उन को भली-भाँति कंठस्थ भी कर लिया था। पर शॉ पादरी नहीं बन सके और उन्होंने निराश हो कर प्रूफ पढ़ना प्रारंभ किया। यहीं उन की सरस्वती जागी और वे क्या से क्या हो गये!

नेहरूजी ने भी एक स्वप्न देखा था, जो पूरा नहीं हुआ। उन्होंने अपनी आत्म-



कथा में लिखा है—"जब प्रथम जैपलिन बर्लिन में उड़ाया गया तो मैं वहाँ मौजूद था। तब की सारी घटनाएँ मुझे आज भी याद हैं और अब सोचता हूँ कि काश मैं भी उड़ाका होता . . ." राजनीतिज्ञ नेहरूजी

ने अपने अंदर एक बिलकुल भिन्न व्यक्तित्व भी सँजो रखा था।

नोबल-पुरस्कार-विजेता विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तो अपनी किशोरावस्था में बड़ी अजीब कल्पना की थी! एक बार वे उत्तरप्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रांत) में आये और कुछ दिन



वहीं ठहरे। रवि बाबू की कविता तब तक जन्म ले चुकी थी। जहाँ वे ठहरे थे, वह स्थान ग्रांड ट्रंक रोड के किनारे था। रवि बाब कलकत्ता से पेशावर तक के उस राज-मार्ग पर असंख्य लोगों को चलते देखते। बैलगाड़ियाँ, ऊँट, हाथी, घोड़े आदि वाहन एवं व्यक्ति उन की नजरों के सामने से गुजरते थे। रवि बाबू का जिज्ञासु मन उस पथ के दोनों छोरों को देखने के लिए मचल पड़ा। अतः उन्होंने अपने बाल्य-सरल मन में यह कल्पना सँजोयी कि बैलगाड़ी द्वारा गाजीपुर से पेशावर तक की यात्रा की जाये। कल्पना कीजिये बैलगाड़ी और गाजीपुर से पेशावर तक! कवि का यह स्वप्न अपूर्ण ही रहा, क्योंकि जब उन के पिताजी ने उन की यह योजना सुनी तब उन को तुरंत वापस बुला लिया गया।

प्रस्तुत क्षण

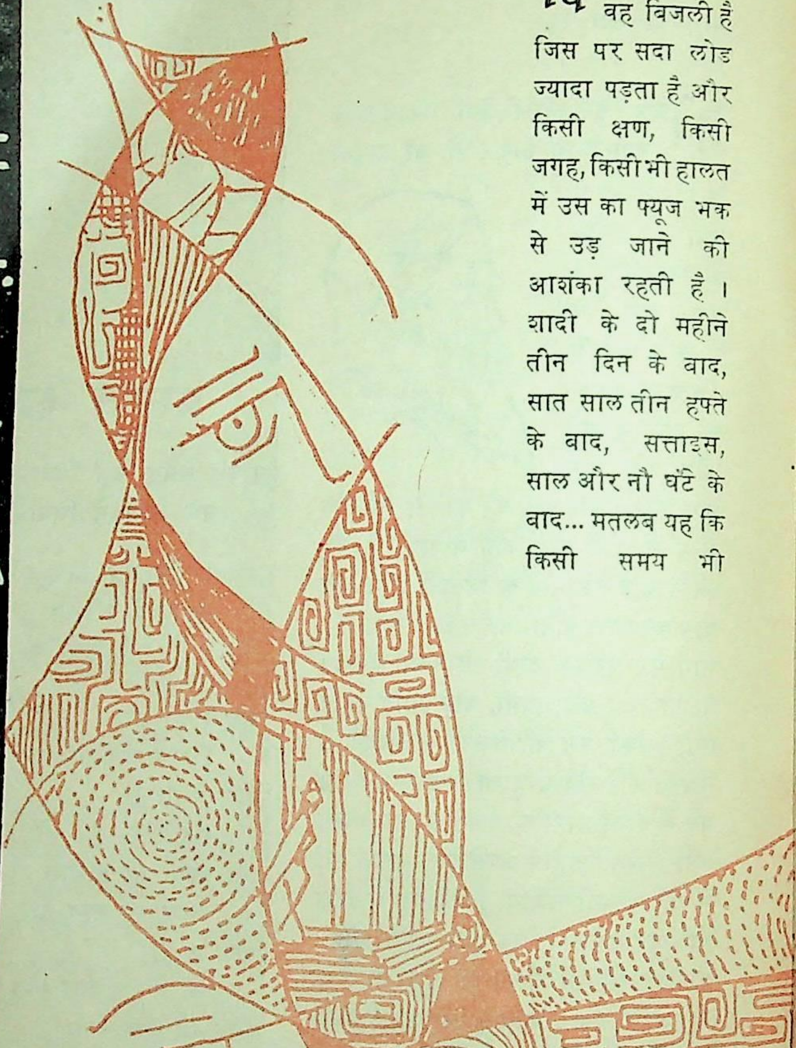
जीवन समग्र नहीं जिया जाता
उसे क्षणों में जियो

प्रत्येक क्षण मधु की बूँद है
वह व्यर्थ न जाय
उसे पियो

क्षण समय की
विराट अखंडता का अंश है
एक किरण है
संसृति के सूर्य की
उसे प्राणों का आकाश दो
अधर का हास दो
ऐसा न हो
कि प्रस्तुत क्षण बीत जाय
और यों शनैः-शनैः
समग्र जीवन का घट रीत जाय

—देवव्रत जोशी

मैं, अनीता और जेब



विवाहित जीवन वह बिजली है जिस पर सदा लोड ज्यादा पड़ता है और किसी क्षण, किसी जगह, किसी भी हालत में उस का फ्यूज भक से उड़ जाने की आशंका रहती है। शादी के दो महीने तीन दिन के बाद, सात साल तीन हफ्ते के बाद, सत्ताइस, साल और नौ घंटे के बाद... मतलब यह कि किसी समय भी

अचानक मेन-पोल फ्यूज हो सकता है और मुश्किल यह है कि नया फ्यूज कभी पुराने तार से नहीं लगता। हमेशा नया तार लगाना पड़ता है।

मेरी और अतिया की जिंदगी में यह बिजली का तार जंबा थी।

मुझे सब से पहले जंबा का खयाल उस समय आया जब मैं शेव के बाद तौलिये से मुँह पोंछ रहा था। यह खयाल उस ताजे जख्म की तरह था जो नये ब्लेड ने मेरी ठोड़ी पर किया था और जिस में से थोड़ी-थोड़ी देर बाद खून रिसता रहता था।

अतिया, जंबा और मैं एक ऐसे त्रिकोण के अस्पष्ट कोण थे जो घटते और बढ़ते रहे, जिन्होंने उलाहनों या भर्त्सना से कुछ तय नहीं किया, बल्कि मैं तो यह भी कहूँगा कि हम ने तो कुछ कभी तय ही नहीं किया। हम तो अपनी-अपनी आग में, अपने-अपने संदेहों में, अपनी-अपनी नेकनीयती में यों जलते रहे जैसे फासफोरस। हम लोगों ने बड़ी सहृदयता से एक-दूसरे की जिंदगी तबाह कर दी।



नेकियाँ नेकियों को घायल करती रहीं। मुहब्बत ने मुहब्बत का गला घोंट दिया। शराफत ने शराफत की जान ले ली।

हम तीनों को एक-दूसरे के दिल का इस कदर खयाल था कि आखिरकार इसी खयाल ने तीनों दिल खरल में डाल कर कुश्ता बना डाले।

अतिया मेरी जिंदगी में इस तरह आयी जैसे सावन में बारिश होती है और जिस बारिश से परनाले टूट जाते हैं, छतें बैठ जाती हैं और सड़कों पर गंदा पानी जमा हो जाता है।

जंबा मेरी जिंदगी में वह गिलास भर पानी बन कर आयी जो रेगिस्तान में तपी दोपहर के वक्त मिलता है और जिस पर किसी दुश्मन की संगीन पहरे में खड़ी होती है।

कभी-कभी अतीत को देखता हूँ और सोचता हूँ तो खयाल आता है कि हर शादी को संभवतः वह रोजमर्रा की जिंदगी खा जाती है जो कतरा-कतरा जहर घोलती है। जिस तरह ज्यादा मीठे फल में अपने-आप खटास पैदा हो जाती है। शादी के पके हुए आड़ू में भी अपने-आप वे कीड़े पैदा हो जाते हैं जिन का आड़ू-जैसी

अतिया और जंबा

बानो कुदसिया उर्दू की सुप्रसिद्ध कथा-शिल्पी हैं । करीब पंद्रह वर्ष से लिख रही हैं। दो उपन्यास —'पुरवा' और 'एक दिन' —तथा एक कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । आधुनिक जीवन में व्याप्त संत्रास, घुटन, एकाकीपन तथा कुंठा का बानो कुदसिया ने अपनी रचनाओं में जैसा चित्रण किया है वैसा उर्दू साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । इस बार सार-संक्षेप के अंतर्गत उन की एक लंबी कहानी 'मुहब्बत' का रूपांतर प्रस्तुत किया जा रहा है । इस कहानी में एक चिकित्सक की घुटन और एकाकीपन का बड़ा मार्मिक चित्रण है

खूबसूरत चीज के साथ कोई संबंध नहीं होना चाहिए !

बहरहाल, जंबा के आने के बाद जो कुछ भी हुआ--और जो कुछ भी न हुआ--और जिस तरह हमारी खुशियों की बिजली बुझी और मेनपोल फ्यूज हुआ, उस का संबंध उस दुखांत से है जिसे रोजमर्रा की जबान में शादी कहते हैं ।

मर्द की जात एक समुद्र से मिलती-जुलती है । उस में हमेशा पुराना पानी भी रहता है और नये दरिया भी आ कर गले मिलते हैं । समुद्र से पुरानी वफा और नया प्यार अलग नहीं किया जा सकता । वह उन दोनों के लिए कट मरेगा ।

लेकिन औरत उस झील की तरह है जिस का हर चश्मा उस के अंदर ही से निकलता है । ऐसे में जब कि झील की जिंदगी और है और समुद्र और तरह से रहता है, उन दोनों का सदा एक जगह रहना किस कदर मुश्किल है ! मछली और अबाबील के संयोग की तरह उन के दृष्टिकोण में मतभेद हो जाने की गुंजाइश है ।

अतिया कौन थी ?

जंबा कौन है ?

क्या दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं या दोनों एक ही सच्चाई के दो रूप हैं ?

अतिया से जंबा तक और जंबा से किसी और औरत तक कितना फासला है?

जब पहली बार मैं ने जंबा का जिक्र अतिया से किया तो वह पलंग पर लेटी मुन्ने को दूध पिला रही थी । मुन्ने के बाल और माथे पर पसीने के कतरे थे और वह

अपनी बायीं टाँग अतिया के पेट पर रखे था। वे दोनों एक-दूसरे की जात में जुड़े हुए थे। लकड़ी के तख्ते में लकड़ी की कील गड़ी थी। मैं ने उस नौजवान पलंग-जादी के पास बैठ कर सावधान लहजे में कहा, "कल मेरी क्लीनिक में एक लड़की आयी थी। अफ्रीका से आये उसे एक हफ्ता हुआ है, बेचारी बीमार पड़ गयी..."

"अफ्रीका से क्यों आयी है ?" अतिया ने दुपट्टे से मुन्ने का सिर पोंछ कर पूछा।

"डाक्टरी पढ़ने !"

मैं अतिया से आम तौर पर अपने मरीजों की बातें करता रहता था, लेकिन यह जिक्र उस जिक्र से भिन्न था। मेरी शराफत जैसे अतिया को सचेत कर रही थी, जगा रही थी। साथ ही मैं वह बोझ भी सरसरी तौर पर सिर से उतारना चाहता था।

लेकिन यह बोझ इतनी आसानी से कहाँ उतरा करते हैं !

जैसे सोते में गले में बल पड़ जाये और रह-रह कर टीस-सी उठे।

"अफ्रीका में कहाँ रहते हैं उस के माँ-बाप ?"

"केनिया में . . . उस का बाप कपड़े का व्यापार करता है।"

"क्या बीमारी है उसे ?"

"गुरदों में दर्द था। अब ठीक है।"

अतिया ने बच्चे के माथे पर होंठ रख कर धीरे से कहा—"बेचारी परदेसिन है। आप उस का खयाल रखियेगा।" इस इजाजत ने गोया गैर-कानूनी चीजों के निर्यात का परिच्छेद खोल दिया। अतिया उस घोड़े की तरह थी जो एक ही खूँटे से बँधा चक्कर पर चक्कर लगाये जाता है। थक जाता है, लेकिन उस की मंजिल उस चक्कर से बाहर नहीं निकलती। और जंबा जंगली चीतल की तरह थी, हर नियम से आजाद—शायद यह भी मेरा वहम था।

शुरू-शुरू में जंबा के बारे में रात को सोचना मुझे नैतिक चोरी-सी लगी, लेकिन मैं उस मरीज की तरह था जिस की आँख रात के आखिरी किनारे पर जा खुलती है और फिर दिन चढ़ने में नहीं आता। मुझ में और जंबा में कोई संबंध न था, यहाँ तक कि देखा-देखी तक मौजूद न थी। फिर भी जब वह समीप होती तो मेरी अँगलियाँ उस के शरीर को महसूस कर सकतीं। मैं अवचेतन रूप में उस के शरीर से अवगत हो चुका था।

मैं ने उस जिस्म को छू कर नहीं देखा था, लेकिन आँखें बंद करने पर उस का एक-एक खम, उस का एक-एक उतार-चढ़ाव, उस की गरिमा, उस की नरमी, सब को मैं महसूस करता था।

धीरे-धीरे मैं क्लीनिक में, घर पर, मरीजों के घरों में, फिल्म देखते हुए, दुकानों पर, चीजें खरीदते हुए जंबा के बारे में सोचने लगा। पर यह फिक्र एक बाप की फिक्र थी—ऐसे बाप की जिस की बेटी ससुराल जा चुकी हो और जो समझ न पाये कि बेटी का असली घर उस का घर

नहीं है ।

जंबा के गुरदों में मामूली-सा दर्द था। कुछ दिन के इलाज के बाद यह शिकायत जाती रही, लेकिन वह क्लीनिक आती रही। मैं ने नुस्खे की जगह टानिक लिखने शुरू कर दिये । टानिकों के बाद विटामिनों की बारी आ गयी । उस के बाद कई दिन परहेज बताता रहा । वह मेरे मशविरे बड़े गौर से सुनती रही । फिर अचानक हम दोनों एक ही समय एक-दूसरे की ओर देख बैठते। यह नंगी नजर हम दोनों को बिजली के धक्के की तरह लगती और हम खामोश हो जाते । मैं ने कभी उस से संबंध बढ़ाने की कोशिश न की। वह कभी मुझ से बेतकल्लुफ होने पर तैयार नजर न आयी। फिर हम दोनों के बीच एक अनकहा संबंध बढ़ रहा था, मजबूत हो रहा था, बिना किसी टानिक के, बिना किसी विटामिन के ।

इनसान पेड़ की तरह क्यों है कि दिन पर दिन बढ़ता चला जाता है। जो कल था, सो आज नहीं है। जो आज है, वह कल न होगा । इस परिवर्तनशील आकृति से, इस बदलते हुए द्रव्य से वफा की अपेक्षा कितनी गलत चीज है । लेकिन मनुष्य सामान्यतया उस छाया से, उस तसवीर से मुहब्बत करता है जो उस की रचना करता है । उस कल्पना का, उस के महबूब से कोई संबंध नहीं होता । इसीलिए मुहब्बत किये जाना इतना आसान भी है और इतना मुश्किल भी ।

अतिया जिस डाक्टर से मुहब्बत कर रही थी, वह उस की जात से अलग हुआ चश्मा था। मैं जिस अतिया से मुहब्बत करने में असमर्थ था, वह अतिया मेरे आदर्श में फिट नहीं होती थी—यही हमारी त्रासदी थी ।

मेरी शादी को कुछ ही दिन हुए थे। शादी मुझ पर ईथर की तरह सवार थी। मैं सोते में, जागते में, हर क्षण अपनी बीवी में यों लिपटा रहता जैसे इत्र-भरे लिफाफे में महबूबा का खत ।

शादी के शुरू के दिनों का जिक्र है। अतिया के सिर में एक शाम दर्द उठा। यह दर्द इतना चिंताजनक न था कि मैं रात भर जागता रहता, लेकिन पता नहीं क्यों सोती आँखों वाली, जागते चेहरे वाली अतिया में क्या बात थी कि मैं तकिये पर सिर रखता और तड़प कर उठ बैठता। मुझे यों ही शक-सा था कि मेरी आँख लगते ही वह सदा के लिये विदा हो जायेगी ।

अप्रैल के आखिरी दिन थे । कमरे में पंखों की ऊँघ-भरी आवाज हवा के साथ आवारा फिर रही थी। हमारे कमरे की खिड़की से जामुन का घना पेड़ नजर आता था। रह-रह कर उस का कोई सूखा पत्ता 'पक्के' फर्श पर गिरता तो मैं काँप उठता । सुबह अजान से थोड़ी देर पहले कोयल कूकने लगी तो अतिया की आँख खुल गयी । मुझे खिड़की में खड़ा देख वह मेरे पास आ बैठी और रुँधी हुई आवाज में बोली, "आप इस कदर मुहब्बत न किया करें मुझ से ।"

मेरे गले में असंख्य आँसू आ छिपे और मैं खामोशी से उस का चंदन-सा माथा सहलाता रहा। अतिया ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और घुटी सी आवाज में बोली, "मुझे ऐसी मुहब्बत से बड़ा भय लगता है। ऐसी मुहब्बतें. . .पायेदार नहीं होतीं।"

वह ठीक ही तो कहती थी। ज्वार-भाटे का क्या विश्वास ?

कभी बढ़ती-उठती दीवार-सी लहर आती है और कभी यों लौट जाती है जैसे साहिल से कभी अवगत थी ही नहीं। लेकिन तब तो मुहब्बत मुझ पर ईथर की तरह छायी थी। मैं ने उसी मदहोशी में कहा, "मैं जो कुछ पसंद करता हूँ, समझ-सोच कर पसंद करता हूँ . . . मेरी मुहब्बत नापायेदार नहीं हो सकती।"

उस की सोती आँखों में मोटे-मोटे चमकदार आँसू आ गये और वह धीरे से बोली, "इनसान तो बढ़ता-घटता रहता है। यह कोई पत्थर नहीं है कि हमेशा एक ही भावना से बँधा रहे ?"

मैं विस्मय से उसे देखता रहा। सुबह की हवा में जामुन के पेड़ से कई पत्ते इकट्ठे गिरे।

"मैं सोचती हूँ . . . सोचती रहती रहती हूँ कि अगर . . .अगर . . . आप में कोई बेहतर लड़की आ गयी तो मैं क्या करूँगी ? कैसे अपने को समझाऊँगी ? पीछे लौटना भी तो आसान नहीं है. . ."

मैं ने उस का चेहरा हाथों में ले कर कहा, "जिस बेहतर लड़की की मुझे तलाश थी, वह मिल गयी है मुझे।"

अतिया ने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया, वह धीरे-धीरे कहती गयी, "ऐसी बातों के लिए यह उम्र बहुत लंबी है। शादी के दो मास तीन दिन बाद . . .सात साल तीन हफ्ते के बाद, सत्ताइस साल और नौ घंटे बाद . . . किसी दिन अचानक . . .वह मनहूस क्षण आ सकता है जब मुझे तो आप से मुहब्बत रहे और आप को . . . इनसान बदलता रहता है नम्मो . . .बढ़ता है, घटता है। जड़ चीज तो है नहीं कि एक-सी मुहब्बत किये जाये !"

मैं ने बात को को हँसी में टालने के लिए कहा था, "मेरा कद कम से कम और नहीं बढ़ेगा . . . तुम्हें मेरे कद पर विश्वास करना चाहिए।"

लेकिन वह तो हँसी से कोसों दूर थी। अपने आप से कहती गयी–"जब वह आयेगी तो मैदान खाली पायेगी . . .मैं खजाने का साँप बन कर आप पर पहरा नहीं दूँगी . . . मुझे अगर यकीन हो गया कि आप की खुशी उसे से संबद्ध है तो मैं आप से यों अलग हो जाऊँगी जैसे पका हुआ फल डाली से गिरता है . . अपने आप . . .अपने बोझ से . . ."

बाहर से ठंडी हवा का एक झोंका खिड़की की ओर आया। कोयल जोर से कूकी और जामुन के पेड़ से एक पत्ता आँसू बन कर गिरा।

"तुम . . .तुम ऐसी बातें न किया करो अतिया . . .मुझे तकलीफ होती है।"

लेकिन वह अतिशय भावुकता का शिकार हो चुकी थी। मुझ से कम

और अपने आप से ज्यादा संबोधित थी। कहती गयी—"मुझे तो अभी से आप पर तरस आने लगा है नम्मो। मैं तुम्हारी खुशियों के सामने कभी दीवार बन कर खड़ी नहीं रह सकती और... तुम्हारी उस खशी से ...चाहे मेरा... नुकसान भी होता हो, लेकिन ...मैं वह फाटक हूँ नम्मो जो तुम्हरी खुशी के लिए खुलता है हमेशा... हर क्षण ..."

जागते चेहरे और सोयी आँखों वाली अपने भविष्य की भयानक कल्पना से काँप रही थी।

मैं ने उस का सिर अपने हाथों में लिया और धीरे से बोला, तू तो मुझे अपनी बच्ची लगती है अतिया। कभी-कभी तो मेरा दिल चाहता है कि कोई अच्छा वर तलाश करके तेरा उस से विवाह कर दूँ... लेकिन अगर मैं ने तेरा विवाह कर दिया तो... बोल अपनी बच्ची को कोई धोखा देता है अतिया ?

क्या अजीब बात है कि यह घटना तो अच्छी तरह से याद है, लेकिन इस घटना की वह फौलादी नोक टूट चुकी है जिस ने उस समय मुझे छेद दिया था। जंवा से मिलने के बाद मुझे कई बार उस रात की याद आती जब जामुन के पेड़ से पत्ते आँसू बन कर गिरते थे, लेकिन उस रात का वह बोझिलपन, भावनाओं से भीगी बातें और एक-दूसरे के लिए मर जाने की इच्छा बासी फूल की तरह मुरझा चुकी थी।

हर मर्द आखिरकार एक आशिक-मिजाज औरत से डरने लगता है। ऐसी औरत की वफा उस की नंगी बेहिसी पर कोड़े की तरह लगती है। काश औरत कुर्बानी को इस हद तक अपना आचरण न बना लिया करे! काश वह समझ सके कि मर्द अपनी सारी बेवफाइयों के बावजूद कभी कोई कदम ऐसा नहीं उठा सकता जिस से पहले बुत टूट जायें। उस ने दिल के कोने में जिस बुत को पहले-पहल बिठाया होता है, उस के हट जाने के बावजूद वह बुत वहीं कहीं छिपा रहता है, क्योंकि मर्द एक समुद्र की तरह है, उसे अपने पुराने पानी से बड़ा प्यार होता है।

हम तीनों एक-दूसरे का किस कदर खयाल रखते थे! हम तीनों एक-दूसरे की इतनी इज्जत करते थे कि उसी अनभूति ने हमारे मुँह पर ताले डाल दिये। अतिया ने मेरी खुशी के पक्ष में सब फाटक खोल दिये। जंवा फाटक के अंदर दाखिल न हो सकी और मैं एक जख्मी कुत्ते की तरह फाटक की दहलीज पर बैठा अपने ही जख्म चाटता रहा।

मैं ने अतिया को कभी कुछ नहीं बताया, क्योंकि मेरे पास सिवा उस स्थिति के जो मेरे दिल में थी, बताने को कुछ न था। अतिया के पास पूछने के लिए कुछ न था, क्योंकि उस के पास सिवा आशंकाओं के, सिवा अंदर होने वाले शीतयुद्ध के मेरी बेवफाई का कोई प्रमाण मौजूद न था। जंवा मेरे इतने समीप न आयी थी कि वह दृढ़ता से कुछ कह सकती और इस कदर दूर न थी कि अंदर ही अंदर उठने

वाले तूफान को पूरी तरह दबा सकती।

हर व्यक्ति खद से लड़ रहा था। अपनी खदगर्जी से लड़ रहा था। इस युद्ध में उस की सभी प्रतिरोधक शक्ति खत्म हो चुकी थी।

जिस रोज पहली बार जंबा मेरे घर पहुँची तो मैं बाहर मेनस्विच बंद करके फ्यूज बाँध रहा था।

उस ने कई बार अतिया से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। लेकिन कोई चीज मझे अंदर ही अंदर समझाती रही थी कि आग और पानी को एक जगह करने से किसी एक के खत्म हो जाने की आशंका है। जंबा को बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते देख मेरा दिल धक से रह गया। मेरी टाँगों में अजब-सी कमजोरी आ गयी और सिर में हलकापन महसूस होने लगा।

वह बहुत दुबली-पतली थी। कांगो में बसने वाले हब्शियों की तरह उस की चाल-ढाल में एक तरह की फुरती, एक तरह की लय थी। उस के सौंदर्य में स्वास्थ्य की दमक थी। रंग, अंग, स्वर—उस के आकर्षण का विज्ञापन-सा कर रहे थे।

स्टूल से उतर कर जंबा तक पहुँचना मेरे लिए एक समस्या बन गया।

"आप की श्रीमतीजी घर पर हैं, डाक्टर साहब ?"

"जी हाँ . . हैं तो सही . . पर . . ."

उसी समय गीले बिसकुट की बत्तियाँ बनाता हुआ मुन्ना जंबा के पास जा खड़ा हुआ। कपड़े पहनने का जंबा को शौक था। कपड़ों के चुनाव में उस की छठी संज्ञा काम करती थी। मुन्ना उस समय बिसकुट के कारण चिपचिपा-सा नजर आ रहा था, लेकिन फिर भी जंबा ने लपक कर उसे गोद में उठा लिया।

"आप के कपड़े खराब हो जायेंगे !"

"इतने प्यारे बच्चे के सामने इन कपड़ों की क्या हैसियत है डाक्टर साहब . . ."

मैं मुन्ने को उस की गोद में देख डर-सा गया। कितनी एकरूपता है दोनों में !

दो बड़ी-बड़ी चमकती हुई भोली-भाली आँखें। धुली हुई त्वचा और भीगे-भीगे गुलाबी होंठ। दोनों को स्वास्थ्य ने मानो अपने हाथों से बनाया था।

अफ्रीका से आयी यह लड़की कितनी भोली थी ! बच्चों की तरह उसे पता न था कि उस की आँखों में उस खिलौने की इच्छा लिखी है जो कोई उसे खरीद कर नहीं दे सकता।

अतिया उस समय गुसलखाने में थी। मैं जंबा को ड्राइंग-रूम में ले गया। वह कार्निस के पास चमड़े के गोल मूढ़े पर बैठ गयी और अपने रूमाल से मुन्ने के हाथ साफ करने लगी।

"आप आज क्लीनिक नहीं गये ?"

"बस अब थोड़ी देर में चला जाऊँगा!"

अंदर अतिया अपनी विशिष्ट बेसुरी आवाज में गा रही थी। वह एक ऐसे मुश्किल गाने का अभ्यास कर रही थी जिस में संभवत: मालकोस, दरबारी आदि का सम्मिश्रण था।

हम दोनों चुप हो गये। मुन्ना उस के कान में पड़े खानाबदोश-जैसे बाले को

अँगुली से झुलाने लगा।

"आप विटामिन 'बी' लिया करती हैं न नियमित रूप से?"

"जी . . ."

फिर खामोशी . . . लंबी-सी बेसुरी तान और नन्ही-सी अँगुली से झूलता हुआ वाला।

"जलू' कबीले के बारे में तो आप के पास 'फर्स्ट-हैंड इनफारमेशन' होगी . . उन के पास जो 'विच-डाक्टर' (ओझा) होते हैं। आप का कोई व्यक्तिगत अनुभव है इन डाक्टरों के बारे में?"

लंबी-लंबी पलकें ऊपर को उठीं, झिलमिलियाँ खुलीं और अंदर नीले परदे रोशन हो गये।

"अब तो जी उन लोगों ने बहुत तरक्की कर ली है। सही बात तो यह है जी कि कांगो में 'बंतो' कबीला रहता है . . उस कबीले की बहुत-सी शाखें हैं—'सोहेल', 'जुलू' वगैरा . . . अब तो चकवारी ने, जो एक कौमी लीडर है जलू कबीले का, बहुत मेहनत की है जुलू लोगों पर . . . संगठित भी हो गये और तरक्की-पसंद भी . . . अब तो 'विच-डाक्टरों' की वह शान नहीं रही जी वहाँ . . ."

वह बंतो कबीले की बात कर रही थी और मैं उस बंतो को देख रहा था जिस की कमर चीते की तरह लचकीली और पतली थी। यह कमर ढाके की मलमल थी। एक रेशमी रूमाल में एक सिरे से दूसरे तक उस की पैमाइश की जा सकती थी।

मैं ने उस कमर को छू कर नहीं देखा, हालाँकि वह मेरी अँगुलियों के पोरों में महसूस हो रही थी। 'ग्रे मैटर' (मस्तिष्क के क्रियाशील भाग का पदार्थ) अंधों की अँगुलियों में छिपा रहता है, उस की मदद से वे टटोल कर कपड़े का रंग बता देते हैं। इसी तरह जंबा के शरीर की सारी कोमलता और सुंदरता बिना छुए ही मेरी समझ में आ गयी थी।

पहली मुलाकात ही में संभवतया जंबा ने अतिया के व्यक्तित्व के सामने घुटने टेक दिये थे। वह उस सम्मान की दीवार को फिर गिरा न सकी। उस के पास ऐसा कोई लकड़ी का घोड़ा मौजूद न था जिस में अपने शूरवीर छिपा कर वह किले के अंदर ले जाती।

अतिया को मैं ने कुछ नहीं बताया। उस के बावजद पहले ही दिन उस ने शायद हार स्वीकार कर ली थी। अगर वह मुझ से कभी झगड़ती तो आज मैं उस के बारे में किसी और दृष्टिकोण से सोचता। उस ने तो मझ पर कोई आरोप नहीं लगाया। मैं तो यह भी नहीं जानता कि वह कितना जानती थी। बस उस दिन के बाद वह पेड़ का एक ऐसा ठूंठ बन गयी जिस की पत्तियाँ नोच कर अलग कर दी जायें। उस का चेहरा बेरौनक हो गया—बिलकुल उस तरह जब किसी गंभीर आपरेशन के बाद मरीज का चेहरा हो जाता है।

वास्तव में अतिया में खिलाड़ी की भावना की कमी थी। अतिया में शराब के प्रभाव का अभाव था, जो कुछ समय के लिए

व्यक्ति को बहादुर बना देता है। उस में जख्मों पर लगाने की स्प्रिट की कमी थी। वह एक ऐसी आत्मा थी जिस में कोई भावना ही नहीं होती। इसीलिए उस ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए कुछ नहीं किया। अपने दिल के दरवाजे ही खोल दिये और सारा माल उन्हें सौंप दिया जो दूर से आये थे और लुटेरे थे। अजीब दिन थे वे भी!

जब अतिया और मैं एकांत में होते तो अतिया जंबा की बातें छेड़ देती। उस के लहजे में और मेरे लहजे में सदा अंतर होता। वह प्रकटतया जोश और महब्बत से बातें करती। मैं प्रकटतया रूखा रहता। लापरवाही से बातें सुनता। बेमतलब जवाब देता, लेकिन अंदर से मेरा अस्तित्व सधे हुए सितार की तरह तना रहता। जंबा के साथ भी हमेशा अतिया की बातें होतीं। जंबा दिल खोल कर अतिया की प्रशंसा करती—इतनी प्रशंसा कि मैं बौखला जाता। मैं प्रकटतया तपाक के साथ अतिया की बातें करता, लेकिन मेरे अंदर बर्फ की परतें जमती चली जातीं। कोई चीज मुझे सुन्न करती जाती।

यह मेरा ही हाल नहीं है, शायद हर उस पति का हुआ होगा जिस ने शादी के बाद ऐसी टूट कर मुहब्बत की है। मैं यह भी नहीं चाहता था कि अतिया मझ से इस मुहब्बत के कारण रूखापन बरते। मैं उस से न बदलने की अपेक्षा करता था, हालाँकि खुद मैं . . . और मेरी भावनाएँ उस के लिए बदल चुके थे। मैं चाहता था कि अतिया का प्रेम मुझ से कम न हो। वह हर वक्त उसी समर्पण के साथ मुझे मिले जिस तरह मिलती आयी थी। यह ज्यादती थी। मैं जंबा से मुहब्बत भी कर रहा था और उस की कीमत भी अदा नहीं करना चाहता था, जो संभवतया अतिया के रूखेपन से अदा हो सकती थी।

मुझे याद है कि शुरू-शुरू में हर क्षण मैं ने विरोध किया। रक्षात्मक उपाय काम में लाया। ऐसे खयाली पुलाव पकाये, वादे किये जो मुझे जंबा से छुटकारा दिला सकें। लेकिन मैं तो जख्मी हो चुका था। हिरन की तरह मैं भाग-भाग कर थक चुका था और मेरे पीछे वे घोड़े थे जिन के खुमों से शोले उठा करते हैं।

मैं बहुत भागा . . . बहुत भागा और आखिरकार मीलों के सफर के बाद मैं ने आँखें बंद कर लीं और बेहाल हो कर गिर पड़ा।

जब मैं जंबा को छोड़ कर घर लौटा और मैं ने गैरेज में गाड़ी बंद की तो देर तक मैं ने उस सीट पर हाथ डाले रखा जिस पर जंबा बैठी थी। हम दोनों बिना कुछ कहे एक दूसरे से विदा हुए थे। जैसे पराजित टीम के खिलाड़ी मैदान से निकलते हुए एक-दूसरे से आँख नहीं मिलाते।

न मैं ने उस से मुहब्बत का इकरार किया, न उस ने मुझे इकरार पर तैयार किया, हालाँकि रात की ठंडक में कई इशारे थे और वातावरण अपने आप जुगनुओं की तरह जलता-बुझता था। मेरी कार में जंबा की खुशबू थी। हलकी-सी फ्रांसीसी खुशबू में मिली-जुली जलते

रबड़ की खुशबू...

मैं देर तक स्टीयरिंग पर बाजू रखे बैठा रहा। आखिरकार जब उस की गैर-मौजूदगी का क्षोभ आँसू बन कर मेरे गले में उतरने लगा तो मैं उठा, कार को बंद किया और अंदर चला गया।

मैं अतिया को कैसे समझाता कि मुहब्बत कोई ट्रेन तो नहीं है कि पिछले डब्बे काट कर नये डब्बे लगा लिये जायें। यहाँ तो पिछली मुहब्बत नयी मुहब्बत से कुछ यों मिली जुली है जैसे एक ही किताब के भिन्न पृष्ठ।

अतिया मुन्ने के गाल अपनी हँसुली की हड्डी पर रखे हुए सो रही थी।

बेड-लैंप की रोशनी का घेरा मुन्ने के सिर पर था। नन्हा मसीहा हजरत मरियम के साथ सो रहा था। माँ और बेटे का रिश्ता...कम से कम इस रिश्ते की राह में वे मंजिलें न थीं जिन पर चल कर आदमी अपने चाहने वालों से जरूर बिछड़ जाता है।

मैं चुपचाप उन्हें देखता रहा। उसी नजर से महात्मा बुद्ध ने आखिरी बार अपनी रानी और बच्चे को देखा होगा। यातना की कई मंजिलों से गजर कर वे भी एक नतीजे पर पहुँचे होंगे कि बिछुड़ना अनिवार्य है।

महात्मा बुद्ध इस फैसले पर पहुँच कर मुझ से आगे निकल गये। उन्होंने लौट कर हजरत मरियम और बच्चे की ओर न देखा होगा, वरना वे भी मेरी तरह दुविधा में रहते और कुछ न कर पाते।

मेरी नयी मुहब्बत का बच्चा जन्म ले कर डिलीवरी-रूम में आ चुका था और पिछली मुहब्बत का आँवल अभी तक उस के नाफ से लटक रहा था। उस नये बच्चे की अपनी एक जिंदगी थी और लटकती आँवल का अपना एक रिश्ता था। मैं सर्जन होने के बावजूद कैंची उठा कर उस आँवल को काट न सका और चुपचाप खड़ा रहा।

खुदा जाने मैं कितनी सदियों इसी तरह खड़ा रहा––बिजली के नंगे तार की तरह करेंट से भरा हुआ। कई पाषाण और धातु-युग आये। ताँबे और सोने के बरतन बनाये। इनसान ने आग ले कर जंगल के जानवरों को भून डाला और अलाव के गिर्द बैठ कर नौजवानों ने प्रेम-गीत गाये।

अब उन सदियों का, उस समय का, उस इंतजार का कुछ बाकी न रहा था। अलाव के गिर्द बैठने वाले और विमान में लाइटर से सिगरेट जलाने वाले के दरम्यान एक आग का संबंध बाकी रह गया था।

अंदर की अधजली आग...बाहर की सर्द और चमकदार आग, नये डीजल-इंजन की आग...वेल्डिंग - मशीन के शोलों से निकलती आग...नफरत की आग... मुहब्बत की झुलसी हुई आग...अपने आप को बचाने की आग . . . दूसरे को आग से निकालने और फिर उसी आग में देने की आग...

खाल पहनने वाला पत्थर के भालों से शिकार करने वाला, गुफाओं के

मुँह पर खालें लटकाने वाला विदा हो चुका था। उस का हम से कोई रिश्ता बाकी न था। उस की जबान और हमारी लिपि में केवल एक शब्द साझा था--

आग का शब्द।

इसी भट्ठी में आज का आधुनिक आदमी भी जल रहा था--शार्कस्किन का सूट पहन कर, पेटेंट लेदर के जूतों में चलने वाला।

फिर पता नहीं कब अतिया की आँख खुल गयी!

उस जागते चेहरे ने कुछ न पूछा। उन सोयी आँखों ने कोई सवाल न किया। हमारे बीच बातों का वह स्रोत सूख गया था जो वाक् शक्ति रखने वाले जीव के लिए अमृत है।

खाना लगाते हुए उस ने शायद हजारवीं बार कहा--कितनी प्यारी लड़की है जंबा!

मैं खामोशी से कौर तोड़ता रहा।

"कितनी खूबसूरत है! चमेली की कलियों का-सा मुलायम रंग..."

टीका लगवाने से पहले जिस तरह मरीज एकदम तनाव की स्थिति में हो जाता है, मैं भी उसी तरह जूतों के अंदर पाँव सिकोड़े बैठा था। मुझे अपनी आवाज पर विश्वास न था, वरना मैं उस की बात का जवाब जरूर देता।

"आज आयी थी जंबा। बड़ी देर तक मुन्ने से खेलती रही।"

मैं उसे बता न सका कि जंबा मुझे पहले ही सब कुछ बता चुकी थी।

पुरानी मुहब्बत की जंजीरें टूटने और नयी मुहब्बत होने के बीच एक वक्त ऐसा भी होता है जिस में कोई चीज विश्वास से कही नहीं जा सकती। दूध को जामन लगाने और दही के बन जाने के बीच एक वक्त ऐसा भी होता है जब दूध दूध नहीं रहता और दही भी नहीं कहा सकता। सौ बार दिल में यह आशा बँध जाती है कि नयी महब्बत खुद अपनी मौत मर जायेगी या फिर एक सुबह अचानक साथ वाले तकिये पर पिछली महबूबा की आँखें मृत्यु ने बंद कर दी होंगी। यह दौर अविश्वास का दौर होता है। पिछली मुहब्बत बँधे रहने की इच्छा और उसी मुहब्बत से छूट जाने की क्षीण-सी आशा।

जैसे फाँसी पर चढ़ कर आदमी गटागट अमृत पी रहा हो।

उस दौर में आदमी गुँधी मिट्टी की तरह कुम्हार की प्रतीक्षा करता ह। वह नहीं जानता कि चाक पर चढ़ कर घड़ा, सुराही, कुल्हड़, प्याला, कूँड़ा, हँडिया या खुदा जाने कौन-सा बरतन बन जायेगा। यह वक्त साँस रोके रहने से कटता है। वह मौसम से यों प्रभावित होता है जैसे चने की फसल हो। छोटी छोटी व्यर्थ बातों पर उस के कान शिकारी कुत्ते की तरह खड़े हो जाते हैं। उस की भावनाएँ तेज कमानीदार चाकू की तरह तीखी होती हैं। वह क्षणों में हफ्तों की, महीनों की जिंदगी व्यतीत करता है।

मैं सारे दिन यही सोचता रहता था

कि अतिया कितना जानती है। वह मुझ पर कितना संदेह करती है?

मैं ने तो जब जंबा के सामने ही अपना प्रणय स्वीकार न किया तो मैं अतिया को क्या बताता! इसी उलझन में, इसी सज्जनता में जंबा मेडीकल के तीसरे वर्ष में पहुँच गयी।

हम तीनों स्वाभिमान के पुतले थे। हम तीनों में से एक भी निर्मम न था। हम तीनों को अपनी कम, दूसरे की इज्जत का ज्यादा खयाल था।

इसी तरह पूरे तीन साल बीत गये और कुछ फैसला न हो सका क्योंकि हम तीनों फैसला करने के लिए नहीं बने थे। मेरी सारी शक्ति को इसी दुविधा ने खा लिया। अतिया के चेहरे पर झाइयाँ पड़ गयीं। आँखों के नीचे काले घेरे और आँखों में स्थायी रूप में नमी रहने लगी।

मुझे वह दिन अब भी याद है जब मैं ने जंबा को अतिया के होने वाले बच्चे की खबर सुनायी थी। हम तीनों बाजार गये हुए थे। अतिया मेरे साथ वाली सीट पर थी और जंबा मुन्ने के साथ पिछली सीट पर थी।

बाजार में अतिया अपनी एक पुरानी सहेली से बातें करने लगी। मुन्ना उतर कर अपनी माँ के साथ जा खड़ा हुआ और हम दोनों कार में बैठे रह गये। मैं ने काँच के बरतनों की दुकान पर नजरें जमा कर कहा, "अतिया को अपनी सेहत का खयाल रखना चाहिए। तुम उसे समझाओ जंबा। अतिया तुम्हारी तो बात मान लेती है।"

"जी हाँ! आपा तो कुछ खाती ही नहीं हैं!"

मैं जंबा को नहीं बताना चाहता था कि मेरी बीवी गर्भवती थी। जाने वह क्या भावना थी जो मुझे यह खबर उसे सुनाते हुए अपराधी-सा बना रही थी।

"अतिया गर्भवती है ...उसे अपनी सेहत का खयाल रखना चाहिए," मैं ने विशुद्ध डाक्टरी लहजे में अँगरेजी में कहा।

जाने क्या बात थी कि जंबा की आँखों में मोटे-मोटे आँसू आ गये।

अब मैं उसे कैसे समझाता कि मियाँ-बीवी बिना प्रेम किये, बिना भावना के एक-दूसरे से संबद्ध रहा करते हैं। बच्चे आते हैं, पर इन बच्चों के माथों पर वह तेज नहीं होता तो जो प्रेम प्रदान करता है।

वह खामोशी से रूमाल में आँसू छिपाती रही और मैं चोर नजरों से सामने वाले शीशे में से उसे देखता रहा। न मैं ने उस से कुछ कहा, न उस ने मुझे कोई सफाई पेश करने पर तैयार किया।

और अतिया फुटपाथ पर एक मुन्ने का हाथ थामे और दूसरे मुन्ने को पेट में छिपाये विचित्र आंतरिक पीड़ा में ग्रस्त रही। न उस ने मुँह खोल कर आह भरी, न दाँत भींचे। बस, खामोशी से दर्द की लहरें अपने अंदर समोती रही।

उस शाम ठहर-ठहर कर हवा चल रही थी।

आँगन में जामुन के पत्ते रुके हुए आँसुओं की तरह अचानक गिरने लगे

थे। मैं क्लीनिक जाने के लिए तैयार हो रहा था कि अतिया पास आ कर खड़ी हो गयी और धीरे से बोली--"आप जंबा को बुला लीजिये। मुन्ना उस से बहुत हिला हुआ है..."

मैं ने उस के कंधे पर हाथ रख कर पूछा, "क्या बात है अतिया ? मैं खाला-जान को तार दे दूँ ?"

"नहीं अम्मी आ कर क्या करेंगी ? आप जंबा को बुला लीजिये। उस के साथ मुन्ना उदास नहीं होगा !"

मैं ने अतिया को लिटा कर उस के पेट की जाँच की। रक्तचाप खतरनाक हद तक बढ़ा हुआ था और दर्द के पहले लक्षण शुरू हो गये थे।

"किसी को न बुलाइये। जंबा को बुला लाइये !"

जिस समय मैं अतिया को ले कर अस्पताल की ओर रवाना हुआ, जंबा मुन्ने को गोद में लिये बरामदे में खड़ी थी। अतिया मेरे साथ आगे की सीट पर बैठी थी। उस के सिर पर चादर थी। और वह बार-बार होंठ काट रही थी। उस क्षण मुझे एक भयानक दुर्घटना की अनभूति हुई---जैसे न टूटने वाला गिलास हाथ से गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो जाये।

अतिया ने एक बार भी पलट कर न तो मुन्ने को देखा, न अपने घर को ही। खोयी आँखों में एक अजीब बेचारगी थी।

उस रात ठहर-ठहर कर हवा चल रही थी और जामुन के पेड़ से सूखे पत्ते झड़ कर पके आँगन पर गिर रहे थे।

मैं 'डिलीवरी-रूम' में अतिया के साथ तो न जा सका, लेकिन अस्पताल के बाहर कार की सीट पर बैठे हुए मेरी नजरों में वे सब दौर थे जिन से अतिया गुजर रही थी। रह-रह कर एक तसवीर-सी विड-स्क्रीन पर उभरती थी--

अतिया दर्द से कराह रही थी।

उस की बाँह में ग्लूकोज चढ़ाया जा रहा था। उस के बाल पसीने से भीग चुके थे। नर्सें उसे भी मामूली केस समझ कर अपनी बातें कर रही थीं।

अतिया एक ऐसे आदमी के बच्चे को जन्म दे रही थी जिस का उस के साथ कोई भावुक संबंध न था। फिर बैठे-बैठे विड-स्क्रीन धुल जाती। अतिया की आकृति मिट जाती और जंबा मुन्ने को गोद में उठाये हुए विड-स्क्रीन पर थिरकने लगती।

मुन्ना और जंबा--कितनी एकरूपता थी दोनों में ! वह एक ऐसे बच्चे को अपनी सारी मुहब्बत दे रही थी जो उस की कोख से पैदा न हुआ था।

जब रात के पिछले पहर मैं 'डिली-वरी- रूम' में गया तो अतिया आक्सीजन-टेंट में गहरी -गहरी साँसे ले रही थी। उस की बाँह में खून चढ़ाया जा रहा था और नर्सें उस बच्चे का आँवल काट रही थीं जो पैदा होते ही मर गया था।

पिछली मुहब्बत का मुरदा बच्चा !

नीला रंग, भिंची हुई मुट्ठियाँ और अधखुली आँखों से वह मुझे देख रहा था। उस के चेहरे पर न जिंदा रहने की इच्छा

क्या आपने उस किसान के बारे में सुना जो १०,००० रु. बचाकर हर साल ६०० रु. गंवाता था ?

बैंक अधिकारी को अपनी पब्लिसिटी वान में कई चक्कर लगाने पड़े और उसे बहुत अधिक समझाना पड़ा तब जाकर कहीं किसान को विश्वास हो सका कि बैंक में पैसा रखना सुरक्षित है और साथ में सूद भी बढ़ता रहता है। वह फिर अधिकारी को अपने खेत में ले गया, १०,००० रु. की लागत के नोटों का बंडल खोद कर निकाला और स्टेट बैंक में सेविंग्स एकाउंट खोला।

—पी.टी.आई.

इस १०,००० रु. पर उसने ६०० रु. सूद की रकम खो दी जो उसे मिला होता यदि उसने वह रुपया स्टेट बैंक में जमा किया होता। वह तो १०,००० रु. भी खो दिया होता क्योंकि सफेद चीटियां और कीड़ें रुपये के नोटों को बड़े चाव से खा डालते हैं। इस किसान जैसा भाग्यवान आप नहीं हो सकते। अपना पैसा स्टेट बैंक में ही जमा कीजिये।

सारे देश में फैले हुए अपने २,३०० कार्यालयों तथा सहायक बैंकों के जरिये स्टेट बैंक हर व्यक्ति के यहां आसानी से पहुंच सकता है। स्टेट बैंक के फील्ड अधिकारी ग्रामीण जनता का मार्ग दर्शन करने और उनकी सेवा करने के लिए सुदूर गांवों में भी पहुंच जाते हैं। स्टेट बैंक में धन बचाइये।

नैतिक शिक्षा : अपना पैसा छिपाकर न रखिये। इसे स्टेट बैंक में सुरक्षित रखिये और सूद भी कमाइये। आप खुद अपनी और राष्ट्र की मदद कीजिये।

बेहतरीन सेवा के लिए स्टेट बैंक

S. 480 HN

थी, न भीख माँगने की अभिलाषा।

वह तो एक अनाथ बच्चा था जो प्रकृति ने अपने विधान के अधीन गलती से भेज दिया था।

वह अपने अस्तित्व में खोया हुआ, गुमसुम उस क्षण की तरह निश्चल था जो गुजर तो जाता है, लेकिन कभी याद नहीं आता। जब मैं अतिया को प्राइवेट-रूम में छोड़ कर लौटा तो अजान का समय करीब था।

हवा ठहर-ठहर कर चलती थी। दूर कहीं कोयल घायल हो कर कूकने लगी थी। जामुन के सूखे पत्ते रुक-रुक कर गिर रहे थे।

बेड-लैंप रोशनी दे रहा था।

जंबा अतिया के तकिये पर सिर रखे सो रही थी। उस की हँसुली की हड्डी पर मुन्ने का गाल था। रोशनी का घेरा-सा दोनों के सिरों पर पड़ रहा था।

मुझे पता नहीं कि अतिया कहाँ खत्म हुई और जंबा कहाँ शुरू हो गयी।

मैं नहीं जानता कि गाड़ी के पहले डब्बे किस क्षण कट गये और नये कूपे इंजन के साथ जोड़ दिये गये? मैं तो इतना जानता हूँ कि उस रात अजान से कुछ पहले मैं विश्वास के साथ घर में दाखिल हुआ।

गुँधी हुई मिट्टी चाक पर चढ़ी और एक और कासा तैयार हो गया—मुहब्बत की दहलीज पर पड़ा हुआ खाली कासा।

पिछली मुहब्बत का बच्चा मैं ने दफना दिया, क्योंकि लाशों को हमेशा तो घर पर नहीं रखा जा सकता! नयी मुहब्बत के स्वस्थ बच्चे का आँवल काटा, उस के रोन से कमरे में जिंदगी के आसार पैदा हुए।

मैं जानता हूँ अतिया की मौत हादिसा नहीं है।

मैं यह भी जानता हूँ कि यह स्वाभाविक मौत न थी। अस्पताल वाले इसे हादिसा कह सकते हैं क्योंकि उन के लिए निरोग हो कर मरीज का मर जाना हादिसा है।

लेकिन मैं खूब जानता हूँ, वह इतनी संख्या में नींद लाने वाली गोलियाँ नहीं खा सकती थी क्योंकि वह एक डाक्टर की बीवी थी। अस्पताल वाले चाहे इसे हादिसा कहें, लेकिन मैं खूब जानता हूँ।

वह एक रात सिस्टर के कमरे में गयी और मुट्ठी-भर नींद लाने वाली गोलियाँ ले आयी। जब उसे घर लौटना चाहिए था वह एक अन्य यात्रा पर रवाना हो गयी।

मैं ने अतिया को कुछ नहीं बताया।

उस ने मुझ से कुछ नहीं पूछा।

इस के बावजूद मेरी तरह वह भी विश्वास के भवन में दाखिल हो चुकी थी।

अब जंबा और मैं प्रेम से रहते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे लिए अब कोई और लड़की कभी नहीं आयेगी। लेकिन जब रात के पिछले पहर कोयल कूकती है और जामुन के पत्ते गिरते हैं तो मेरा दिल चाहता है कि मैं जंबा से कहूँ . . . कि जब मुझे यकीन हो जायेगा कि तुम्हारी खुशी किसी और से संबद्ध है तो मैं चुपचाप तुम्हारी जिंदगी से निकल जाऊँगा, जैसे

खुले किवाड़ से कसैले पत्तों का धुआँ।

लेकिन यह बात मेरे मुँह से नहीं निकलती... अतिया मेरे पास आ कर बैठी है और चपचाप मेरा मुँह तके जाती है।

अतिया हमारे दिल-दिमाग पर, हमारे अस्तित्व पर, हमारी खुशियों पर यों छा गयी जैसे हिमाच्छादित चोटियों पर ठंड !

हमारी जिंदगी ने अतिया का तंबू तान लिया है। जंबा और मैं ने मिल-जुल कर अतिया का वह बुत तराशा है जो सब बुतों से बड़ा है। जो बुद्ध के बुत से भी अधिक रहस्यपूर्ण है। अप्रैल की रातों में हवा ठहर-ठहर कर चलती है और जामुन के पेड़ से सूखे पत्ते झड़ कर पक्के फर्श पर गिरते हैं तो तड़प कर कोयल कूकती है।

मैं खिड़की में बैठ कर जंबा का चेहरा देखता हूँ। उस के चेहरे पर अब मुँहासों के वैसे ही दाग हैं जो कभी अतिया के चेहरे पर नजर आया करते थे। मुझे उस का सोया हुआ चेहरा जागता दिखायी देता है। मैं जंबा की अँगुली पकड़ कर अतिया के हुजूर में जा खड़ा होता हूँ और पुराने हिसाब चुकाने लगता हूँ।

इतने सारे सफर ने एक ऐसी मुहब्बत दी है जो न अतिया की है, न अतिया से थी, न जंबा से है। बस एक अधडोली किश्ती की तरह डूबने और उभरने के बीच गोता लगाये रहता हूँ। उस दर्द की कोई निशान-देही नहीं कर सकता। उस दर्द के लिए कोई ऐंटी-बायोटिक नहीं, कोई रामबाण औषध नहीं बनी।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ अगर अतिया वापस आ जाती और जंबा अपने अफ्रीका लौट जाती, फिर हम दोनों इकट्ठे रहते—अतिया और मैं—फिर भी मैं उस खुशी को कभी छू न सकता जो जंबा के आने से पहले हमारी थी, क्योंकि तजुर्बे जिंदगी को वापस नहीं किये जाते। यह सौदा लौटाने के लिए नहीं खरीदा जाता।

सुना है पिछली लड़ाई में जब जापानियों के हाथ कुछ कैदी आ जाते और उन्हें कठोरतम दंड देना होता तो कैदी के सिर के बाल मुँडवा कर उसे एक ऐसे नल के नीचे बाँध कर बिठा देते जिस से कतरा-कतरा पानी की बूँद गिरती और उस के गंजे सिर पर लगातार हथौड़ा मारती।

यही एक बूँद उस की मौत का कारण बन जाती।

जंबा ने मुझे वह सब कुछ दिया जिस की कोई पुरुष इच्छा कर सकता है।

अतिया ने मझे वह सब कुछ दिया जो एक औरत किसी के चरणों पर न्योछावर कर सकती है।

मैं ने उन दोनों से वैसी ही महब्बत की जैसे कोई समद्र करता है—अपने पुराने पानी से और अपने नये पानी से।

हम तीनों ने एक-दूसरे से कुछ नहीं कहा। कभी एक-दूसरे से नफरत नहीं की। किसी पर कोई आरोप नहीं लगाया।

हम ने महब्बत के जहर से एक-दूसरे को खत्म कर दिया—कतरा-कतरा टपका कर...

जीवन एक फूल है और प्रेम उस का शहद। —विक्टर ह्यूगो

पुस्तकें

नूतन रामकथा

लेखक– डा० रमानाथ त्रिपाठी ; प्रकाशक–आनन्द प्रकाशन, दिल्ली-७; पृष्ठ-२२० ; मूल्य-५.००

प्रस्तुत पुस्तक में सात कांडों के अनरूप सात अध्यायों में, सोलह सादे चित्रों सहित रामकथा सरस गद्य में दी गयी है । वाल्मीकि की कथा को मुख्य आधार बना कर अधिकारी लेखक ने असमी, उड़िया, तमिल, बँगला, मराठी रामायणों एवं उत्तररामचरित नाटक, गीतावली, मानस, रघुवंश आदि ग्रंथों से जिन उपयुक्त प्रसंगों को कथा में गूँथा है उन्हें यथास्थान मूलरूप में उद्धृत कर उन का संदर्भ भी दिया है ।

क्या ही सुंदर होता यदि कन्नड़, गुजराती, तेलुगू एवं मलयालम रामायणों के कुछ मार्मिक प्रसंगों का भी इस नूतन कथा में समावेश किया जाता ताकि विविधता में रामायणी एकता के दर्शन होते ।

प्राय: भाषा विषयानुकूल तथा प्रवाहपूर्ण है; किंतु कहीं-कहीं पर अर्गलाएँ, कुंतलों, क्लीव, क्षिप्र, त्वरा, रोर, मथुरी–जैसे शब्दों का प्रयोग साधारण पाठक के लिए दुरूह हो गया है । सुबोधता की दृष्टि से पृष्ठ १७ पर दी गयी तुलना 'जिस प्रकार जमदग्नि–रेणुका' की अंतरकथा टिप्पणी या पुस्तक के अंत में नामानक्रमणिका में देना श्रेयस्कर होता। 'क्रोधागार' एवं 'आनंद का ओर-छोर न था'–जैसे वाक्यांशों का प्रयोग रुचिकर है, किंतु 'वह हर्ष से फटी पड़ती थी,' अटपटा है । रामायणकालीन पंचवटी के वन में 'जौ और गेहूँ के खेतों'

का वर्णन संगत नहीं लगता। पुस्तक में मुद्रण की अशुद्धियाँ अखरती हैं।

कुल मिला कर पुस्तक पठनीय एवं लेखक का प्रयास अभिनंदनीय है। उपयुक्त परिमार्जन के पश्चात ऐसी पुस्तकों को विविध भाषाओं में सस्ते मूल्य में सुलभ कराना चाहिए।

शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास

लेखक—सय्यद एकबाल अहमद जौनपुरी; प्रकाशक—शीराज हिन्द प्रकाशन भवन, जौनपुर; पृष्ठ—९४३; मूल्य—२५-००

आलोच्य पुस्तक का शीर्षक भ्रामक है, क्योंकि लेखक ने अधिकांश पुस्तक में विषय-क्षेत्र से बाहर मुसलमानों के भारत के विभिन्न भागों में आक्रमण, शासन, इतिहास, इस्लाम के विस्तार आदि पर भी लिखा है। प्रायः आधी पुस्तक मुल्तान, मालवा, दिल्ली, बनारस, यमुना आदि पर टिप्पणियों से भरी है। केवल असामान्य विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ पुस्तक के अंत में परिशिष्ट में देना श्रेयस्कर होता। टिप्पणियों में भी 'प्राचीनतम पुराण आठवीं शताब्दी का है,' 'यमुना—यह नदी हिंदुकुश पर्वत से निकल कर दक्षिण की ओर बहती है'— जैसे गलत कथन हैं।

पुस्तक का विन्यास वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार नहीं किया गया है। फलतः पुस्तक विषयानुसार अध्यायों में विभाजित नहीं है।

भूमिका में लेखक लिखते हैं—'आठवीं शताब्दी के आरंभ में भारतवर्ष में मुसलमानों ने प्रवेश किया और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य, अर्थात १८५७ ई. लगभग ग्यारह सौ वर्ष तक भारत में शासन किया।' पृष्ठ ५५ पर—'एक समय ऐसा था कि मुहम्मद पुत्र तुगलग के अधीन पूर्ण भारत था।' भारत में न तो कभी किसी का ग्यारह सौ वर्षों तक शासन रहा और न पूर्ण भारत कभी किसी के अधीन ही रहा है। फिर लिखते हैं—'यह पुस्तक उत्तरी भारत का एक विश्वकोश बन गई है। अब यह पुस्तक सैकड़ों फारसी, अरबी, अंग्रेजी, हिन्दी पुस्तकों का सार हो गई है. . . वास्तव में यह पुस्तक प्राध्यापकों और अनुसंधान करने वालों के लिए एक अनुपम उपहार है।' अपनी कृति के बारे में इस प्रकार की आत्मप्रशंसा प्रबुद्ध लेखक को शोभा नहीं देती।

अटाला देवी मंदिर के परिवर्तित स्वरूप अटाला मसजिद तथा मसजिद लाल दरवाजा पर अंकित नागरी लिपि के शिलालेखों के विषय में लेखक पृष्ठ ३८३ में लिखते हैं—'एक अन्य भद्दी हिन्दी लिखावट दक्षिण की दालान में सातवें स्तंभ पर है जिस पर संवत १४६४ अंकित है। इसी प्रकार दक्षिण की दालान में सबसे

मोटे प्रथम स्तंभ पर भी है, जिसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आता। एक अन्य हिन्दी की भद्दी लिखावट जिसका किसी काल से संबंध नहीं है गुम्बद के दक्षिण छोटे मेहराब की दक्षिणी दीवार में हैं।' पर डा. यासीन जैसे-इतिहासकारों की मान्यता है कि 'लाल दरवाजा मसजिद की एक-एक ईंट से हिंदुत्व उजागर है।' कनिंघम, वाकर और परसी ब्राउन ने इस कथन की पुष्टि की है।

जौनपुर की प्राचीन काल की इमारतों को धराशायी करने का दायित्व लेखक बौद्ध धर्मावलंबियों पर डालते हैं। पृष्ठ १०१ पर बौद्ध धर्म के परिवर्तन के बारे में-'इनसे हमें यह भी ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म के जन्मदाता गौतम बुद्ध, जो ईश्वर में आस्था न रखते थे, स्वयं ईश्वर बन बैठे। जहाँ एक ओर मंदिरों में उनकी मूर्तियों का कोई अस्तित्व नहीं था, वहाँ अंत में मंदिरों में पहुँच गये।' इस में बुद्ध का कोई दोष नहीं है, यह भारतीय संस्कृति की समन्वयशीलता का फल है। लेखक को इस भ्रम का प्रतिपादन और प्रचार नहीं करना चाहिए था।

पुस्तक में प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर अशुद्धियाँ हैं। लार्ड कर्जन के लिए राज्यपाल लिखना तथा विशेषण 'विराट' का अंधाधुंध प्रयोग करना ठीक नहीं।

—पू० भकूनी

पूर्वा-फाल्गुनी

लेखक—शंभुप्रसाद श्रीवास्तव; प्रकाशक—नई सदी प्रकाशन, नयी दिल्ली; पृष्ठ–९६; मूल्य–५.००

तोतई, चीतती, सिंधोरा, ढेंढ़ी, बिथोर, ढरकियाँ, झोंटा, परिवा, पन्नी, टंच, पाँवरी, खोंइछा, निथर, छाजन आदि अनेक आंचलिक शब्दों के प्रयोग से शंभु-प्रसाद श्रीवास्तव ने अपने गीतों में नया जीवन भरा है। कवि के इस प्रयास से गीत की समृद्धि में चार चाँद लगे हैं। 'रात संगमरमरी,' 'एक भोर', 'मैं भी दिया जलाती,' 'कटती है रात नहीं', 'घुरकिनिया साँझ', 'पावस की साँझ', 'तरुणाई बहकी', 'बिलम गये पिया,' 'अहल्या पथरायी है', 'मधुऋतु गुदने वाली' और 'आहत मन उठंग गया' अच्छी रचनाएँ हैं। युद्ध और वैचारिक धरातलों पर लिखे गये गीतों में जान नहीं है। कवि का क्षेत्र शुद्ध प्रकृति का अद्भुत संसार है, जिसे उस ने अनेक कोण बदल-बदल कर देखा है—

डोली से उतर रही भोर की बहुरिया
दबे पाँव लाँघ रही पुरुब की देहरिया आँचल क्या सरका दिख गया गोरा रंग
सँभली तो छूट गया हाथ से सिंधोरा लिपा-पुता आँगन हो उठा लाल-लाल

हाय राम मत पूछो दुल्हन का हाल

'उम्र हुई जैसे चरवाहे की बंसरी'-जैसी मधुर पंक्तियों के रचयिता ने चाँदनी को समकालीन नजर से यों देखा--

कोठे पर बैठ कर हिलाती रूमाल
चुटकी भर चितवन से कर दिया कमाल
चंदा-से मुँह पर हैं चेचक के दाग

'भोर की बहुरिया', 'चाँदनी एक चित्र', 'कल जनमेगा चाँद' और 'सागर की कामधेनु' इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इन्हें किसी भी प्रकार द्वितीय स्तर के गीत नहीं कहा जा सकता। कवि की ये प्रतिनिधि रचनाएँ मन पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। मौलिक सूझबूझ और कलापूर्ण शब्द-चयन की दृष्टि से इन्हें अनमोल कहा जा सकता है।

अर्थहीन वह मैं

लेखक--सिद्धेश; प्रकाशक--शिल्पी प्रकाशन कलकत्ता; पृष्ठ--६४; मूल्य--५.००

इस चर्चित कहानी-संग्रह में 'मन', 'मसीहाई', 'मत्स्य-गंध', 'फोड़ा' ,'लाश', 'नपुंसक', 'सुराख', 'चेहरे', 'अहसास', 'किनारा', 'समुद्रगाथा' आदि १२ कहानियाँ हैं। कुछ कहानियाँ तो केवल निबंध हैं। उदाहरणार्थ, संकलन की पहली कहानी में आधुनिक बुद्धिजीवी का मुखौटा पहने यौन-प्रताड़ित व्यक्ति के प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन्हें अकहानी और भूखी पीढ़ी आंदोलनों के दौर में लिखी जा रही सामान्य रचनाओं से अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता।

'कुल्लम', 'दामी साड़ी', 'चोगद', 'मजा की बातें', 'उस की आफिस छूटती है', 'अप्रील', 'पत्नी की हठात याद पड़ गयी', 'उसे याद पड़ा' 'मुशहरी', 'मोछा' आदि बेढंगे प्रयोग भाषा या शिल्प में नया सौंदर्य प्रस्तुत करने के बजाय कलम के कच्चेपन के प्रमाण हैं।

--इब्बार रब्बी

पुस्तकों से लाभ उठाओ, उन के गुलाम मत बनो। जीने के लिए पढ़ो, पढ़ने के लिए मत जियो।

--बुलवर

श्रीमान जी

